सूर्योदय ग्रंथावली—संख्या १

बाबू साहब

[उच्च कोटि का एक मौलिक राजनैतिक और सामाजिक उपन्यास]

लेखक

'बहता पानी', 'पाप की पहेली', 'नादिरा' आदि उपन्यासों के रचयिता

श्रीगिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' बी० ए०

'बाबू साहब' पर दो विद्वानों की सम्मतियाँ

[१]

प्रिय गिरीश जी;

—'बाबू साहब' उपन्यास में आपने अनेक सामाजिक और राजनीतिक चित्र उपस्थित करने के साथ साथ पात्रों की सूक्ष्म मानसिक परिस्थितियों को सामने ला रखने का सफल प्रयत्न किया है। हिन्दी में इस ढंग के अन्य किसी मौलिक उपन्यास का मुझे स्मरण नहीं आ रहा है।

—डाक्टर धीरेन्द्र वर्म्मा एम० ए०

[२]

प्रिय गिरीश जी;

—'बाबू साहब' उपन्यास बड़ा रोचक है, इसमें आपने चरित्र-चित्रण में रचना-चातुरी और कला-कुशलता का अच्छा परिचय दिया है। अजीत के भावों के प्रस्फुटन, उसके मनोविकारों के तार-तम्य, उत्साह की तरंगभंगी, आदर्शवाद और यथार्थवाद के झकोरों, राग-विराग की प्रतारणाओं आदि के वर्णन में आपने सराहनीय कौशल प्रदर्शित किया है। उपन्यास की भाषा भी सरल, सुबोध, लचीली, और फबीली है। मानसिक विकारों के सूक्ष्म ऊहापोह में भाषा की सरलता और सबलता को संयुक्त रखना लेखक की लेखन-कला का सुन्दर प्रमाण है।

—डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी एम० ए०

शीघ्र ही छप कर प्रकाशित होगा

गिरीश-कृत

"नादिरा" नामक उपन्यास

इस उपन्यास में लेखक ने भारतीय मुसलमानों की राजनीति की आलोचना करते हुए 'नादिरा', 'नसीर' फखरुल्ला आदि चरित्रों की सृष्टि कर के भावी भारतीय समाज-निर्माण का सुन्दर पथ दिखाया है।

पाठक इसे छपने पर अवश्य पढ़ें। छप रहा है।

बाबूसाहब

[१]

बाबू जगजीवन सिंह भोजन करके अपनी बैठक में पलँग पर लेटे-लेटे कुछ सोच रहे थे। अजीत को सामने देख कर बोले—"बच्चा! इस साल बबुई का ब्याह निबटा ही देना चाहिए। मेरी समझ में उसके लिए बा० रामलखन सिंह से बढ़ कर दूसरा बर कठिनाई से ही मिलेगा; अभी थोड़ी ही उमर में वे पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट हो गये हैं; बड़े होनहार हैं; किसी दिन बहुत ऊँचे ओहदे पर पहुँच कर रहेंगे।"

अजीत ने कुछ रूखे होकर कहा—"आपकी समझ में तो वे अवतार हैं, लेकिन जब औरों की समझ में भी वैसे ही हों तब न। इलाहाबाद भर में एक आप और आप जैसे चार-छः और आदमी उनकी प्रशंसा के पुल बाँधते हैं; शेष तो उनकी निन्दा ही किया करते हैं।"

बाबूसाहब अजीत की ऐसी आलोचनाओं से अपरिचित नहीं थे। कुछ हतोत्साह से होकर बोले—"यह तो दुनियां है; लोग तो ईश्वर को भी गालियां दिया करते हैं। रामलखन सिंह

तो मनुष्य ही हैं। किन्तु अच्छे आदमी दूसरे के गुणों को ही देखते हैं; दोषों की ओर उनकी आँखें नहीं जातीं।"

अजीत ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया—"तो बाबूजी! रामलखन सिंह में कोई गुण भी तो हो। लम्बी लम्बी रिश्वती रकमें लेकर खूनियों और डाकुओं को बचाने तथा ईमानदार, निरीह, देशभक्त लोगों को धाँध देने में अलबत्ता उसने नाम कमाया है। यदि इन्हीं गुणों के कारण आप उसे प्रतिभा के लिए योग्य वर समझते हैं तो समझें। इतना अत्याचारी आचरण-हीन पुरुष तो पुलिस विभाग में भी ढूँढ़ने से ही मिलेगा।"

बाबू साहब चारपाई पर लेटे-लेटे बातें कर रहे थे। अजीतसिंह के उत्तर से तिलमिला उठे, उठ बैठे और तकिये का सहारा लेते हुए बोले—"बच्चा, तुम्हें आलोचना ही करना आता है या कुछ काम भी कर सकते हो? बूढ़ा हो गया हूं, दमे का शिकार हूं, फिर भी मैंने दौड़-धूप कर के बबुई के लिए वर खोजा। जितनी कठिनाइयां मैंने झेली हैं, जितने अपमान मैंने सहे हैं, यदि उनका कुछ पता तुम्हें होता तो ऐसी आलोचना से होने वाले दुःख का तुम्हें अनुमान भी हो सकता। बेटा, हर काम में, हर आदमी में ऐब ही देखा करने की आदत छोड़ दो। यह आलोचना करना तो तुम्हें तब फबता जब तुमने स्वयं रामलखन सिंह से अच्छा वर ढूँढ़ कर मुझे बताया होता।"

अ०—"बाबूजी मेरी समझ में नहीं आता कि आपको मैं कैसे प्रसन्न करूँ। मैं थोथी, निस्सार और अर्थशून्य रीति-रस्मों का कट्टर शत्रु हूँ, और आप उन्हीं के उपासक हैं। अभी आप यह कह रहे हैं कि तुम बबुई के विवाह के लिए कुछ कोशिश नहीं करते, और यदि अपनी कोई राय बताऊं तो आप रुष्ट हो जायं। मैं तो बबुई का विवाह एक ऐसे पुरुष के साथ

करना चाहता हूँ जिसका नाम सुन कर ही आप आग-बबूले हो जायँगे।''

बाबू सा०—आखिर सुनूं भी तो।

इस समय बाबूसाहब का माथा सिकुड़ गया था और आँखें उत्कण्ठित व्यग्रता और एकाग्र-चित्तता का परिचय दे रही थीं।

अजीत ने कहा, 'कमलाशङ्कर'।

बाबू सा० ने पूछा—कौन 'कमलाशङ्कर'?

यह प्रश्न करने के समय बाबूसाहब की आँखें और भी तीखी हो गयी थीं।

अजीत ने साहस कर के कहा—यही आजमगढ़वाले कमला-शंकर और कौन?'

उनके स्वर में ज्यों की त्यों दृढ़ता बनी रही।

अब बाबूसाहब आपे में नहीं रहे। क्रोध के मारे उनकी आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। काँपते हुए स्वरों में वे बोले—"क्यों रे बेईमान, तू पागल हो गया है क्या? क्या समस्त भारतवर्ष के ठाकुर मर गये जो मैं अपनी कन्या का विवाह ब्राह्मण के साथ करूँ? क्या संसार भर में ऐब निकालते निकालते तेरे होश-हवास ठिकाने नहीं रह गये हैं? क्या घर का सत्यानाश करके ही तू हिन्दुस्तान का सुधार करेगा?''

अजीत जैसे मानी पुरुष के लिए पिता के मुँह से भी निकले हुए ये शब्द असह्य थे। परन्तु, धीरज को हाथ से न जाने देते हुए उन्होंने कहा—"मेरे होश-हवास ठीक हैं, क्योंकि मैं जानता हूँ कि रामलखन ने बीसों स्त्रियों का जीवन नष्ट किया है, और कम-लाशङ्कर में वे सब गुण हैं जो उन्हें प्रतिभा के उपयुक्त बना सकते

हैं। प्राचीन काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सब में योग्यता के अनुसार विवाह प्रचलित था।"

बाबूसाहब ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। निष्क्रिय क्रोध अपनी चरम सीमा तक पहुँच जाने पर बेबसी के रूप में बदल जाता है। वे फिर पैर फैला कर लेट गये और बड़ी देर तक बराबर छत की ओर देखते रहे। वे अपने ही ऊपर झुँझला रहे थे, अपने ही भाग्य को कोस रहे थे।

अजीत बाबू जिस काम के लिए आये थे उसे किये बिना ही अपनी बैठक में चले गये।

[२]

बाबूसाहब बड़ी देर तक सोच में डूबे रहे। धीरे-धीरे नींद आ गयी; वे सो गये। कोई पाँच बजे के अन्दर जागे। तब सुराही में से काँच के ग्लास में पानी लेकर मुँह धोया और एक आराम कुर्सी में पड़ कर थोड़ी देर बाद अजीत की माँ लक्ष्मी को अपने कमरे में बुलवाया। वे आयीं तो बोले—"सुना है अपने लाड़ले का हाल ?"

बाबूसाहब के चेहरे पर गम्भीरता और आँखों में असन्तोष देखकर अजीत की मां ने व्यग्र होकर पूछा—"क्यों, क्या है ?',

बाबूसाहब—'प्रतिभा का विवाह अब कमलाशङ्कर से होगा। लाओ थोड़ा सा का लिख मुँह में पोत लूं और चुल्लू भर पानी में डूब मरूं। सारी जिन्दगी पार करके अब बुढ़ापे में बदनामी बदी है। इस लड़के के रंग-ढंग बिगड़ते ही जा रहे हैं। इसका कोई विचार मेरे विचारों से मिलता ही नहीं। कुछ ऐसा हठीला है कि यदि मैं आम को आम कहूं तो वह उसे इमली जरूर कहेगा। जब तक कालेज में रहा, एक न एक उपद्रव करता रहा। अन्त में वहां से निकाला गया; उसमें भी

मेरी बदनामी हुई। धीरे-धीरे साल भर हो गया; अब तक बी० ए० पास हो गया होता। अभी कल्ह सुना है कि घोष साहब के कारख़ाने के मज़दूरों को भड़काया करता है।'

लक्ष्मी—'तुम्हारी बात उसकी समझ में नहीं आती और उसकी बात तुम्हारी समझ में नहीं आती। तुम उसकी शिकायत करते हो और वह तुम्हारी शिकायत करता है। तुमसे यह भी नहीं होता कि एक दिन उसे बैठा कर अपनी शंकाओं का समाधान कर लो। इतना तो मैं भी जानती हूँ कि उसे तुम जितना पागल समझते हो उतना वह है नहीं। कालेज से निकाला गया तो कुछ गुंडई और लफंगई के कारण तो नहीं। व्यर्थ ही कक्षा में हिन्दुओं की हँसी उड़ाने और देवी-देवताओं की निन्दा किया करनेवाले मास्टर का उसने विरोध किया तो क्या बुराई कर दी? अपने धरम की बात पर लड़ गया तो क्या हर्ज की बात हो गई? मुझे किरिस्तान बना कर बी० ए० नहीं पास कराना है; कौन भूखों मरेजाते हैं। तुम तो पूजा करते हो दो दो घण्टे और लड़के को किरिस्तान मास्टरों और लड़की को किरिस्तान मास्टराइन से पढ़वाते हो। मैं तो कहती हूँ, तुमने अँगरेजी पढ़ाकर बच्चा को भी बिगाड़ा और बबुई को भी बिगाड़ा।'

बाबूसाहब—"मैं अच्छी तरह जानता हूँ, महारानी! इस लड़के को बिगाड़नेवाली तुम्हीं हो। आज से नहीं लड़कपन से ही इसका लाड़-प्यार बढ़ा कर तुमने इसे चौपट किया है। यदि मास्टर ने कुछ बेढंगी बात भी कही थी तो क्या कक्षा भर में बस यही एक विरोध करने के लिए थे। इसी लड़के के लिए क्या जाने कितने दिनों से जिला अफसर की, कमिश्नर की, लाट की, खुशामद करता आ रहा था। सोचा था कि यह बी०

ए० पास हो जायगा तो एक एक चापलूसी की कीमत वसूलकर लूँगा; डिप्टी कलेक्टरी तो इसके लिए रक्खी थी। लेकिन इस लौंडे ने मेरी सारी मिहनत बरबाद कर दी। जाओ, तुम जानो तुम्हारा लड़का जाने; जैसा जी में आवे लड़की का ब्याह करो; मैं अब आज से कुछ हस्तक्षेप नहीं करूँगा। तुम सब को मेरी बात ही नहीं सुहाती तो मुझे छुट्टी मिली; अब निश्चिन्त होकर भगवान का भजन करूँगा।"

लक्ष्मी ने चिढ़ कर कहा—"तो मुझे क्या धमकी देते हो ? मैंने कब कहा था कि बच्चा को अँगरेजी पढ़ाओ ? करनी का फल तो अब भोगना ही पड़ेगा। मैं तो कहती हूं कि कुछ भी हो वह तुमसे तो अच्छा ही है; मेरा भइया तुम्हारी तरह मेमों और रंडियों के पीछे मतवाला तो नहीं बना।"

लक्ष्मी इस झोंक में कुछ और कहने वाली थीं, लेकिन उन्हें जान पड़ा जैसे बाहर बरसाती में कोई मोटर आके खड़ी हो गयी हो। इस कारण वे रुक गयीं। इतने ही में चपरासी ने दरवाजे पर की चिक को जरा सा ऊपर उठा कर कहा—"हुजूर मार्क साहब मिलने आये हैं।"

लक्ष्मी भीतर चली गयीं। बाबूसाहब ने कहा—'कह दो चले आवें।' मार्क साहब सिर से हैट उठाते हुए मकरे के भीतर आये और गुड ईवनिंग कह कर एक कुर्सी पर बैठ गये। वे रेशमी सूट पहने हुए थे। फ्रांस और अमरीका ने सौन्दर्य्यवृद्धि के जितने साधनों का आविष्कार कर रखा है उन सब से उन्होंने लाभ उठाया था। फिर भी बेचारे ब्रह्मा के कला-कौशल के प्रभाव को मिटाने में सफल नहीं हो सके थे। यदि उनकी खोपड़ी गंजी और नाक का अग्रभाग मोटा और फूला न होता तो, सम्भव है, उनके श्याम-वर्ण में भी विशेष अरुचिकरता न आती।

बाबूसाहब ने भी गुड-ईवनिंग किया और अस्वस्थता के कारण पड़े रहने के लिए क्षमा माँगी।

मार्कसाहब ने हैट को पास की मेज पर रखते हुए कहा—

'बाबू साहब! आप तो मेरे लिए उतने ही पूज्य हैं जितने मेरे वृद्ध पिता मिस्टर घोष हैं, आप को इस शिष्टाचार के प्रदर्शन की क्या आवश्यकता है ?'

बाबू साहब—"सो तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ, पर धीरे-धीरे एक एक कदम फूँक फूँक कर पाँव रखने की मेरी आदत होती जारही है। तुम तो अपने बाप के लायक लड़के हो; अभी उनके अशक्त होने के पहले ही तुमने इतने बड़े कारखाने का काम सँभाल लिया है। ईश्वर करे, तुम्हारी जैसी बुद्धि सभी के लड़कों की हो। हमारे भी तो एक साहबजादे हैं; उन्हें किसी का काम अच्छा ही नहीं लगता; बने को बिगाड़ना ही उनका काम है; कभी गवर्मेन्ट की शिकायत करेंगे; कभी किसानों को उभाड़ेंगे; कभी मजदूरों को भड़काएँगे। ईश्वर की कृपा से सरकार के दरबार में अपनी पहुँच है। अगर यह लड़का लायक निकलता तो डिप्टी-कलेक्टरी तो इसे मिली बैठी थी। इसे जाने दीजिए, शांति-पूर्वक अपनी जमींदारी का ही प्रबन्ध करता तो घर में राजा बना बैठा रहता। लेकिन, यह सब कुछ नहीं। बात-बात में मेरा विरोध करता है। मेरी ही तरह और भी बहुत से अभागे पिता हैं जो मिस्टर घोष के भाग्य से ईर्षा करते हैं। उनके लड़कों को अक्सर समझाने-बुझाने की जरूरत पड़ती है। वे बाप को बतौर दोस्त मानते हैं। शिष्टाचार के प्रदर्शन की आदत उन्हीं के कारण आ गयी है। और कहो, कारखाने का काम अच्छी तरह चल रहा है न? बचा ने फिर तो कोई उपद्रव नहीं किया?"

मार्क—"आज आपकी सेवा में आया हूं किस लिए ? उनका आन्दोलन बढ़ता ही जा रहा है। मिस्टर घोष ने आप को यह पत्र दिया है।"

बाबूसाहब पत्र लेकर पढ़ने लगे। पढ़ चुकने पर बोले—"क्या कहूं मार्क, हमारी और मिस्टर घोष की दाँत-काटी रोटी रही है; हम दोनों साथ के पढ़ने वाले लँगोटिया यार हैं। अब देखता हूं कि बच्चा की शरारत से हमारी इस मित्रता में भी बल पड़ने वाला है। पर मैं क्या कर सकता हूं, लाचार हूं।"

मार्क—"बात यह है कि हमाराऔर आप का व्यवहार, जैसा कि आप स्वयं कह रहे हैं, बहुत प्रेममय रहा है। आपने मुझमें और अजीत सिंह में कोई अन्तर नहीं समझा; इसी तरह मेरी बहन मिस घोष और प्रतिभा को भी एकसा समझा। यही व्यवहार मिस्टर घोष का अजीत और प्रतिभा के साथ रहा है। इस कारण वे कोई ऐसा काम नहीं होने देना चाहते जिससे आपको कष्ट मिले। लेकिन हम लोगों के प्रति अजीत-सिंह का व्यवहार अच्छा नहीं है। जिस कारखाने को मि० घोष ने अपने कलेजे के लहू से सींच कर पाला-पोसा है, और अब जिसके लिए मैं चोटी का पसीना एड़ी तक बहा रहा हूं, उसको, जान पड़ता है, अजीत बाबू ने तहश-नहस कर देने का निश्चय कर लिया है।"

बा० सा०—"आखिर वह करता क्या है ?"

मा०—"सुनिए। अजीत बाबू मजदूरों के पास उठते-बैठते हैं, सो तो आपको मालूम ही है। इस उठने-बैठने में उनका असली मतलब क्या है, यह पीछे बतलाऊँगा; पर उनका बहाना देश-प्रेम और उपकार का होता है। वे यह कह कर मजदूरों को उत्तेजित करते हैं कि देखो तुम्हारी कमाई से घोष

साहब मालामाल . . . . . . तुम लोग जानवरों का सा जीवन व्यतीत करते हो; तुम्हें मिल कर संघ बनाना चाहिए और आन्दोलन करके अधिक वेतन प्राप्त करना चाहिए। सो, मजदूरों ने मिलकर हड़ताल करने का विचार कर लिया है। यदि आपने उन्हें न रोका तो बड़ी भयङ्कर हड़ताल होगी और हमारा सारा कारबार चौपट हो जायगा।"

बा० सा०—मैं सब कुछ समझ गया। तुम वास्तव में संकट में हो, पर जो स्वयं संकट में है वह तुम्हें क्या सहायता दे सकता है? मैं तो परेशान हूं। हां, तुम्हें इस बात की पूरी स्वतंत्रता देता हूं कि बच्चा के साथ चाहे जैसे पेश आओ, मुझे तनिक भी रंज न होगा। मिस्टर घोष से यही कह देना।"

मार्क—"बहुत अच्छा। कहीं घूमने न चलिएगा। सबेरे-शाम थोड़ा हवा तो खाया कीजिए। अब तो इलाहाबाद में गर्मी भी खूब पड़ने लगी है; बस यही मई-जून के महीने यहां बड़े कष्ट-दायी हैं।"

बाबूसा०—बेटा, तबियत पर एक बोझा सा पड़ा है, कहीं जाने को जी नहीं करता। मुझे बस यहीं पंखे की हवा खाने दो। हाँ, एक बात तो बताना। वह तुम क्या कह रहे थे, मजदूरों के पास बैठने में बच्चा का असली मतलब क्या है?"

मा०—"आपके सामने कहने में लिहाज मालूम होता है। पर सच बात कब तक छिपायी जा सकती है? बात यह है कि जौनपुर का बशीर अहमद, जो वहां से आपके सम्बन्धियों की सिफारिश लेकर आपके यहां आया था, और जिसे आपकी सिफारिश से मैंने अपने यहां मिल में रख लिया था, यहां सपरिवार रहता है। उसकी औरत कुछ खूबसूरत है और जितनी खूबसूरत नहीं है उतनी मक्कार है। इधर साल डेढ़ साल से अजीत

बाबू के भी ढङ्ग बिगड़े हुए हैं। दोनों एक से मिल गये; फल यह हुआ कि इनका अनुचित प्रेम हो गया; अब तो ये खुल्लम-खुल्ला उसके यहां आते जाते हैं। केवल बशीर अहमद के यहां ही नहीं, हमारे और भी जो बहुत से मजदूर स्त्री-बच्चों के साथ रहते हैं, उनके यहां भी ये आया जाया करते हैं।

बाबूसाहब अवाक् हो गये। छत की ओर स्थिर दृष्टि से देखते हुए क्या जाने क्या क्या सोचते रहे।

मार्क को विश्वास हो गया कि मेरे कहने का प्रभाव पड़ गया।

सूर्य्य डूब गये थे, धीरे-धीरे चन्द्रमा आकाश में शोभायमान हो रहा था। मार्क कुर्सी से उठ खड़े हुए। पास की मेज पर से अपनी हैट उठा कर उन्होंने विदा माँगी और सलाम किया। बाबूसाहब उनका सत्कार करने के लिए आराम कुर्सी पर से उठे और बरामदे में बरसाती के पास तक उनके साथ आये। मोटर के चलते-चलते उन्होंने मार्क से कहा कि मिस्टर घोष से मेरा सलाम कह देना। मोटर सड़क की ओर गयी। बाबू साहब क्षोभ से भरे हुए अपने कमरे में लौटे। उन्होंने निश्चय कर लिया कि आज अजीत से अच्छी तरह समझूँगा।

[३]

उस दिन अपनी बैठक में आने के बाद ही अजीतसिंह कपड़े पहन कर बाहर चला गया था और बड़ी रात गये घर आया। ज्यों-ज्यों रात बीतती थी, त्यों-त्यों बाबूसाहब के क्रोध का पारा ऊँचा चढ़ता जाता था। इस मौके पर यदि अजीत मिल जाता तो बाबूसाहब उससे सब दिन की कसर आज निकालते। क्या जाने कितनी आज्ञाओं की अवहेलना, उपेक्षा, निराशा आदि ने एकत्र हो कर आज उनके संकल्प को दृढ़ किया।

था; उन्होंने निश्चय कर लिया था कि या तो अब अजीत अपने रङ्ग-ढङ्ग बदलेगा या मैं ही घर से अलग हो जाऊँगा; पिता ने पुत्र पर अपने बड़प्पन के अधिकार को प्रकट करने का दृढ़ विचार कर लिया था। वे प्रायः ९ बजे रात को सो जाया करते थे। किन्तु आज दस बजे तक जागते रहे। साढ़े १० बजा, ११ बजा, क्रमशः साढ़े ग्यारह बज गया—इतनी देर तक बाबूसाहब अपनी निद्रा को रोके न रह सके; वे सो गये।

बाबूसाहब की नींद एक बार दो बजे रात को टूटी। बाहर निकले तो देखा खुली हवा में मसहरी लगी है और बच्चा सो रहे हैं। अभी बाबूसाहब की नींद पूरी नहीं थी; वे फिर बिस्तरे पर लेट गये और सोये। अब की सात बजे के पहले उनकी आँख खुली ही नहीं। जागने पर मुँह हाथ धोकर तैयार हुए तो उनका क्रोध शान्त था। फिर भी अजीत सिंह से कुछ बातें करने के लिए वे तुले हुए थे। परन्तु, जब उन्होंने उसकी खोज की तब मालूम हुआ कि वह कहीं बाहर चला गया है। बाबूसाहब का यह वार भी खाली गया। अपनी बेबसी और लाचारी पर वह झुँझला उठे।

बारह बजे के लगभग अजीत बाबू लौटे। उस समय बाबूसाहब आराम कुर्सी में बैठकर सामने की छोटी मेज पर के शीशे में चेहरा देखते और सघन तथा श्यामप्राय मनोहर मूछों और वक्षस्थल तक पहुँची हुई लम्बी दाढ़ी के कहीं कहीं दिखाई पड़ने वाले उजले बालों को कैंची से गिन गिन कर निकाल रहे थे। ज्यों उनकी दृष्टि उनपर पड़ी उन्होंने आवाज़ दी-"सरकार ज़रा तशरीफ इधर लाइए।" इन शब्दों को सुन कर अजीत को आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि, उन्होंने रात को मां से सुना था कि मार्क साहब मिलने आया था और बड़ी देरतक बातें कर के गया।

था। फिर प्रतिभा के विवाह-सम्बन्ध में ही अजीत ने जो बात कही थी, उसकी समझ में, बाबूसाहब को कष्ट देने के लिए कम नहीं थी। इससे तनिक भी विचलित न होकर वह उनके सामने गया और कुर्सी पर बैठ गया। बाबूसाहब गम्भीर होकर बोले—"बच्चा, अब तुम सयाने हो गये हो, लड़कपन में जब तुम मेरी मूँछ के बाल उखाड़ते थे तब मैं आनन्दित होता था, लेकिन यदि बड़े होकर भी तुम ऐसा करो तो न तुम्हें शोभा देगा और न मुझे सहन होगा। यदि पग पग पर मेरा अपमान करने और मेरी बदनामी फैलाने का ही तुमने निश्चय कर लिया है तो मुझसे साफ-साफ कह दो; मैं कहीं गंगाजी के किनारे झोंपड़ी बनाकर अपने कष्टमय जीवन के अन्तिम दिन तो शान्ति-पूर्वक काटूं।"

अजीत ने श्रीहत स्वरों में कहा—"बाबू जी! मैं आपका अपमान तो नहीं करता, केवल किसी किसी बात में मेरा मत आपके मत से नहीं मिलता।"

बाबूसाहब ने अजीत की बात काट कर व्यंगपूर्ण दुर्बल हँसी हँसते हुए कहा—"क्या कहना है! तुम भी तो साठ बरस के बुजुर्ग हो चुके हो, बहुत जमाना देख चुके हो!! फिर ऐसी अवस्था में अपने से उमर में छोटे, और अनुभव में कम किसी के मत से तुम्हारा मत न मिले तो इसमें तुम्हारा अपराध थोड़े ही है!!! बेटा, आज तो नहीं, पर किसी दिन तुम्हें यह मालूम होकर रहेगा कि तुम गलत रास्ते पर थे और तुम्हारा बूढ़ा बाप, जो तुम्हारी भलाई के लिए अपने जीवन की अन्तिम घड़ी तक तुम्हें सचेत करता रहा, सच कह रहा था। मैं आज कहे देता हूँ कि तुम जितना ही मुझे सता रहे हो उतना ही किसी दिन पछताओगे।" बाबू साहब ने यह बात अपने हृदय के अन्तस्तल

से कही थी। उनका रोम-रोम बता रहा था कि अजीत की बेढंगी बातों से उन्हें बड़ा कष्ट है। इसका अजीत बाबू पर प्रभाव पड़ा, परन्तु यह प्रभाव केवल हृदय तक परिमित रहा; मस्तिष्क उससे अछूता ही छूट गया। मस्तिष्क और हृदय के इस प्रखर द्वन्द में वह किंकर्तव्यविमूढ़ से हो गये। थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद उन्होंने कहा—"बाबूजी मैं क्या करूं, जिससे आपको कष्ट न हो?"

बाबूसाहब ने अजीत में अनुकूल परिवर्तन के लक्षण देख कर मृदुतापूर्वक कहा—"बबुई का विवाह बाबू रामलखन सिंह के साथ करने का प्रबन्ध इस वर्ष कर डालो; अभी महीने डेढ़ महीने लगन है। जुलाई में म्योर कालेज में फिर नाम लिखा कर बी० ए० पास कर लो; पास करने पर कोई ऊँचा सरकारी ओहदा दिलाना मेरे ऊपर छोड़ दो। मजदूरों, किसानों आदि को उभाड़ना-भड़काना छोड़ दो; इससे सरकार को भी सन्देह होता है और अपने मिलनेवालों से भी नाहक बैर बढ़ता है। कलेक्टर, कमिश्नर, कप्तान सभी अपने दोस्तों में से हैं; इनसे तुम्हारी भेंट करा सकता हूं। जहां तक हो सके हमेशा अपने से बड़ों या बराबरीवालों के समाज में मिलो-जुलो; नीचों की संगत छोड़ दो; ये आप तो डूबे ही हैं, तुम्हें भी ले डूबेंगे; रही इनके दुख-दर्द को दूर करने की बात, सो जब ईश्वर ही इनकी सहायता नहीं करता तो मनुष्य कहां तक कर सकता है? ऐसा करो कि बुढ़ापे के दिनों में तुम्हारी उन्नति, प्रतिष्ठा, कीर्ति, आदि को देख और सुन कर प्रसन्न होने का मुझे अवसर मिले, न कि दिन-रात शिकायतें उलाहने सुन-सुन कर परिताप की ज्वाला में जलने का।"

अजीत बाबू पिता की बातें शान्तिपूर्वक सुनते रहे। उस समय

कुछ उत्तर न देकर उन्होंने कहा—"बाबू जी, आपकी बातें मैंने सुन ली। मुझे आप तीन दिन का समय दें। मैं अच्छी तरह विचार करके आपसे तीन दिन के बाद बातचीत करूँगा।"

बाबूसा०—"यही सही।"

पिता-पुत्र के बीच समझौते की यह पहली कोशिश थी। अजीत घर के भीतर गये। बाबूसाहब ने स्नान-पूजा का प्रबन्ध करने के लिए जंजाली को आवाज दी।

[४]

अजीतसिंह बड़ी चिन्ता में पड़ गये। बूढ़े पिता की मार्म्मिक बातों ने उन्हें बड़ा दुखी बना दिया था। वह हर तरह से पिता को प्रसन्न करने के लिए तैयार थे, परन्तु साथ ही उचित और अनुचित सभी आज्ञाओं को आँख मूँद कर मान लेने वाले भी नहीं थे। बाबूसाहब की यह प्रबल इच्छा थी कि रामलखन के साथ प्रतिभा का विवाह हो जाय। वे पुलिस विभाग को शासक विभाग समझते थे और उसमें नियुक्त एक साधारण कान्स्टेबुल तक को आदर की दृष्टि से देखते थे, फिर रामलखन तो जिला सुपरिन्टेंडेन्ट थे। जिला भर की देख-रेख जिसके हाथ में है, उसको कुछ लोगों के साथ कड़ा व्यवहार करना ही पड़ेगा, और ये लोग बदला लेने के लिए एक भले आदमी को भी बद-नाम करने को कोशिश करेंगे ही—यही कह कर बाबूसाहब रामलखन की सफाई देते वे। प्रतिभा के विवाह के अतिरिक्त अन्य बातों के सम्बन्ध में भी यही कठिनाई थी। बाबूसाहब किसी न किसी तरह अजीत को बी० ए० पास करने के लिए विवश करना ही चाहते थे। इधर अजीत को सार्वजनिक जीवन का चसका लग गया था। नीच श्रेणी के मजदूरों में

जाकर अजीत का उठना-बैठना बाबूसाहब अपनी हैसियत के नीचे समझते थे। इधर अजीत को यही पसन्द था।

भोजन करने के बाद अजीतसिंह फिर साइकिल पर घर से निकले। इस समय कोई ढाई बजा होगा। एक बँगले की बरसाती में पहुँच कर साइकिल से उतर गये। साइकिल वहीं रख कर भीतर चले गये। चपरासियों ने उन्हें पहिचाना, पूछा—बाबूसाहब आज तो बहुत दिनों के बाद आप आये, घोष साहब कभी कभी हम लोगों से आपकी चर्चा चलाया करते हैं। आज आप आये भी तो इतनी कड़ी धूप में।

अजीत ने उनमें से एक से कहा,"जरा तुम चले जाकर मिस साहब से कह दो कि अजीत बाबू आये हैं। वह तत्काल मिस घोष के कमरे में गया और शीघ्र ही लौट कर बोला—"बाबूजी चले जाइए, अपने पढ़ने के कमरे में ही बैठी हैं।"

अजीत बाबू गये।

दरवाजे पर पड़े हुए परदे को उठा कर उन्होंने कमरे में प्रवेश करते हुये कहा—"मिस घोष! इस समय कष्ट देने के लिए क्षमा करना; तुमसे मिलने की कुछ ऐसी आवश्यकता आ पड़ी कि तुम्हारी असुविधा का ख्याल न कर सका।"

मिस घोष इस समय अजीत का स्वागत करने के लिए आरामकुर्सी से उठ खड़ी हुई। मन्द मन्द मुसकराते हुए उसने कहा—"खूब, अजीतबाबू, खूब। कष्ट आपको हो, असुविधा मुझे हो—मुझे जिसे आप घर बैठे दर्शन देने आते हैं। बैठिए, आज तो आप बहुत दिनों के बाद दिखायी पड़े। आज कल बड़ी गर्मी पड़ रही है; जी करता है कि पहाड़ों को भाग जाऊँ।

अजीत ने एक सोफे में बैठते हुए कहा—"मिस घोष! उल-

हना देने का अधिकार तो तुम्हें तब होता जब तुमने भी मेरी खोज-खबर ली होती।"

मि० घो०—"वाह अजीत बाबू! मुझे दोषी न बनाइए! मैं आपके यहां कई बार जा चुकी, प्रतिभा से भेंट हुई, परन्तु आप का पता नहीं चला। हां, मेरा दोष इतना अवश्य है कि नौ बजे दिन के बाद और छः बजे शाम के पहले गरमी के मारे घर के बाहर मुझसे निकला नहीं जाता। आपका घर में रहने और बाहर जाने का कोई समय ही नहीं मालूम होता; कहीं किसान सभा के लिए सभापति ढूँढ़ रहे हैं, तो कहीं मजदूरों का संघ बनाने के लिए जमीन आसमान एक कर रहे हैं।

अजीत—"तो कुछ बुरा करता हूं क्या?"

मि० घो०—"मैं यह नहीं कहती कि आप यह सब बुरा करते हैं। अपना अपना विचार ही तो है। मुझे तो अच्छा नहीं लगता।"

अ०—"राधिकाकान्तजी के पढ़ाने का कुछ प्रभाव तो पड़ना ही चाहिए। गणित पढ़ाने के साथ ही साथ क्या वेदान्त भी सिखलाते जाते थे? अभी चार ही छः महीने पहले तो तुम मेरे सिद्धान्तों का समर्थन किया करती थीं।"

मि० घो०—"हां, इसमें सन्देह नहीं कि मास्टर साहब के विचारों ने मेरे मत-परिवर्त्तन में बहुत भाग लिया है। मुझे तो गणित से चिढ़ है, और उनके पढ़ाने पर भी उसके प्रति मेरा अनुराग नहीं हुआ। हाँ, उनके वेदान्त ने अवश्य ही मुझे आकर्षित कर लिया। पहले मैं बाइबिल में पढ़ा करती थी कि यदि तुम्हारे एक गाल में कोई थप्पड़ मारे तो उसके सामने दूसरा गाल भी फेर दो। परन्तु, मैं इसका मतलब नहीं समझती थी। मैं बराबर पापा से पूछती थी कि जब मुझे चोट

लगती है तो मैं उसका बदला क्यों न लूँ ? पापा मुझे कभी समझा नहीं सके थे। वेदान्त ने मुझे बता दिया कि सभी प्राणी मात्र, जड़ और चेतन, एक ही तत्व से बने हुए हैं, और उनका आपस का व्यवहार मिथ्या भ्रम-मात्र है, न कोई किसी को मारता है और न किसी को चोट लगती है; चोट लगना भी भ्रम ही है; समझिए तो चोट है, न समझिए तो चोट नहीं है।"

अ०—"तुम्हारी विचार-शृङ्खला को मैं समझ गया । इसके विषय में तुमसे बातें न करके तुम्हारे मास्टर साहब से ही विवाद करना अधिक उपयोगी होगा; तुमसे तो एक दूसरी पहेली सुलझाने में सहायता लेने के लिए मैं आया हूं; तुम्हें यह तो मालूम ही होगा कि पिता जी प्रतिभा का विवाह रामलखन सिंह से करना चाहते हैं।"

मि० घो०—"मैं सब कुछ जानती हूं; प्रतिभा ने मुझसे बतलाया था और पूछा था कि इस विषय में क्या करूं ? मैंने ही उससे कहा था कि अपनी आपत्ति को अजीत बाबू के सामने रक्खो; वे तुम्हारी रक्षा करेंगे। आपको प्रतिभा ने कोई पत्र लिख कर दिया होगा, क्योंकि, हम दोनों में यही तय पाया था।"

अ०—"हां, उस पत्र को पाये दो तीन दिन हो गये; तभी से तो मैं भी झंझट में पड़ गया हूं। मैं क्या करूं ? पिता जी तो रामलखन के साथ ही विवाह करने पर तुले हुए हैं। लेकिन यदि किसी तरह समझाने-बुझाने पर उस विवाह को रोक भी दें तब भी तो प्रतिभा की इच्छा-पूर्त्ति होना कठिन है; वह तो कमलाशङ्कर के साथ ही विवाह करना चाहती है; पिता जी तो ब्राह्मण के साथ सम्बन्ध करने पर राजी नहीं हो सकते।"

मि० घो०—"आपके समाज में आजकल के लिए यह नयी

बात अवश्य है; परन्तु ऐसे विवाह का विरोध तर्क और बुद्धि के आधार पर नहीं किया जा सकता। गत वर्ष जब से कमलाशङ्कर ने प्रतिभा को डूबने से बचाया था तभी से प्रतिभा के हृदय में प्रेम का अंकुर उत्पन्न हो गया था। वह अंकुर प्रतिभा के हृदय में बड़ा होकर पौधा न बनता यदि बीच ही में कमलाशङ्कर की स्त्री मर न जाती; पत्नी-विहीन हो जाने पर कमलाशङ्कर की ओर से भी उसे प्रोत्साहन मिला और अब उसके हृदय की ऐसी स्थिति हो गयी है कि वह दूसरे पुरुष का ध्यान करना पाप समझती है! यदि ब्राह्मण-क्षत्रिय के भेद को भुला कर यह विवाह न कर दिया गया तो प्रतिभा का जीवन नष्ट हो जाने की सम्भावना है।"

अजीत ने मुसकरा कर कहा—"किन्तु इस संसार के तो सभी व्यवहार मिथ्या हैं; दुख और सुख की भावना तो भ्रम-मात्र है—यदि समझिए तो जीवन नष्ट है और न समझिए तो नहीं नष्ट है।"

अजीत की इस पेंच-भरी बात को मिस घोष समझ गयी। लेकिन हार न स्वीकार करती हुई वह फिर बोली—"अजीत बाबू, यह ध्यान रहे कि मैं प्रतिभा के भावों को व्यक्त कर रही हूं। भक्त और धार्म्मिक तो वह मुझसे कहीं अधिक है। परन्तु उसने अभी वेदान्त नहीं पढ़ा है। वह तो अत्यन्त भावुक है, यदि उसके भाव कुचल दिये गये तो वह जीती हुई भी मृतक के तुल्य हो जायगी और, सम्भव है, बहुत दिनों तक जी भी न सके। यदि यह सब अनिष्ट हुआ तो इसका सारा दायित्व आप पर होगा।"

आ०—"अच्छा तुमने तो वेदान्त पढ़ा है; तुमने तो उसके सिद्धांतों का परिशीलन कर लिया है। ऐसी अवस्था में थोड़ी देर के लिए कल्पना करलो कि मिस्टर घोष तुम्हारा विवाह किसी ऐसे पुरुष के साथ कर रहे हैं जो तुम्हें पसन्द नहीं है। तो क्या मैं

आशा करूं कि वेदान्त की सहायता से तुम इस अरुचिकर बात को स्वीकार कर लोगी ?"

मि० घो०—"बुरा तो अवश्य मालूम होगा। परन्तु, वेदान्त के अध्ययन से यह कष्ट भुलाया जा सकता है।"

अ०—"तो अच्छा छुटकारा हुआ; पं० हरिहर सुकुल को प्रतिभा को वेदान्त पढ़ाने के लिए तैनात कर दूंगा और सरलता के साथ अपने उत्तरदायित्व से मुक्त हो जाऊंगा। सुनो मिस घोष! तुम्हारी आँखें वेदान्त की चमक से चकाचौंध हो गयी हैं, और सामने ही की वस्तुएं तुम्हें नहीं दिखायी पड़ रही हैं। जिनका पेट भूख की ज्वाला से जल रहा है, जो पग पग पर अपमान सह रहे हैं, उन्हें वेदान्त के सिद्धान्तों से सन्तोष नहीं होता। अभी हाल की बात है कि तुम्हारे मिस्टर मार्क ने बशीर अहमद की स्त्री पर अत्याचार किया है, उस नेक चलन स्त्री के सतीत्व पर आक्रमण करके समस्त मजदूरों में अशान्ति उत्पन्न कर दी है। बशीर अहमद क्रोध से बावला सा हो रहा है। ऐसी दशा में क्या उसे वेदान्त से सन्तोष होगा ?"

मि० घो०—"क्या बशीर अहमद वाली बात सच है? आप को अच्छी तरह मालूम है? मैं तो यही जानती थी कि अजीत बाबू मजदूरों को वेतन-वृद्धि के लिए भड़काया करते हैं।"

अ०—"यही तो जानेगी ही; पंखे के नीचे आराम कुर्सी में बैठ कर कल्पना के महल में घूमने में जो आनन्द है वह धूप में निकल कर सत्य बात का पता लगाने में थोड़े ही है। अजीत को तो कुत्ते ने काटा है जो व्यर्थ ही उत्पात मचाया करता है।"

अजीत के स्वर में वह शक्ति थी जो कष्ट-सहन और स्वार्थ-त्याग से मिलती है।' मिस घोष को ऐसा मालूम होने लगा जैसे उसने अपने कर्त्तव्यों का पालन न किया हो; वह निरुत्तर और विवश सी हो गयी।

इस प्रसंग को समाप्त समझ कर अजीत ने कहा—"मिस घोष ! तो प्रतिभा के विवाह के सम्बन्ध में तुम्हारी पक्की राय यही है कि कमलाशङ्कर के साथ हो।"

मिस घोष ने उत्तर दिया—"हां, मेरी तो पक्की राय है। और यदि आपने इसके लिए पूरा प्रयत्न नहीं किया तो मैं आप को कायर समझूँगी।"

अ०—"यह खूब कहा ! तुम्हारे बिचार के अनुसार कोई काम न करूं तो कायर कहलाऊं, उधर पिताजी का कहना न मानूँ तो नालायक़ बनूं !! मैं तो कहीं का न रहा !!! लेकिन मिस घोष ! अब तो मैं तुम्हारे अनेक विचारों के अनुसार कार्य्य नहीं करता, इस कारण अपने मन में तो तुम मुझे बहका हुआ समझती ही होगी, फिर वीर कहलाने की ही आकांक्षा क्यों करूं ?"

मिस घो०—"अजीत बाबू ! मुझे लज्जित मत कीजिए। आपको कायर समझने की मुझमें हिम्मत नहीं है। आप में अपार कार्यकारिणी शक्ति है, मत भेद केवल उसके प्रयोग के सम्बन्ध में हो सकता है। जब शरीर की सुविधाओं को भुला कर व्यर्थ ही आप धूप और पानी में दौड़ते हैं तब मुझे कष्ट हुआ करता है और उस समय यही इच्छा होती है कि आप से एक दिन खूब बहस करूं। लेकिन, यह बात सच है कि यदि प्रतिभा का विवाह उसकी इच्छा के अनुसार नहीं हुआ तो आपको कायर समझने का साहस मेरे हृदय में उत्पन्न हो जायगा।"

अ०—"मुझ पर ही यह अनुग्रह क्यों है ? यही बात अम्मा से जाकर क्यों नहीं कहतीं ? इस मामले में तो वे भी मेरा विरोध कर रही हैं, अन्न-जल त्याग देने की धमकी देती हैं;

उधर दादा घर छोड़ देने को उतारू हैं; शांता की मां तो नित्य झगड़ा किया ही करती है।"

मिस घोष—"आप ये सब आपदाएं गिना क्यों रहे हैं? क्या मैं इन्हें जानती नहीं? और यह तो बताइए, क्या बशीर अहमद का पक्ष लेकर आंदोलन का संगठन करने के समय ये ही लोग आपका विरोध नहीं करते थे? क्या दादा को ये बातें पसन्द थीं? क्या अम्मा और भाभी को तब कष्ट नहीं हुआ था? क्या प्रतिभा बशीर अहमद से भी गयी बीती हो गयी? उसके जीवन का कुछ मूल्य ही नहीं रह गया क्या?"

अ०—"मिस घोष! दादा ने जिस करुणा-जनक ढंग से मुझसे बातें की हैं उससे मेरे हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा है।" मैं सोचती हूँ, यदि कोई ऐसी राह निकल आये जिससे उनकी सदा की शिकायतें दूर हो जायं तो अच्छा। तुम्हीं सोचो, अगर वे घर छोड़ देंगे तो क्या होगा?"

मि० घो०—आप अपने ऊपर से सारे झंझट हटा दीजिए, यह तो मैं हृदय से चाहती हूं। बल्कि जिस दिन आप कहेंगे कि ऐसा मैंने कर डाला, उस दिन मैं आपको भर पेट मिठाई भी खिलाऊँगी। लेकिन, प्रतिभा के सम्बन्ध में मैं आपको छुट्टी नहीं दूँगी।"

यह कह कर मिस घोष हँसने लगी। अजीत ने भी मुसकरा कर कहा—"यह खूब! मीठा मीठा गड़प, कड़ुआ कड़ुआ थू!!"

मिस घोष ने गम्भीर होकर कहा—"बात यह है कि प्रतिभा को आपने अपने ढंग की शिक्षा दी है, उसके विचारों को आपने अपनी शैली में ढाला है। इस कारण, जब तक वह आपकी शिक्षा के विरुद्ध आचरण न करे तब तक आपको उसका सहायक होना पड़ेगा।"

अजीत ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह फिर विचार-मग्न हो गये।

धीरे-धीरे पाँच बज गया था। उन्होंने घड़ी की ओर देखते हुए कहा—"अब जरा तुम्हारे मास्टर साहब के पास जाना है, अपने सिद्धांतों के सम्बन्ध में उनसे अच्छी तरह बहस करनी है।"

मि० घो०—"यदि मास्टर साहब से बातचीत करनी है तो कोई आध घण्टे और ठहर जाइए; संध्या को उनके यहां जाने का मेरा भी वादा है; आप लोगों को बातचीत को मैं भी सुन सकूँगी और उससे कुछ लाभ उठा सकूँगी।"

अ०—"बड़ी अच्छी बात कही।"

मिस घोष भीतर चली गयी और थोड़ी देर में कपड़े आदि बदल कर आ गयी। दोनों साइकिलों पर बैठ कर राधिकाकान्त के यहां चले। मार्ग में अजीत ने हँस कर कहा—"मिस घोष, तुम तो ईसाई महिला समझ ही नहीं पड़ती हो; तुम्हारे विचारों में हिन्दुत्व है, चाल ढाल में हिन्दुत्व है, वेषभूषा में हिन्दुत्व है; मिस्टर घोष भला यह सब कैसे पसन्द करते होंगे? अब तो वे बड़े कट्टर पादरी हो रहे हैं।"

मिस घोष ने सहज मुसकराहट के साथ उत्तर दिया—"अजीत बाबू! आपको यह जान कर अचरज होगा कि मैं हिन्दू हूं और उसी जाति की हूं जिसके आप हैं। मैं उन अभागी लड़कियों में से हूं जिन्हें ईसाई और मुसलमान मेलों में से चुरा ले जाकर अपनी बना लेते हैं। और, मेरी इस वेषभूषा पर आपत्ति न होने का कारण क्या है सो भी सुनिए; मैंने मि० घोष से कह दिया है कि मैं विवाह करूँगी तो अपनी पसन्द के हिन्दू ही के साथ करूँगी, नहीं तो, अविवाहित ही रहूँगी।

मेरे इस विचार से वे सहमत ही नहीं, बहुत प्रसन्न हैं। सच पूछिए तो इसी कारण उन्होंने मिस्टर मार्क को यह नहीं जानने दिया है कि मैं उसकी सगी बहन नहीं हूं।"

अजीत ने चौंक कर कहा—"क्या तुम सच कहती हो मिस घोष? हँसी तो नहीं कर रही हो?"

"अजीत बाबू के साथ कभी ऐसी हँसी करने का साहस मैंने नहीं किया है"—मिस घोष ने कुछ गम्भीर होकर कहा।

अजीत किसी विचार में डूब गये। थोड़ी देर के बाद बोले—"मिस घोष, तुमने मुझे यह पहले कभी नहीं बताया?"

"उसका कभी मौका नहीं आया और मैंने उसे इतना आवश्यक नहीं समझा कि स्वाभाविक रूप से आये हुए अवसर के अभाव में भी आपको बताती"—यह कह कर हलके पैरों साइकिल चलाते हुए मिस घोष ने अजीत की ओर भावपूर्ण नेत्रों से देखा।

अजीत ने साइकिल पहले ही धीमी कर दी थी। उसने एक ठंढी साँस भर कर कहा—"मिस घोष तुमने अच्छा नहीं किया। यदि तुमने यह गलती न की होती तो आज तुम मेरे और मैं तुम्हारे बहुत निकट होता।"

यह ठण्डी साँस मिस घोष की छाती पर साँप की तरह लोट गयी। जिस अजीत को वह इतना निष्ठुर, इतना प्रेम-शून्य समझती थी उसमें इस भावुकता का संचार कहाँ से हो आया? अजीत की इस भावुकता के सहस्रांश का भी रसास्वादन करने के लिए उसने कितने दिन और कितनी रातें बेचैनी के साथ काटी थीं! और, फिर भी मरुभूमि में लुप्त सरस्वती की तरह वह आँखों से ओझल ही रहा। अजीत की

इस मनोवृत्ति से परिचय पाकर मिस घोष को कुछ संतोष किन्तु उससे अधिक विषाद हुआ।

एक सरस संभावना की कल्पना ने जिस मादक सुख की मदिरा से अजीत को क्षण भर के लिए उन्मत्त कर दिया था, अजीत ने उससे शीघ्र ही छुटकारा पाने का प्रयत्न किया। स्वस्थ होते ही वह बोला—"मिस घोष! तुम्हारी इस इच्छा-पूर्त्ति में यदि मैं कोई सहायता कर सकूं तो विश्वास रखो कि मैं सहर्ष करूँगा।"

मिस घोष ने हँसकर उत्तर दिया—"क्या मेरे लिए वर खोजना चाहते हो अजीत बाबू?"

अजीत ने कहा—"क्यों नहीं, मुझसे अब भी जो कुछ हो सकता है उसे क्यों नहीं करना चाहूँगा? तुम्हारा विवाह शीघ्र ही होना चाहिए; वर खोजने भी दूर नहीं जाना है।"

मिस घोष मुसकरायी। फिर बोली—"भला मैं भी तो सुनूं उस 'वर' का नाम।"

अजीत ने धीरे से कहा 'राधिकाकान्त'

मिस घोष ने रमणी-सुलभ नेत्र-कटाक्ष करके कहा—"पहले आप प्रतिभा दीदी की विवाह-समस्या को सुलझा लीजिए, फिर मेरी चिन्ता कोजिएगा। अभी न मुझे हिन्दू ही होने की जल्दी है और न ब्याह ही करने की।

धीरे धीरे राधिकाकान्त के मकान पर मिस घोष और अजीत बाबू आ गये।

[५]

बाबू राधिकाकान्त के मकान पर अजीत और मिस घोष पहुँचीं तो उन्होंने देखा कि वहीं कमलाशङ्कर भी बैठे हैं। आगन्तुकों के आराम से बैठ जाने पर राधिकाकांत ने अजीत सिंह

से कहा—"बाबूसाहब आपका तो अब दर्शन ही दुर्लभ हो गया। परन्तु, आनन्द की बात है कि आपका समय बहुत अच्छे कार्य में लग रहा है ; आप सदैव दीन जन के उपकार-चिन्तन में रत रहते हैं ; खलों की आँखों में आप काँटे की तरह खटकते हैं ; आपका उद्योग बड़ा ही प्रशंसनीय है।"

अ०—'मास्टर साहब ! आपकी सहानुभूति के लिए धन्यवाद देता हूं। परन्तु वास्तव में मैं इसके लिए नहीं आया हूं। इस समय मेरे सामने एक पहेली है ; उसी को हल करने में आपकी सहायता चाहता हूं।"

मिस घोष ने मुसकरा कर कहा—"उस पहेली को लिये लिये आज ये दोपहर से ही घूम रहे हैं ; दो तीन घण्टे मेरे यहां रहे हैं ; जब मुझसे न बन पड़ा तब आपके पास आये हैं।"

कमलाशङ्कर बोले—"सो तो ठीक ही है। आप क्या सहायता दे सकती थीं ! आप लोग तो स्वयं मूर्त्तिमान पहेलियाँ हैं। हमारे यहां सब से अधिक ज्ञानी शङ्कर हैं, सो वे भी आप लोगों की पहेलियों को न बूझ सके।"

राधिका—"कमला बाबू आप ठीक कहते हैं, संसार की सारी पहेलियों की सृष्टि करनेवाली स्त्रियां ही हैं ; सच पूछिए तो संसार-रूपी पहेली का जन्म भी स्त्री से ही हुआ है ; स्त्रियों के कारण मकान बनाना पड़ता है, धन प्राप्त करना पड़ता है ; और फिर राग-रोष सभी की उत्पत्ति हो जाती है।"

मिस घोष ने अजीत की ओर देखते हुए हँसकर कहा—अजीत बाबू, क्या आप भी मेरा पक्ष न लेंगे ? आप ही बताइए कि आपकी पहेली पुरुष ने बनायी है या स्त्री ने ?"

कमलाशङ्कर को प्रतिभा के पत्र का हाल मालूम था। वे मिस घोष का संकेत समझ गये। उन्होंने सोचा, हो न हो

उसी के सम्बन्ध की कुछ बात है। मिस घोष को छेड़ कर वे पछताए। इसी बीच में अजीत ने कहा-"मेरी पहेली आप लोग सुन लीजिए, फिर उसके बनानेवाले का नाम ठिकाना पीछे जानते रहिएगा। मेरे सामने प्रश्न यह है कि मेरा और पिता जी का समझौता कैसे हो। बुढ़ापे में उन्हें कष्ट देकर मैं अपयश नहीं लेना चाहता। साथ ही आत्मा का पतन भी नहीं करना चाहता। साँप मरे और लाठी न टूटे—मैं तो वही उपाय चाहता हूं।"

राधि०—"सो तो कठिन है। आप देशभक्त हैं, आपके पिता राजभक्त। जब राजा और प्रजा विदेशी हों तब देशभक्ति और राजभक्ति का मेल नहीं हो सकता। वे जमाना देखकर काम करनेवाले पुरुष है; जरूरत पड़ती है तो कान्स्टेबुलों तक की खुशामद कर देते हैं, कलेक्टर, कमिश्नर आदि के यहां उनकी हाजिरी बँधी हुई है। इधर आप निर्भीक और स्वतन्त्र पुरुष हैं। आप दोनों में जमीन-आसमान का फर्क है; ऐसी दशा में सिद्धान्तों का त्याग किये बिना आप दोनो का एकमत होना कठिन है। बाबू साहब तो अपना मत बदल ही नहीं सकते। आप ही को झुकना पड़ेगा।"

अ०—"परन्तु मैं तो सच्चाई और कर्तव्य को प्रथम स्थान देता हूं। भारतवर्ष की वर्त्तमान परिस्थिति में भारतीय पुरुष को जैसा होना चाहिए और जैसे कार्य करने चाहिए वैसा होना और वैसे कार्य्य करना ही मेरे जीवन का लक्ष्य है। इसमें तो कोई परिवर्त्तन नहीं हो सकता। सेवा-धर्म ही इस युग का प्रधान धर्म है, उसी से ईश्वर भी मिल सकते हैं।"

रा०—"भाई, मनुष्य-मात्र के जीवन का केवल एक ही उद्देश हो सकता है, और वह है इस संसार के झगड़ों से छुट्टी

पाना। भारतवर्ष की स्थिति के कारण किसी मनुष्य का दूसरा कोई जीवन-लक्ष्य नहीं हो सकता। सबको ईश्वर का अनुभव करने की आवश्यकता है। इस कार्य्य के लिए एकान्त-वास, चिन्तन और मनन अनिवार्य्य है। सांसारिक झगड़ों में पड़े रहने से यह सब नहीं होता। मैं तो समझता हूं कि यदि आप को आध्यात्मिक रस का स्वाद मिले तो सम्भवतः इस पचड़े में आप न पड़ें। समाधि और चित्त की एकाग्रता में जो आनन्द है उसका भी उपयोग कीजिए। मैं तो इसी ओर ढला जा रहा हूँ, और देखता हूँ कि मेरा जीवन शान्तिमय है, आनन्द मय है।"

अ०—"मैं आध्यात्मिक रस से अपरिचित नहीं हूं। मैंने तो उसे इसलिए त्याग दिया कि वर्त्तमान कष्ट के समय देश का कार्य्य न करना और राम-नाम जपने अथवा अनन्त का चिन्तन करने बैठना स्वार्थ-साधन है, अन्याय है, कायरता है, महापाप है। कर्त्तव्य की अवहेलना करके सच्चा आनन्द नहीं प्राप्त किया जा सकता। यह तो ढोंग है! पाखण्ड है।"

रा०—"अजीत बाबू! आपका कहना गलत है। आत्मानुभव के लिए समस्त वासनाओं का बलिदान करके एकान्त-चिन्तन करना भी यदि स्वार्थ-साधन है, कायरता है, महापाप है तो क्या यश-लोलुप और अहम्मन्य देशभक्तों की निस्सार वाणी, कान-फोड़ तथा गला-फाड़ व्याख्यानबाजी और थोथी कार्य्य-प्रणाली में ही सत्य और धर्म्म का पूरा समावेश हो गया है? हां, निस्सन्देह, देशभक्ति ही एक ऐसी तपस्या है जो तत्काल सिद्धि देती है। मौके की बात कह दीजिए, श्रोता-मण्डली करतल-ध्वनि करने लगती है, तरुणी महिलाएं मुस-करा देती हैं और 'वचने किं दरिद्रता' का जितना ही ध्यान रखा जाता है उतनी ही पूजा बढ़ जाती है। 'महात्मा' की डिग्री भी थोड़े ही परिश्रम से मिल जाती है।"

यह कह कर राधिकाकान्त कमलाशङ्कर की ओर मुँह करके हँसने लगे। मिस घोष भी मुसकरायी। अजीत को यह अखर गया। राधिकाकान्त की भाषण-शैली और हँसी में अजीत को बड़प्पन की ध्वनि समझ पड़ी और, मिस घोष की मुसकराहट में उनके पक्ष-समर्थन की सूचना।

मिस घोष की यह हार्दिक इच्छा थी कि अजीतबाबू उस अस्थिरतापूर्ण जीवन से विरत हो जायं जिसमें देशभक्ति की भावना ने उन्हें डाल दिया है। इसलिए उसने कहा—"अजीतबाबू, आप देशभक्ति और आनन्द की प्राप्ति को मिला क्यों रहे हैं; आनन्द तो आध्यात्मिक और धार्मिक आचरण से ही मिलेगा। मैंने तो कितने ही देशभक्त व्यापारी देखे हैं; वे देशभक्ति इसलिए करते हैं कि उनका व्यापार चमके, उनका विज्ञापन बढ़े। क्या ऐसों को आप महात्माओं से भी बड़ा मानेंगे।"

मिस घोष के मुँह से यह सुनना अजीत को अच्छा नहीं मालूम हुआ। उन्होंने सोचा—इस लड़की को मैंने पढ़ाया है, अब यह मुझे उपदेश देने चली है! थोड़ी देर के बाद उसकी उपेक्षा करते हुए वह फिर बोले—"मास्टर साहब! यदि सब लोग माला ही फेरने लगेंगे, अध्यात्म-रस में ही लौलीन हो जायँगे तो हिन्दू जाति तो मिट जायगी, भारतीय सभ्यता का तो सर्वनाश हो जायगा। क्या इसके लिए हमें सचेष्ट न होना चाहिए?

रा०—"और यदि आप पिता का कहना न मानेंगे, अपनी जमींदारी का सुप्रबन्ध न करेंगे तो क्या आपका घर न मिट जायगा? जब आप ऐसा ही सोचते हैं तो अपने घर का काम-काज क्यों नहीं सम्हालते? अजीत बाबू, जरा वेदान्त तो देखिए, उपनिषत् का पारायण तो करिए, कहां कौन मिटता

है और कौन मिटाता है! जीवन-मरण केवल रूपान्तर मात्र है।"

क०—"भाई यह तो सब गोरखधंधा है। अभी भोजन न मिले तो वेदान्त और उपनिषत् वालों की कचूमर निकल आवे। बड़े-बड़े भजनीकों को देखा है; जब पेट की कांव-कांव से तंग आ गये तब कहने लगे:—

"भूखे भजन न होय गुपाला।
लीजे अपनी कण्ठी माला॥"

मेरी राय कोई माने या न माने, मैं तो कहता हूं कि वही ईश्वर-भजन भला जिससे रोटियां मिलें; वही देशभक्ति भली जिससे पेट भरे। पहले अपने जीने का प्रबन्ध कर लो, फिर संसार भर को जिलाओ। छल से, बल से, जैसे बने अपने को मजबूत बनाओ। कम से कम मैं चापलूसी अथवा धूर्तता को बुरा नहीं समझता; अगर इससे अपना जोर बढ़ता हो तो यह सब जरूर करना चाहिए। संसार में छीना-झपटी और नोच-खसोट के सिवा और है क्या? जो सीधे और कमजोर हैं, बुद्धिहीन हैं, बेबस हैं, वे मारे जाएँगे; जो चालाक, मजबूत दूर की सोचने वाले और चौकन्ने हैं वे मौज उड़ायेंगे।"

कमलाशंकर ने जिस ढंग से यह बात कही थी उससे किसी को इसका विरोध करने की इच्छा नहीं हुई।

ये बातें हो ही रहीं थीं कि मिस घोष जैसे किसी व्याकुलता का अनुभव करती हुई एकाएक उठी।

राधिकाकान्त ने समझा कि मिस घोष गरमी से परेशान हो गयी है, उन्होंने कहा—"अब इस बहस को यहां तो बन्द कीजिए, यदि कुछ विवाद करना ही अभीष्ट हो तो चलिए पार्क की ओर चलें।" सब लोग कुर्सियों से उठकर बाहर आये।

कमलाशङ्कर ने मिस घोष से अकेले में हँस कर कहा—"अब तो मास्टर साहब काफी सफाई और ठाट-बाट से रहने लगे हैं। यह सब आपकी लीला है।" मिस घोष कुछ उत्तर न देकर मुसकराती हुई साइकिल पर बैठी और थोड़ी देर और ठहरने के लिए किये गए समस्त आग्रहों को एक मधुर 'गुड नाइट' में विसर्जित करती हुई जार्ज टाउन की ओर चल दी। शेष तीनों महाशय कम्पनी बाग में चले गये।

[६]

भिन्न-भिन्न सभाओं समितियों में भाग लेने और कई संस्थाओं के मन्त्री होने के कारण अजीत बाबू ठीक समय पर भोजन नहीं कर सकते थे। इससे घर के सब लोगों को तो कष्ट होता ही था, परन्तु सबसे अधिक दादी महराजिन को होता था, क्योंकि इससे दादी को जल्दी छुट्टी नहीं मिलती थी। परन्तु, आज तो घर पर रहने पर भी अजीत बाबू जल्दी भोजन नहीं कर लेते। दादी ने आध-आध घण्टे का अन्तर देकर तीन बार अपने लड़के मूलचन्द को भोजन के लिए बुलाने को भेजा। दो बार तो अजीत ने उसे साधारण ढंग से विदा कर दिया, परन्तु तीसरी बार ऐसा डाँट दिया कि बेचारे छोटे बालक के होश गुम हो गये; वह चुपचाप रोता हुआ अपनी मां के पास पहुँचा। थोड़ी देर में अजीत ने जंजाली से कहला भेजा कि आज तबियत अच्छी न होने के कारण मैं भोजन नहीं करूँगा।

यह सुन कर लक्ष्मी देवी उनके कमरे में दौड़ी आयीं और व्यग्रता-पूर्वक पूछताछ करने लगीं। फिर शान्ता की मां पद्मा आयी। स्वयं बाबू साहब आये, और चिन्तित स्वर में बोले—"बच्चा तबियत कैसी है ? बस खाने-पीने में देर सबेर हो गयी,

या कड़ी धूप में तुम्हारा चलना-फिरना अनिष्टकर हो गया। ज्वर तो नहीं है?"

अजीत—"नहीं पेट में दर्द है।"

बाबूसाहब ने जंजाली को आवाज दी। जंजाली घबराया सा आकर खड़ा हुआ। बाबूसाहब ने कहा-"जरा ताँगा लेकर चले जाओ और अनन्तराम वैद्य को बुला लाओ।"

अजीत—"बाबू जी, साधारण दर्द है; वैद्य को बुलाने की आवश्यकता नहीं है।"

बाबू सा०—"बेटा, रोग, शत्रु, ऋण, और आग बहुत नगण्य अवस्था में हों तो भी इनसे सचेत रहना चाहिए।"

अ०—"जंजाली, उधर जाते ही हो तो श्यामलाल जी को भी बुलाते आना।"

जंजाली गया और थोड़ी देर में अनन्तराम वैद्य और श्यामलाल सिंह पहुँच गये। पन्ना घर में गयी। दो रुपये आने की फ़ीस और दो रुपये दवा के दाम लेकर वैद्यराज वापिस गये। बाबू साहब को कुछ ढाढ़स हुआ और अब वे भोजन करने चले गये।

अजीत ने हँस कर श्यामलाल से कहा—"देखा बाबू जी का हाल? जरा सा कह दूं कि सिर में दर्द है तो रुपया पानी की तरह बहाने लगें। अभी कल्ह क्रुद्ध हुए थे तब जान पड़ता था कि देखते ही निगल जायँगे; आज प्रेम का पार ही नहीं मिलता! दिन भर के भीतर जितने मिलने वाले आयेंगे सबसे मेरी शिकायत करेंगे, नालायक, सनकी सभी कुछ कहेंगे, पर मेरे चेहरे पर जरा भी उदासी छा जाय तो देखो फिर इनकी दशा! चार रुपये मुफ्त में वैद्यराज जी ले गये, मेरे पेट में दर्द थोड़े ही है!"

श्याम०—"फिर नाहक ही घर वालों को परेशान करते हो।"

अ०—"नाहक भी नहीं है, दर्द तो है, पर पेट में नहीं दिल में है।"

श्याम०—"कहीं किसी सुन्दरी का जादू तो नहीं चल गया क्या ?"

अ०—"तुम भी क्या कहते हो ! एक लड़की का बाप बना, फिर भी अभी नये-नये प्रेम करता रहूँगा क्या ?"

श्याम०—"यह तो न कहो, प्रेम करने वाले मरते दम तक प्रेम—रस का स्वाद लिया करते हैं। तुम्हारे ऊपर भी मिस घोष का असर तो कुछ-कुछ जरूर है। उसने कुछ निराश कर दिया क्या ?"

अ०—"भाई, मेरी स्त्री मौजूद है, सुन्दरी है, पढ़ी लिखी है, ऐसी दशा में यह सब कहने से तुम्हारा क्या मतलब है ? दूसरा विवाह तो मुझे करना नहीं है ?"

श्या०—"यह कहो कि अंगूर ही खट्टे हैं। मिस घोष को तो मास्टर राधिका कान्त ने अच्छी तरह शिष्या बना लिया है। हुजूर ही ने तो उन्हें घोष साहब के यहां पहुँचाया। तुमने समझा था कि सीधे-सादे वेदान्ती हैं; उन पर प्रेम का जादू नहीं चलेगा।"

अ०—"सचमुच यह तो बड़ा घाघ जान पड़ता है। मैं पहले इसे बहुत सरल स्वभाव का समझता था। जब से मिस घोष को यह पढ़ाने लगा है तब से कितना बन ठन के रहने लगा है। वेदान्त और एक ब्रह्मवाद की दुहाई देकर इसने बड़ी ही सहूलियत और खूबसूरती के साथ देश और समाज के प्रति कर्तव्य-पालन से छुट्टी ले ली है। कल्ह तो कम्पनीबाग में मैंने खूब फटकारा। एक तो आलस्यमय और कर्मण्यताशून्य जीवन व्यतीत करें, दूसरे हमीं लोगों को अज्ञानी बतलावें। तुम्हीं बताओ, अभी

किसी दुखिया का रोना सुनायी पड़ जाय तो वेदान्त पढ़ना शोभा देगा या उसके दुख को दूर करने का कुछ उपाय करना उचित होगा? कमलाशङ्कर ने भी ऐसा आड़े-हाथों लिया कि मास्टर साहब को याद हो गया होगा।"

श्या०—"भाई, मैं तो राधिका मास्टर की तारीफ़ करूंगा। उससे सभी प्रसन्न हैं। मिस्टर घोष, बाबूसाहब, प्रिंसिपल राघवशरण आदि सभी को वह अपने वश में किये रहता है। मिस घोष पर तो राधिका ने ऐसा रंग जमाया है कि अब उसको दूसरे की चर्चा ही नहीं सुहाती; यदि मास्टर साहब को वह थोड़ी देर तक न देखे तो उसे चैन ही न पड़े; वेदान्त के पीछे तो वह बावली हो रही है।"

यह कहने के बाद श्यामलाल जरा सा थम गया। फिर मुसकरा कर बोला—"कहीं तुम्हारे दिल-दर्द का कारण द्वेष तो नहीं है?"

अ०—"श्यामलाल, तुम समझते हो कि तुम्हारे ही समान सब के पास समय है और सभी जिस तिस स्त्री के हाव-भाव के शिकार बन कर अपना सर्वस्व-समर्पण करने को तैयार रहते हैं। बात यह है कि कल्ह मुझसे राधिकाकान्त का झगड़ा हो गया। भाई, मैं ऐसे आदमी को पसन्द करता हूं जो साफ साफ कह दे कि देश का काम करने की मुझमें शक्ति नहीं है; मैं त्याग नहीं कर सकता। ऐसा न करके जो अध्यात्म-अध्यात्म चिल्ला कर अपना बड़प्पन सिद्ध करे और प्रेम की दुहाई देकर तथा शृंगार और बनावट के द्वारा स्त्रियोंको बहकावे तो उसे तो मैं नीच, धोखेबाज, धूर्त, और बेईमान कहे बिना रह नहीं सकता। देश की ऐसी स्थिति है कि करोड़ों भाइयों को एक जून भी भरपेट भोजन नहीं मिलता और ये लोग हलुआ पूड़ी खाते,

गुलछर्रे उड़ाते, और भगवद्भजन के गीत गाया करते हैं। बातों-बातों में वे अपने सिद्धान्तों की सत्यता की डींग हाँकने लगे। यहीं तक होता तो सह्य था। किन्तु, देशभक्तों की दिल्लगी भी उड़ाने लगे। कहने लगे—देशभक्ति करके, देशोद्धार का राग अलाप कर के बहुत से लोग नाम पैदा करना चाहते हैं; यह इच्छा भी एक वासना ही है; शान्ति और सुख पाने के लिए इस वासना का दमन भी करना चाहिए। देखते हो पिता जी मुझसे कितना असंतुष्ट रहते हैं। बाहर भी कितने झंझट खड़े होते रहते हैं। घोष से मुझसे कौन सा बैर है? केवल कर्तव्य-पालन की दृष्टि से ही तो यह सब करता हूं। इसमें मेरा कौन सा लाभ है? ऐसी अवस्था में भी मुझे स्वार्थी और वासना-मय बता कर क्या उन्होंने मेरा अपमान नहीं किया? जानते ही हो, जब मुझे क्रोध आता है तब मैं पागल सा हो जाता हूं; कमला-शङ्कर न होते तो हाथापाई हो गयी होती।"

अजीत को चिढ़ाने की इच्छा से श्यामलाल ने मुसकराते हुए कहा—"तो गलती तो हुजूर ही की थी।"

अ०—"मेरी यह गलती हो सकती है कि मैं जल्दी क्रुद्ध हो गया।"

श्या०—"नहीं सरकार, आपने ऐसा विषय छेड़ा ही क्यों? उन्होंने यह समझ लिया कि मुझे पछाड़ कर बड़ा बनने के लिए यह आया है। मिस घोष भी थी न?"

अ०—"जब राधिकाकांत के यहां बैठक हुई थी तब तो थी, फिर चली गयी थी।"

श्या०—"खैर, वह तो एक ही सिलसिला था। प्रेम-पात्री के सामने कोई प्रेमी अपनी लघुता नहीं स्वीकार कर सकता। राधि-काकांत मन में भले ही मानते हों कि देश का कार्य्य करनेवाला

व्यक्ति मुझसे अधिक पूज्य है, परन्तु मिस घोष की दृष्टि में तो वे सब से विचित्र, त्यागी, और प्रतिभा-सम्पन्न बनने को कोशिश करेंगे; इसमें वे कसर करें तो मिस घोष हाथ से निकल जाय; स्त्रियां तो शक्ति और प्रभाव की दासी हैं। और, राधिकाकांत बराबर शांत रहे न? कम से कम उन्होंने क्रोध तो नहीं प्रकट किया न?"

अ०—"उत्तेजित वे अवश्य हुए थे, लेकिन विशेष क्रोध तो मुझे ही आया था। इसके लिए आज मुझे बड़ी ग्लानि है। अनुताप और लज्जा के कारण आज तबियत भोजन करने को भी न चाही। राधिकाकान्त दो चार सज्जनों से यह कहेंगे ही। जो सुनेगा वही कहेगा कि अजीत सनकी, हठी और उद्दण्ड है। मेरी उद्दण्डता और उग्रता मेरे सब किये-धरे पर पानी फेर देती है। कितना ही प्रयत्न करता हूं, मेरा क्रोध और उग्रता मेरा पीछा नहीं छोड़ती।"

श्यामलाल ने हँस कर कहा—"राधिकाकान्त और किसी से कहें, या न कहें मिस घोष से तो तुम्हारे विरुद्ध खूब ही लगी-लिपटी कहेंगे। तुम्हारा दुर्भाग्य है जो प्रेम-पात्री भी मिली तो वेदान्त-रसिका। अब तो उसे यह स्पष्ट हो जायगा कि राधिकाकान्त में देवत्व और तुममें पशुत्व विशेष है। मेरे 'पशुत्व' शब्द के लिए क्षमा करना।"

अजीत ने चिढ़ कर कहा—"तुम जब से आये हो, 'मिस घोष,' 'मिस घोष' बक रहे हो। मैं देश के पीछे दीवाना हूं, मिस घोष के पीछे नहीं। हां, कुछ गम्भीर विषयों पर विचार करने वाली स्त्री है, इसके उसके साथ बातें करने से तबियत कुछ बहल जाती है।"

यह कह कर अजीत बाबू उठ बैठे और थोड़ी देर थम कर बोले—"श्यामलाल! मैंने मिस घोष को अपनी प्रेयसी कभी

नहीं समझा। हां, स्वयं उसकी ओर से एकाध बार ऐसी हरकतें अवश्य हुई हैं जिनसे मुझे अपने प्रति उसके प्रेम का पता चला। परन्तु मैंने अपनी ओर से कभी मर्य्यादा का अतिक्रमण नहीं किया। फिर भी मैं उसके सद्भावों और सुबिचारों पर मुग्ध हूं। परन्तु यदि कोई यह समझे कि अजोत उसके रूप-पर दीवाना हो रहा है, तो यह उसका भ्रम है। स्वदेश-सेवा एक ब्रत है, अनुष्ठान है, तपस्या है। किसी कामिनी के रूपरस का कामुक होकर मैं अपने जीवन के उद्देश्य से पतित नहीं हूंगा। मैं स्त्रियों को जानता हूं; दूर से ये दर्शनीय देवियां हैं, किन्तु निकट जाने पर भयङ्कर अग्नि की ज्वालाएं हैं। दोनों परिवारों में इतना स्नेह होने पर भी मैंने मिस घोष से उस अनुराग की आकांक्षा कभी नहीं की जो मनुष्य को पतित करता है। हां, मेरी एक मात्र दुर्बलता यह रही है कि मैं अपने कार्य्यों में उसके प्रोत्साहन की अपेक्षा करता हूं; मैं चाहता हूं कि वह ललकार दे और मैं वलिदान हो जाऊं।"

श्याम—"फिर भी यह तो स्पष्ट है कि आप को उससे प्रेम है।"

अ०—"है और रहेगा। किन्तु वह प्रेम मेरे दम्पति-जीवन को अशान्त बनाने वाला नहीं है। मैं उसकी प्रसन्नता के लिए उसके संकेत मात्र पर सर्वस्व-समर्पण करने को भी तैयार हूं और रहूंगा।"

श्याम—"राधिकाकान्त भी सर्वस्व-समर्पण करने के लिए तैयार हैं; कमलाशङ्कर भी तैयार हो सकते हैं; कहीं ऐसा न हो कि आप तीनों स्वार्थ-त्यागियों में युद्ध हो जाय!"

अ०—"युद्ध क्यों होगा? कई महीनों के बाद तो कल मैं मिस घोष से मिलने गया था, सो भी प्रतिभा के विवाह-

सम्बन्ध में कुछ आवश्यक बातचीत करने के लिए। अब तो जब तक वह सुखी रहेगी तब तक मैं उसके पास न जाऊँगा, जब कोई कष्ट होगा तभी जाऊंगा।"

यह कह कर अजीत चारपाई पर से उठे और थोड़ी देर में आने को कह कर घर के भीतर जाने लगे।

श्यामलाल ने कहा—"अजीत बाबू, बाबू रामलखन सिंह ने मुझे बुलाया था। मैं सच पूछो तो वहीं जाने के लिए तैयार हो रहा था। किन्तु आप का सँदेसा पहुँचने पर सोचा कि आप के यहां होता हुआ वहां चला जाऊँगा। विशेष बात चीत करने के लिए मैं आप के पास फिर आऊँगा।"

अजीत बाबू रुक गये। खड़े-खड़े मुसकराते हुए उन्होंने कहा—"जान पड़ता है, तुम दारोगा होने की कोशिश में हो। भाई, क्षमा करना पुलीस विभाग में नौकरी करने की अपेक्षा तो मैं भूखों मरना अधिक पसन्द करूँगा; तुम्हें दारोगागिरी के लोभ में पड़ा हुआ देख कर मुझे बहुत दुःख होता है।"

श्यामलाल ने झेंप मिटाने की कोशिश करते हुए कहा—"भाई साहब, जब आप जैसे लोग पुलीस विभाग को अछूत समझते रहेंगे और दूसरे उत्साही लोगों को भी हतोत्साह करते रहेंगे तब तो पुलीस विभाग की उन्नति हो चुकी। मैं तो समझता हूं कि पुलीस विभाग की निन्दा करना छोड़कर यदि योग्य व्यक्ति उसमें भरती हो जायं तो देश की इतनी सेवा होगी जितनी और किसी दूसरे ढंग से नहीं हो सकती। फिर यह सब जाने दीजिए, जीवन-निर्वाह का कोई मार्ग तो निकलना ही चाहिए। क्या बैठा बैठा मक्खियां मारूं और भूखों मरूं?"

यह कहता हुआ श्यामलाल चारपाई के पास से होता हुआ कमरे के बाहर बरामदे में आया। अजीत भी उसे पहुँचाने के

लिए बरामदे तक आये। चलते-चलते उन्होंने कहा—"अगर सरकारी नौकरी करनी ही है तो शिक्षा-विभाग में क्यों नहीं जाते ?"

श्या०—"भाई, जब काजल की कोठरी में पैर ही रक्खा है तो कालिख से कहां तक परहेज करूँगा ? नौकरी ही करनी है तो ऐसी क्यों न करूं जिसमें अधिक से अधि धन-प्राप्ति हो ? मास्टरी में मुझे मिलेगा ही कितना ? आठवीं भी तो नहीं पास हूं। फिर, अब यह मामला बहुत कुछ सुलझ चुका है। बाबू साहब से रामलखनसिंह ने वादा कर दिया है। मेरे साथ भी उनका स्नेह बढ़ता ही जा रहा है। इससे अब मुझे पूरी आशा है कि काम बल जायगा। ऐसे काम में मुझे स्वभाव ही से शौक भी है।"

यह कह कर श्यामलाल अजीतसिंह से नमस्कार करके बिदा हुआ। अजीत भी कुछ खिन्न होकर कमरे के भीतर गये। श्यामलाल को हँसमुख समझ कर मनोरंजन के लिए उन्होंने बुलाया था, लेकिन फिर भी तबियत अभी नहीं बहली।

अजीत ने समय काटने के उद्देश्य से एक मासिक पत्र उठा कर पलँग पर लेटे लेटे पढ़ना चाहा। लेकिन उनके चित्त में न जाने आज कौन ऐसी बात हो गयी थी जो रह रह कर उन्हें विचलित कर देती थी। अन्त में मासिक पत्र फेंक कर उन्होंने एक पतली चादर ओढ़ ली और सोने की चेष्टा की। इतने प्रयत्न करने पर भी निद्रा देवी तो नहीं आयीं; उनके बदले में आ गयी मिस घोष की मादक स्मृति और, थोड़ी ही देर में, उसकी मनोहारिणी मूर्त्ति, जो थी तो कल्पना-जात, लेकिन जिसे अजीत बिलकुल सत्य समझ कर एकाएक चारपाई पर चौंक कर उठ बैठे। देखा तो कहीं कोई नहीं। अजीत ने अपने आप से कहा—"आज मुझे यह हो क्या गया है ?

ऐसी विक्षिप्तता तो मेरे पास कभी फटकी नहीं । क्या मिस घोष मेरी शान्ति को भंग कर के ही रहेगी ? मुझे कितने आवश्यक कार्य करने हैं; और मैं नारी के रूप-जाल में पड़ कर अपने आप को नष्ट कर देना चाहता हूं ।"

इस समय उन्हें उन बातों की याद आगयी जो उन्होंने थोड़ी ही देर पहले श्यामलाल से की थीं। कहां तो वे सदाचार-प्रदर्शक उक्तियां और कहां ये वासनामूलक प्रवृत्तियां ! अजीत अपनी दृष्टि में आप ही गिर गये। क्रमशः पतन की यह भावना उनके चित्त से बहुत शीघ्र जाती रही; उनके हृदय में किसी ने न जाने कहाँ से छिप कर कहा, "यदि अपने कार्य में मिस घोष का भी सहयोग प्राप्त कर लो तो क्या हर्ज है ? यदि किसानों और मजूरों के संगठन में वह भी सम्मिलित हो जाय तो यह कार्य्य कितनी जल्दी सफलतापूर्वक हो जाय ! मिस्टर घोष उसे कितना मानते हैं ! मार्क को भी उलटा सीधा समझाकर वह अपने बश में कर सकती है, आदि आदि ।

अजीत को अभी तक अपने किसी कार्य्य में सफलता नहीं मिली थी, प्रधानतः उनकी ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों के कारण कार्य-संचालन में सुविधा के अभाव में कठिनाइयां ही अधिक आ पड़ती थीं । वे स्वयं अनुभव करते थे कि उन्हें अभी तक किसी महत्वपूर्ण कार्य्य को सुचारुरूपेण सम्पादित करने का श्रेय नहीं मिला । ऐसी परिस्थिति में, मिस घोष के आकर्षणपूर्ण सहयोग से अपने उद्देश्य की सिद्धि में बहुत अधिक सरलता हो जाने की निश्चित संभावना दिखायी पड़ते ही, मिस घोष को उन्होंने हृदय के बहुत पास आने दिया। बच्चों का सा कितना निर्दोष रूप धारण करके मिस घोष के प्रति यह आकर्षण अजीत के चित्त

में प्रवेश कर रहा था! अजीत को एक क्षण के लिए भी यह कल्पना नहीं हो रही थी कि जिस दिन सहयोग-सूत्र से अत्यन्त नम्र और संकुचित वेष बनाकर आने वाला यह स्नेह-यात्री सम्पूर्ण हृदय पर अधिकार करने का दावा करने लगेगा, उस दिन पिता, माता, स्त्री, लड़की आदि के लिए कहीं स्थान न रह जायगा? मिस घोष के प्रेम का परिचय उन्हें मिल चुका था, किन्तु कभी उनका चित्त इस प्रकार क़ाबू के बाहर नहीं हुआ था, जैसा अब मिस घोष को हिन्दू माता-पिता की लड़की जानकर तथा राधिकाकांत के प्रति नवजात ईर्षा से प्रभावित होकर वह हो रहा था। अजीत की इसी विकलता के समय मिस घोष का एक पत्र एक चपरासी लाया। उनका हृदय दुर्निवार उत्कण्ठा के वेग से विह्वल हो उठा। लिफाफा खोल कर उन्होंने पत्र पढ़ना शुरु किया। मिस घोष ने लिखा था:—

"प्रिय अजीत बाबू;

आज आप के सामने अपना हृदय खोल कर रखने का साहस कर रही हूं। कल आप के मुख से अचानक जो उद्गार निकल गया उसने मुझे बहुत अधिक प्रभावित किया है। उससे मुझे मालूम हो गया कि यदि मेरे पूर्व जीवन का वह परिचय आप को पहले प्राप्त होता तो आप मुझे अपनी किंकरी बना कर मेरी उस इच्छा की भी पूर्त्ति कर देते जिसने आज तक मेरे हृदय को अपने प्रभाव से मुक्त नहीं किया है। साथ ही मुझे पूर्ण विश्वास हो रहा है—कैसे हो रहा है, यह कह नहीं सकती—कि प्रतिकूल परिस्थितियां हो जाने पर भी आप मुझे अपने उस कृपा-भाव से वंचित नहीं करेंगे जिसकी आशा ही से आज नारी-हृदय के व्यथापूर्ण आवेगों को आपके श्रीचरणों पर समर्पित करने के लिए अग्रसर हो रही हूं।

अजीत बाबू, आप से मेरी यह प्रार्थना है कि आप मुझे निराश न करें। मैं जितना आपको चाहती हूं संसार में किसी को उतना नहीं चाहती। यदि आपने अपनी मनोवृत्तियों को गम्भीरता के ताले के भीतर बन्द करके रक्खा होता, यदि कल आपके मानव-हृदय की सरलता का परिचय मुझे न मिल गया होता तो यह पत्र आप के पास लिखने का साहस मुझे न होता। मैंने माना कि आप ने कोई संकेत इस प्रकार का नहीं दिया कि अब भी, विवाहित जीवन के कारण परिवर्तित परिस्थिति में भी, आप मुझे अपने अमूल्य प्रेम-पीयूष का पान करा सकेंगे।। किन्तु, आप ही सोचिए कि जो बात मुझे मालूम ही नहीं थी उसे आप को कैसे बता सकती थी? मैं आपको आज से नहीं, न जाने कितने दिनों से चाहती हूं। आप को भले ही ज्ञान न हो, किन्तु मैं तभी से आप के चरणों पर अपना हृदय निछावर कर चुकी हूं जब आप का विवाह नहीं हुआ था। हां, मेरा एक मात्र अपराध यही है कि तब मुझे यह नहीं ज्ञात था कि मैं वास्तव में हिन्दू बालिका हूं। तो क्या इस अज्ञान के लिए आप मुझे इतना कड़ा दंड देंगे कि मुझे उस प्रेम-दृष्टि से सदा के लिए वंचित कर दें जो अन्यथा मुझे प्राप्त होती? अजीत बाबू क्या आप मेरे साथ न्याय नहीं करेंगे? क्या मुझे यह असह्य दण्ड देकर ही रहेंगे?

आप यह कहेंगे कि क्या इस प्रकार का प्रेम पद्मा के प्रति घोर अत्याचार नहीं होगा? इसका उत्तर यह है कि मैं कब पद्मा के उचित अधिकारों को छीन रही हूं। वह आप की विवाहित पत्नी है, उसे आप के भावी उत्तराधिकारियों को जन्म देने का स्वत्व प्राप्त है। यह स्वत्व उसने इस कारण पाया है कि जिस समय आपके पिता ने आपके लिए ऐसी वधू की तलाश की, उस समय संयोग से पद्मा हिन्दू समाज की परिधि

के भीतर होने के कारण उन्हें विशेष उपयुक्त जान पड़ी ; उसी उपयुक्तता को हिन्दू धर्म के अधिकारियों ने एकत्र हो कर वेद-मंत्रों द्वारा अपनी नैतिक स्वीकृति प्रदान कर दी। क्या इसी स्वकृति के भरोसे पद्मा के लिए यह कभी उचित हो सकता है कि वह उस नारी के प्रेमाधिकार को निमूल कर दे जिसे इस बात का विश्वास और गर्व है कि उससे अधिक किसी ने आपको नहीं चाहा ? नहीं, मैं पद्मा के अधिकारों का स्वीकार करूं और पद्मा मेरे अधिकारो को स्वीकार करे और आप हम दोनों के बीच में न्यायाधीश के आसन पर प्रतिष्ठित होकर उचित न्याय करें।

आशा है, आप मेरे इस पत्र का उत्तर शीघ्र देकर मेरी व्याकुलता का शमन करेंगे।

आपकी
मिस घोष"

इस पत्र को पढ़ते समय अजीत को ऐसा अनुभव होता था जैसे वे किसी अज्ञात लोक में, जहां आनन्द ही आनन्द है, विहार कर रहे हों। पत्र समाप्त करते करते उसकी विचित्र दशा हो गयी। इतना प्यारा ! इतना उन्माद !! इतनी जबर्दस्ती !!!—अजीत के मुँह से अनियंत्रित भाव से ये ही शब्द निकल पड़े

[८]

सिविल लाइन में मेयोहाल के पास एक बँगले में रामलखन सिंह रहते थे। पास ही दफ्तर भी था। अजीत के यहां से बिदा होने के बाद डेढ़ बजे के लगभग श्यामलाल उनकी बैठक में पहुँचा, जहां वे उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

रामलखन ने नौकर को शरबत लाने की आज्ञा दी और मुसकरा कर कहा—"कल्ह तो बाबू साहब आये थे। बड़ी दे

तक बातें करते रहे। कहो अब क्या हाल चाल है?- प्रतिभा से कभी कुछ बातें होती हैं? उसके हृदय के भावों का कुछ पता चला?"

श्या०—"प्रतिभा के भावों का पता चलना आसान थोड़े ही है; उसकी आँखो का प्यार तो उस हरिन के बच्चे ही को मालूम है जो उसे घण्टों टकटकी बाँध कर देखता ही रहता है और जिसकी पीठ सहलाने के लिए वह उसके पास सब काम छोड़ कर बैठती है; फूलों, लताओं, तथा पौधों को सींचने, अपने बालों द्वारा बादलों का भ्रम उत्पन्न करके मोर को नचाने, इस डाल से उस डाल पर चहकते हुए फुदकने वाले सुग्गों, सारिकाओं, बुलबुलों आदि की तरह तरह की बोली को विस्मृत भाव से पहरों सुनने से जब उसे समय बचे और मनसा, वाचा, या कर्मणा जब वह किसी भाव को प्रकट होने दे तब तो उसकी तबियत का पता चले। हां, जो कुछ देखता-सुनता हूं उससे इतना जान पाया हूं कि उसके हृदय में शायद किसी पुरुष के प्रेम ने भी अपना प्रवेश पा लिया है, और वह पुरुष है कमलाशङ्कर नाम का एक युवक; वही आप का बहुत बड़ा प्रतिद्वन्दी जान पड़ता है; आप तो उसे जानते होंगे।"

रा०—"एकाध बार मैंने उसे अजीत के पास बैठे तो जरूर देखा है। कमल बाबू उसी को तो कहते हैं न?"

श्या०—"हां, वह आजमगढ़ का रहने वाला है। उसके स्वर्गवासी पिता बाबू साहब के सहपाठी और अनन्य मित्रों में से थे। यह मित्रता केवल उन्हीं तक नहीं परिमित रही; बल्कि दोनों के परिवारों में भी गहरा सम्बन्ध हो गया है। कमलाशङ्कर की मां और अजीत की मां में भी बहुत प्रेम हो गया है; कमलाशङ्कर और प्रतिभा में भी कम प्रेम नहीं है।"

रा०—"तो तुम्हारी इन बातों का अर्थ मैं क्या समझूं ?"

श्या०—"घनिष्ट प्रेम का जो कुछ परिणाम हो सकता है वही होने का डर है—यही अर्थ समझना चाहिए। मि० मार्क की बहिन मिस घोष को तो आप जानते ही होंगे। प्रतिभा और उसका लड़कपन का साथ है। ईसाई स्त्रियां स्वतंत्र होती ही हैं; उसके सम्पर्क से प्रतिभा के विचार किस दिशा में जा सकते हैं, इसकी प्रायः सहज ही कल्पना की जा सकती है। इसके अतिरिक्त अजीत तो भयंकर स्वतंत्र विचारवाला पुरुष है; उसने स्वतंत्रता का भाव उत्पन्न करने वाली पुस्तकें उसे पढ़ने के लिए देकर एक तरह से इस दिशा में उसे प्रोत्साहित ही किया है; बाबूसाहब भले ही अन्तर्जातीय विवाह का विरोध करें, परन्तु अजीत तो इस प्रकार के विवाह में अपने जीवन के एक उद्देश्य की सिद्धि समझेगा; और वह कितना हठी और दुराग्रही है, इसे कहने की आवश्यनता नहीं; एक बार जब वह पक्का निश्चय कर लेता है तब उसे विचलित करना सरल काम नहीं है।"

रामल०—"तो फिर ? तुम तो ऐसा चित्र खींच रहे हो जैसे इस अन्धकार में प्रकाश कहीं है ही नहीं।"

श्यामलाल—"जितना प्रकाश है उसका पता भी मैं आपको दे रहा हूं; काशी के जेल-प्रवासी पं० सदाशिव मिश्र जेल जाने के पहले अपनी कन्या का विवाह कमलाशङ्कर से करना चाहते थे; हरिहर सुकुल को इस सम्बन्ध में प्रयत्न करते रहने की हिदायत भी वे कर गये हैं; सुकुल जी के उद्योग से कमलाशङ्कर की मां ने इस सम्बन्ध को प्रायः स्वीकार कर लिया है; परन्तु कमलाशङ्कर को प्रतिभा का लोभ है, इसीलिए वह स्वीकार नहीं कर रहा है; यदि आप कमलाशङ्कर का विवाह वहां पक्का कराने में कुछ जोर डाल सकें तो पं० सदाशिव की सफलता

में आप की भी सफलता है। पंडितजी के छूटने का समय भी अब निकट आ रहा है। यदि कमलाशङ्कर सहमत हो गया तो बहुत शीघ्र विवाह हो जायगा।"

रामलखन उद्दण्ड पुरुष थे। पुलीस विभाग ने उनकी उद्दण्डता को घटाने की जगह बढ़ा ही दिया था। प्रतिभा और कमलाशङ्कर की प्रेम-कथा का उन्हें पता न था। यह सब जान कर वे अधिक निराशा में डूब गये और झुँझला से उठे। थोड़ी देर चुप रह कर बोले—"श्यामलाल, यदि प्रतिभा और अजीत ने मेरा इस प्रकार अपमान किया तो क्या तुम समझते हो कि मैं प्रतिभा को प्रेमी की गोद में आराम से सोने और अजीत को नवीन सामाजिक सिद्धान्त का प्रयोग करने दूँगा; नहीं, यह कभी नहीं हो सकेगा।"

श्यामलाल ने कहा—"क्रोधित और अपमानित होने की तो इसमें कोई बात ही नहीं है। जिसे सुन्दरी, सम्पत्ति और भूमि का प्रेम हो उसे अपनी बुद्धिमानी और शक्ति द्वारा उन्हें प्राप्त करने की चेष्टा करना और सफल होकर सुख भोगना चाहिए। रही बदला लेने की बात सो जब आप को असली चीज नहीं ही मिली तब बदला लेकर ही आप क्या करेंगे? जब प्रतिभा सरीखी सोने की चिड़िया हाथ से निकल ही गयी तो अजीत को तो से उड़ा देने से भी क्या होगा? मैंने कठिनाइयों की चचर्चा इसलिए नहीं की कि आप का क्रोध उभड़ जाय, बल्कि इसलिए कि आप अधिक उद्योग करें। यह दोष आप ही का नहीं है; ठाकुरों का कुछ ऐसा स्वभाव ही हो गया है।"

रा०—"तो कौन सा उद्योग करूं?"

श्यामलाल—"आपने पं० हरिहर सुकुल से कभी बातचीत की?"

रा०—"वे तो एक बार आए थे; उस दिन उन्होंने मेरा हाथ भी देखा था। लेकिन तब तो कमलाशंकर वाली बात मालूम थी नहीं। मैं तो यही समझे बैठा था कि विवाह में कोई अड़-चन नहीं है। उनकी बातों से भी ऐसा ही मालूम होता था।"

श्या०—"इसमें सन्देह नहीं कि सुकुलजी को इस सम्बन्ध में पूरा विश्वास है। अभी कल्ह उनसे मैंने भेंट की थी। मैंने कमलाशङ्कर और प्रतिभा के प्रेम के सम्बन्ध में बातचीत की। यह बात उन्हें मालूम नहीं थी। वे अचरज में डूब कर कहने लगे—'तभी कमलाशङ्कर पं० सदाशिव के यहां विवाह करने की स्वीकृति नहीं देता, मैं उसे ऐसा कुल-कलंक और दुराचारी नहीं समझता था।" थोड़ी देर तक मौन और चिन्ता-मग्न रह कर उन्होंने उत्तर दिया—"ऐसी दशा में तो बाबूसाहब की आबरू बचाने के लिए भी कमलाशङ्कर का जल्दी ब्याह हो जाना अच्छा है।" कई मिनटों तक चुप रहने के बाद फिर बोले, 'अच्छा! अब इसका उचित प्रबन्ध करूँगा; प्रतिभा जैसी सोने की लड़की को मैं इस तरह मिट्टी न होने दूँगा।' इसके बाद मैं चला आया। वे क्या जाने कर रहे हैं।

रा०—"कहो तो पण्डितजी को बुलवा भेजूं। मुझे आशा है, वे तुरन्त चले आयेंगे।"

श्या०—"यह ठीक कहा। उन्हें अवश्य बुला भेजिए। उनसे काम लेना बहुत आवश्यक है। चतुर तो वे चाणक्य ही की तरह हैं।"

[६]

हरिहर सुकुल बड़े ही विचित्र पुरुष थे। उन्हें संसार के किसी भी व्यक्ति से न उचित से अधिक घृणा थी और न किसी से आवश्यकता से अधिक प्रेम। विक्टोरिया इंटर कालेज के प्रिंसि-

पल राघवशरण और सुकुलजी में कभी कभी अधिक वेतन-प्राप्ति के लिए सतत प्रयत्न करते रहने के लिए वाद-विवाद हो जाया करता था। प्रिंसिपल साहब कहते थे कि बिना माँगे माँ बच्चे को दूध भी नहीं पिलाती; इसी तरह अधिक वेतन न माँगोगे तो तुम्हें कोई क्यों देगा ? सुकुल जी उत्तर देते थे कि मैं तो सबका सेवक हूं; मुझे तो सच्चे हृदय से सेवा ही करनी चाहिए, जब मुझे रुपये की जरूरत होगी भगवान मुझे आप ही दे जायँगे। सच बात यह थी कि हरिहर सुकुल ने अधिकारियों से कभी वेतन बढ़ाने को नहीं कहा, उनका वेतन जब बढ़ा तब अधिकारियों ही की इच्छा से।

हरिहर सुकुल की विचित्रता का यहीं अन्त नहीं था। कालेज से लौटने के बाद वे संध्या गायत्री करके भोजन तैयार करते और लड़कों को खिलाने-पिलाने के बाद सबसे पहला यह काम करते कि अड़ोस-पड़ोस के गरीब लड़कों को पढ़ना-लिखना सिखाते, और उसके बाद जहां कहीं आवश्यकता होती अपने शरीर और मस्तिष्क की समस्त शक्तियों को लेकर निस्वार्थ सेवा के लिए पहुँचते। सुकुल जी की जितनी पहुँच बाबू जगजीवन सिंह के यहां थी उतनी ही मिस्टर घोष के यहां भी थी; पं० सदाशिव के यहां उनका उतना ही आदर था जितना कमला-शङ्कर के परिवार में था; वे अजोत की सेवा भी उतनी ही मात्रा में करने के लिए तैयार रहते थे जितनी मात्रा में मार्क की। थोड़ी देर के लिए भले ही दो विपक्षियों में से एक यह समझ ले कि सुकुल जी मेरे प्रतिकूल और अन्य के अनुकूल हैं किन्तु जब खरी आलोचना करने का समय आता था तब सुकुल जी का निरपेक्ष भाव तुरन्त ही लक्षित हो जाता था और शंकालु अपनी शंका को विदा कर देने के लिए विवश होता था।

श्यामलाल के चले जाने के थोड़ी ही देर बाद यही हरिहर सुकुल बाबू साहब से मिलने के लिए आये। सफेद पगड़ी, ललाट में भस्म, गले में दुपट्टा, मिरजई; नाखूनी लाल किनारे की धोती दिल्लीवाल जूता, नेत्रों में गम्भीरता और अधरों पर प्रफुल्ल हास की रेखा थी। ये विक्टोरिया इंटर कालेज के संस्कृत अध्यापक थे। इस कालेज के संस्थापक, सभापति, और प्रधान आर्थिक सहायक हमारे बाबूसाहब ही थे। पण्डित जी ने चपरासी को सूचना पहुँचाने के लिए भेजा। उसने लौट कर कहा—"चलिए बुला रहे हैं।"

बाबूसाहब ने आदरपूर्वक प्रणाम करके पण्डित जी का स्वागत किया। ब्रज-विलास की पोथी को बन्द करके अलग रखते हुए वे बोले—"कहिए पंडितजी, क्या समाचार है? इधर तो सात-आठ दिनों से आप से भेंट नहीं हुई। बाबू रामलखन सिंह से आपकी क्या-क्या बातचीत हुई थी? अभी कल मैं उधर गया था तो आप से भेंट होने की चरचा कर रहे थे। यह कह कर उन्होंने जंजाली को पान लाने के लिए आवाज दी।"

पंडितजी—"बाबूसाहब! मेरा साला आज कल यहीं एक दफतर में नौकर हो गया है; उसी के यहां चला गया था। सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब से मैं मिला था; वे आप के व्यवहार से बड़े प्रसन्न हैं; आप के यहां विवाह होना तो ये अपने सौभाग्य की बात समझते हैं; बेचारे कह रहे थे कि ऐसी सुशिक्षिता लड़की ठाकुरों में भला कहां रखी है? बात सच भी है; हमारी प्रतिभा जिस घर में जायगी वह सोने का हो जायगा। इतनी सरल, इतने ऊँचे कुल की कन्या कहीं पड़ी थोड़े ही है बाबूसाहब!

जंजाली पान लेकर आ गया। पंडित जी को दो बीड़ा देते

हुए तथा शेष दो अपने मुंह में डालते हुए बाबू साहब ने कहा—"सुकुल जी ! बाबू रामलखन सिंह कहते थे कि आप सामुद्रिक शास्त्र के अच्छे ज्ञाता हैं। आपको यहां आये हुए कई वर्ष हुए, लेकिन आपने अपना यह गुण मुझपर नहीं प्रकट किया। पण्डित जी ने कुछ झेंपते हुए—"बाबू साहब, इस विषय में मेरी विशेष गति नहीं है, फिर आपसे क्या कहता ? इसके बाद और आगे की ओर खिसक कर उन्होंने बाबू साहब का हाथ अपने हाथ में लिया और उसमें की रेखाओं को बड़े ध्यान से देखना आरम्भ किया। कुछ देर में पण्डित जी ने कहा—"बाबू साहब ! आपने अपने जीवन में जितने काम किये हैं सब में सफलता पायी है, राजा और प्रजा सभी आपको आदर की दृष्टि से देखते हैं। आपकी सन्तति की योग्यता बड़े मार्के को होगी। किन्तु, आपके जीवन का अन्त बड़ा कष्टमय होगा। सम्भव है, आप किसी बड़े रोग से पीड़ित हों।"

बा०—"यही दमा नहीं पिंड छोड़ता है, पण्डित जी। जान पड़ता है, यही अधिक क्लेश देगा। जो हो, अब तो किसी तरह प्रतिभा का विवाह समाप्त हो जाय, फिर सारी गृहस्थी बच्चा जी के मत्थे डाल कर भगवान का भजन करूँगा। फिर चाहे जो रोग सतावे। जरा बच्चा जी का हाथ देखिएगा ?

सुकुल जी—"बुलाइए।"

बाबू साहब ने जंजाली को बुलाया। वह आया तो उससे बोले—"जाओ देखो बच्चा जी की तबियत कैसी है। कहना कि अगर आने में उन्हें तकलीफ़ न हो तो थोड़ी देर के लिए हमारी बैठक में चले आवें।"

सुकुल जी ने व्यग्रता के साथ पूछा—"क्यों, क्या बच्चा की तबियत कुछ खराब है।"

ब०—"क्या कहूं पंडित जी, भोले-भाले लड़के को कुछ पेशे-वर देशभक्तों ने ऐसा बहकाया कि वह मेरे काबू का नहीं ही रहा। काशी के आपके पं० सदाशिव मिश्र भले ही देश के बड़े भारी हितैषी हों, पर मेरी तो उन्होंने बड़ी हानि की। उन्होंने ही अपने अखबार द्वारा गवर्नमेण्ट के विरुद्ध विष उगल उगल कर न जाने कितने युवकों का मस्तिष्क दूषित कर दिया। स्वयं तो जेल गये ही हैं, कुछ और लोगों को भी चौपट करेंगे। इधर उधर की बेमतलब की दौड़-धूप में बच्चा इतने पड़े रहते हैं कि न खाने की सुध रहतो है न पीने की। ऐसी हालत में तन्दु-रुस्ती जरूर ही खराब होगी। आज दोपहर को पेट में दर्द था; अनन्तराम जैन की दवा दी गयी है; शायद अब कुछ आराम है।"

इतने में अजीत बाबू आ गये। बाबू साहब ने पूछा—"तबियत कैसी है बच्चा? दवा ने कुछ लाभ किया? दो एक दस्त भी हुए या नहीं?"

अजीत ने किसी एक प्रश्न का स्पष्ट उत्तर न देते हुए कहा 'हां, अब तो अच्छा हूं।'

बाबू साहब सन्तोष-सूचक स्वर में बोले—"बच्चा, पंडितजी छिपे हुए सामुद्रिक शास्त्री हैं। जरा अपना हाथ तो इन्हें दिखाओ।"

अजीत ने मुसकरा कर अपना हाथ सुकुल जी के सामने कर दिया।

सुकुल जी ने ध्यान से हाथ देख कर कहा—"बाबू साहब, ये तो किसी समय महापुरुष होंगे। ये जिस ओर झुकेंगे उस ओर आँधी की तरह जायँगे, संसार में बिरले ही इनका सामना करेंगे, इनके शत्रु इनसे थर थर काँपेंगे; इनका स्वभाव राजसी है।"

बाबू साहब ने प्रसन्न होकर कहा—'एक बात और तो देखिए पंडित जी ! यह लड़का कहीं साधु वैरागी तो न होगा ?

अजीत बाबू मुसकराये ।

सुकुल जी ने कहा—" बाबू साहब, इनके जीवन में साधु-सन्यासी होना लिखा ही नहीं है । इनकी वर्त्तमान प्रवृत्ति अधिक काल तक नहीं टिकेगी । "

बाबू साहब ने आनन्दित होकर पंडित जी से कहा—" अब जरा बबुई को बुलाता हूं," और फिर अजीत की ओर मुड़ कर बोले, " बचा, जरा बबुई को भी तो घर में से बुला लाओ । "

अजीत बाबू चले गये ।

सुकुल जी कुछ उत्कण्ठित से होकर प्रतिभा के आने की प्रतीक्षा करने लगे । परन्तु, कुछ विलम्ब देखकर इधर उधर क बातों में लग गये । बोले—" बाबू साहब, बाबू रामलखनसिंह भी बड़े विलक्षण पुरुष हैं । जैसे बढ़िया लक्षण उनके हाथ में मैंने देखे वैसे तो अजीत बाबू को छोड़ और किसी दूसरे के हाथ में देखे ही नहीं । बड़े होनहार पुरुष हैं । "

बाबू सा० —"देखिए पंडित जी, सत्तावन सालों की उमर यों ही नहीं बितायो है । आप तो सामुद्रिक शास्त्र की सहायता से मनुष्य को पहचानते हैं, यहाँ चेहरा-मोहरा देखा और भाँप गये । अँगरेजों का सा चालाक होना मुशकिल है; ये हँसी के भीतर रोष और मुसकराहट के भीतर घृणा छिपाये रहते हैं; कब ये प्रशंसा कर रहे हैं और कब निन्दा—इसको समझना एक पहेली बूझने के बराबर है । पर, इन उड़ती चिड़ियों पर भी निशाना लगाने में मैं कभी नहीं चूका; मौका देखा तो डाली लगायी और नहीं तो यों ही टरका दिया । दो तीन बरस हुए एक बार एक षड्यन्त्र में बहुत से बंगाली लड़के पकड़े जा रहे थे । बंगाली

के दोस्त होने के कारण हमारे बच्चे पर भी सरकार का सन्देह हुआ। यही रामलखन सिंह हमारे घर की तलाशी लेने आये; इनका व्यवहार हमारे साथ इतना अच्छा रहा कि उसी दिन से मैं इनसे बहुत प्रेम करने लगा। उन से मैं तब से अक्सर मिलता रहता हूं; बेचारे इतने आदर से मिलते हैं जैसे अपने ही लड़के हों। लेकिन खेद की बात है कि ऐसे भले-मानुस को भी बदनाम करने से लोग बाज नहीं आते। दूर कहाँ जाऊं, किसी ने हमारे बच्चा जी को ही बहका रक्खा है कि बाबू रामलखन सिंह से अधिक अत्याचारी मिलना कठिन है! इतने सहृदय पुरुष के ऊपर यह लांछन !!"

इतने में दरवाज़े पर का चिक उठा और एकाएक प्रतिभा आ गयी। उसने सरलता और संकोच के साथ पण्डित जी को प्रणाम करके बाबू साहब से कहा—"क्या बाबू जी?"

बाबू सा०—"बेटी, जरा कुर्सी पर बैठ जाओ; पण्डित जी तुम्हारा हाथ देखेंगे।"

प्रतिभा कुर्सी पर बैठ गयी, वह नहीं जानती थी कि मुझे हाथ दिखाने होंगे, पंडितजी कोई साधारण पण्डित तो हैं नहीं; यदि शास्त्र की सहायता से इन्होंने मेरे मन की गुप्त से गुप्त बात को प्रकट करना शुरू कर दिया तो मैं तो पिता जी के सामने चोर-सरीखी हो जाऊंगी—प्रतिभा यही सोच सोच कर जैसे भूमि में गड़ी जाती थी।

इधर पण्डित जी मन ही मन प्रतिभा के रूप-सौंदर्य की सरल भाव से आलोचना कर रहे थे। ईश्वर की कितनी मनोहर सृष्टि है! अनूठे लावण्य के साथ-साथ गम्भीरता, मनोमोहक सरलता और लोचनों की चित्तहारिणी चञ्चलता का तो स्वर्ण में सौरभ का सा मेल है। केशों की यह लहर तो निहारते ही बनती है।

पैरों को स्लीपरों में डाले हुए रेशमी जैकेट और साड़ी पहने हुए यह भोली बालिका तो भुवनमोहिनी हो रही है! ये विचार पण्डित जी के मन में आये और उसी क्षण विलीन हो गये। थोड़ी झिझक के साथ उन्होंने कहा—'बेटी, जरा हाथ देना तो।'

प्रतिभा ने पिता की ओर देख कर सकुचाते हुए अपना हाथ सुकुल जी की ओर बढ़ा दिया। सुकुल जी ने हथेली, और उँगलियों पर की रेखाएं बहुत ध्यान से देखीं, फिर वे बोले—"बाबू साहब, प्रतिभा साक्षात लक्ष्मी है, जैसे पार्वती ने शङ्कर से, सीता ने रामचन्द्र से और दमयन्ती ने नल से प्रेम किया वैसे ही यह अपने पति के स्नेह में परायण होगी। और जो पूछिए सो बताऊं।"

प्रतिभा लज्जा से गड़ी जाती थी। कहीं पिता जी कोई अटपटा प्रश्न न छेड़ दें।

बाबू साहब बोले—"जो बात सब से मुख्य है उसे आपने बता ही दिया। अब मैं और क्या पूछूं?"

प्रतिभा ने अपना हाथ खिसका लिया। बाबू साहब ने कहा, "बेटी अब जाओ।" प्रतिभा सुकुल जी को प्रणाम करके चली गयी। थोड़ी देर तक बाबू साहब और पंडित जी को ऐसा मालूम हुआ जैसे कमरे में अँधेरा हो गया हो।

चपरासी ने चिक उठा कर कहा—"हुजूर, प्रिंसिपल साहब आये हैं।"

बाबू साहब—"बुला लाओ"।

थोड़ी देर में प्रिंसिपल साहब आ गये। साफा, ऐनक, शेरवानी, चूड़ीदार पायजामा, और मोज़े के साथ बूट—यही इनकी पोशाक थी। चेहरे पर रौनक थी। बाबूसाहब और सुकुल जी दोनों को प्रणाम करके ये एक कुर्सी पर बैठ गये।

बाबू साहब ने कहा—" कहिए, मुंशी राघवशरण साहब, अबकी आप घर न जायँगे क्या ? अब तो आधा जून भी खतम हो गया।"

रा०—बाबूसाहब, अलोपी बाग के पास एक टूटा-फूटा मकान मैंने लिया है, उसी को वर्षा के पहले ही बनवा लेना चाहता हूं। यही कारण है जो अभी नहीं गया, शायद न भी जा सकूं।"

बाबू सा०—"प्रिंसिपल साहब ! एक विषय में मैं आपकी राय लेना चाहता हूं। ये जो ईसाई लोग स्कूल और कालेज चलाते हैं सो तो इसी लालच से न कि कुछ हिन्दू लड़कों पर ईसाइयत का रंग चढ़े ? "

यह कह कर बाबू साहब ने मुंशी राघवशरण और पंडित जी दोनों की ओर ध्यान से देखा।

दोनों ने बाबूसाहब के कथन की यथार्थता स्वीकार कर ली। फिर बाबू साहब बोले—"तो फिर अपने विक्टोरिया कालेज में हम बालकों को हिन्दू धर्म्म का कुछ शिक्षा क्यों न दें ? गवर्मेन्ट को इसमें विशेष आपत्ति तो न होगी; वह बहुत करेगी अपनी सहायता बन्द कर देगी। इस कमी का पूर्त्ति मैं कर दूँगा।"

रा०—"इसके लिए एक अलग मास्टर की जरूरत होगी।

तीसरी कक्षा से लेकर एंट्रेंस तक पढ़ाना होगा। स्कूल में बाबू राधिकाकान्त तो अच्छे वेदान्ती हैं। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि तीन घंटे आप उन से कोर्स की पढ़ाई का काम लें और तीन घंटे में धार्म्मिक शिक्षण का। वे तो बड़े त्यागी और सरल पुरुष जान पड़ते हैं; उनका अच्छा प्रभाव भी बालकों पर पड़ेगा।"

मु०—" जान पड़ता है, इधर कुछ दिनों से आपने बाबू

राधिकाकान्त को देखा नहीं; अब यदि आप उन्हें देखेंगे तो शायद पहिचान भी नहीं सकेंगे। जब से उन्होंने मिस घोष को घर पर पढ़ाना शुरू किया है तब से वे धीरे-धीरे फैशन और विलासिता के उपासक हो गये हैं। मुझे तो जान पड़ता है कि राधिकाकान्त जी को मिस घोष का मास्टर बनाकर मिस्टर घोष ने एक गहरी चाल चली है। कितने ही लोग खूबसूरत औरतों के फेर में पड़कर ईसाई मत को स्वीकार कर रहे हैं। कल संध्या को मैंने देखा कि राधिकाकान्त और मिस घोष दोनों व्यक्ति मोटर पर सवार होकर हवाखोरी करने जा रहे हैं। मिस घोष को लेकर अब राधिकाकान्त जी सिनेमा और थियेटर देखने भी जाने लगे हैं। और फिर, दूसरी बात यह है कि इस पद पर तो किसी पंडित ही का होना उचित होगा।"

बाबू साहब—"ठीक है; मैं भी किसी ब्राह्मण ही को रखना चाहता हूं। मिस्टर घोष के सम्बन्ध में आपने जो कहा सो ठीक है; मैं तो जानता हूं, उनमें यदि कोई दोष है तो यही कि वे बहुत अधिक उत्साही ईसाई हैं और चाहते हैं कि सारा हिन्दुस्थान ईसाई हो जाय। परन्तु जो हो, हम स्वयं क्यों न मजबूत बनें? हमारे लड़के बूढ़े हो जाते हैं और यह तक नहीं जानते कि सन्ध्या गायत्री किस चिड़िया का नाम है। अस्तु मैंने अपने कालेज में धार्म्मिक पुस्तकों की पढ़ाई के लिए एक तजवीज बनाई है। अगर ऐसी ही ज़रूरत होगी तो एक धर्म-शिक्षक के वेतन का भी प्रबन्ध करूँगा। तब तो सब ठीक हो जायगा न?"

राघवशरण और हरिहर सुकुल ने प्रसन्न होकर प्रायः एक साथ ही कहा—"फिर तो बड़े आनन्द से काम होगा। १५—२० मिनट और कालेज के सम्बन्ध में बातचीत होने के बाद दोनों

महाशय बाबू साहब के यहां से रवाना हुए। फाटक पर पहुँचे तो एक कांस्टेबुल ताँगा लिए उधर ही को आरहा था। उसने पण्डित जी से प्रणाम करके कहा—"मैं बोर्डिङ्ग हाउस में आप को ढूँढ़ने गया था; चलिए सुपरिंटेण्डेण्ट साहब आपको बुला रहे हैं।"

क्यों भाई कुशल तो है? यह कहते हुए पण्डित जी ताँगे पर बैठे।

सुकुल जी और मुन्शी राघवशरण के चले जाने पर बाबू साहब चारपाई पर लेट गये। शीघ्र ही अपनी समस्त कठिनाइयों के हल हो जाने को मनोहर कल्पना के झूले में उनका चित्त झूलने लगा। इतने में जंजाली रोती हुई शान्ता को लाकर उनकी गोद में रख गया। बाबूसाहब ने बहुत चाहा कि लेटे लेटे ही शान्ता को बहला लें; परन्तु वह तब तक नहीं चुप हुई जब तक वे उसे लेकर खड़े नहीं हो गये। कभी कन्धे पर और कभी गोद में लेकर; कभी कमर के पीछे की ओर और कभी पीठ पर; कभी खड़े-खड़े और कभी घोड़े की नकल बन कर वे तरह तरह के उपायों द्वारा शान्ता को प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगे; इस खेल में थोड़ी देर के लिए वे ऐसे भूले मानो उनका चिन्ताशून्य लड़कपन एकबार फिर लौट आया हो।

[१०]

सुकुल जी पहुँचे तो बैठक में रामलखन और श्यामलाल दोनों ने अपनी अपनी कुर्सियों से थोड़ा उठ कर प्रणाम कर के उनका स्वागत किया। पण्डित जी आशीर्वाद देकर एक कुर्सी पर बैठ गये। श्यामलाल और रामलखन भी अपनी अपनी कुर्सियों पर पूर्ववत् बैठ गए। सिर से पगड़ी उतार कर मेज पर रखते हुए तथा कन्धे पर के रूमाल से सिर और मुँह पर का पसीना

पोंछते हुए सुकुलजी ने कहा—"कहिए, सरकार क्या आज्ञा है ?"

रामलखन—"पण्डित जी; यह कमलाशंकर कौन है ?"

पंखे और खस की टट्टी की ठंडक से सुखी होकर पण्डित जी ने उत्तर दिया—"हां, श्यामलाल जी ने मुझे भी बताया है कि कमलाशंकर और प्रतिभा में कुछ प्रेम-सम्बन्ध हो गया है। इनकी बात झूठ भी नहीं हो सकती; क्योंकि, सम्बन्ध होने के कारण भीतर भी इनका आना-जाना होता है। आज तो पूछने का मौका नहीं लगा; किन्तु शीघ्र ही बाबूसाहब से मिल कर इस सम्बन्ध में मैं जाँच पड़ताल कर लूंगा। जो हो; आपको इधर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं; प्रतिभा बड़ी सुशील बालिका है।"

रामलखन—"पंडित जी उसकी सुशीलता का हाल तो मुझे मालूम है। परन्तु, सुनता हूं, कमलाशंकर भी बड़ा भारी सुधारक बनता है; विवाह में भी अँगरेजी ढंग की स्वतन्त्रता लाना चाहता है, और पथ-प्रदर्शन के रूप में अन्तर्जातीय विवाह करने का विचार कर रहा है।"

मु० जी—"हरे! हरे! यह तो बड़ा पतित निकला! क्या कहूं बाबू जी! क्षमा कीजिएगा, अँगरेजी शिक्षा हमारे सारे आदर्शों का नाश करती जा रही है।। भला इस बेईमान को तो प्रतिभा को बहिन की तरह समझना चाहिए था। परन्तु किया क्या जाय? योरप और अमरीका में नारी भोग की सामग्री है; वहीं के भाव यहां के नवयुवकों को नष्ट किए जा रहे हैं। परन्तु कमलाशंकर के मामले में आप निश्चिन्त रहें; कमलाशङ्कर का विवाह काशी के पं० सदाशिव के यहां होकर रहेगा; मैं अपनी आँखों के सामने प्रतिभा का नाश और बाबूसाहब की प्रतिष्ठा का ह्रास होता हुआ नहीं देख सकता।"

श्याम०—"यह काम आप कैसे कर लेंगे ?"

सु०—"मैं कमलाशङ्कर को पं० सदाशिव की कन्या चंचला से मिलने का अवसर दूँगा। उसका मनोहर रूप-लावण्य मुनियों के मन को भी मोहित कर सकता है। हमारे बाबूसाहब ने तो बहुत झिझकते हुए प्रतिभा को थोड़ी सी अँगरेजी की शिक्षा दी है; और शिक्षा देने पर भी, उसे स्वतन्त्र नहीं होने दिया है। परन्तु, पं० सदाशिव तो नेता और सुधारक हैं न; उन्होंने तो परदा एक दम से बन्द कर दिया है, और चंचला को खेलने-कूदने, सभाओं आदि में जाने की स्वतन्त्रता दे रक्खी है। सो, उसके संसर्ग में रखकर मैं कमलाशङ्कर को सुनहली जंजीरों से बाँध दूँगा। हां, एक निवेदन आपसे भी है, यदि हमारे बाबूसाहब विवाह की तिथियों को कुछ निकट ही निश्चित कराना चाहें तो कृपा करके आप स्वीकार कर लीजिएगा।"

रामल०—"पंडित जी ! क्या चंचला इतनी स्वतन्त्र है कि यदि आप उसे यहां बुलवा भेजें तो वह चली आवे। यदि ऐसा हो सके तो क्या कहना ! मजा तो तब आये जब प्रयाग में किसी कार्य्य के बहाने वह आवे और कमलाशंकर ही के यहां.रहे। उस दशा में तो मुझे पूरा विश्वास है कि कमलाशंकर अपने आपे में नहीं रहेगा; वह तो पाश्चात्य सभ्यता का उपासक है; स्त्रियों की स्वतन्त्रता और चंचलता ही तो उसको प्रिय है।"

श्यामलाल ने धीरे से कहा—"सच बात तो यह है कि वह किसे प्रिय नहीं है ?"

उसके इस व्यङ्ग की ओर सुकुल जी का ध्यान नहीं गया। उन्होंने रामलखन की बातों के उत्तर में कहा—"देखिए, मुझे क्या करना होगा यह सब मैं सोच चुका हूं। बात यह

है कि कमलाशङ्कर की माता मुझसे एक ही बात में मतभेद रखती हैं, और वह है मांस खाने के सम्बन्ध में—और नहीं तो एक तरह से मुझे उनका गुरु ही समझिए। अभी अभी कमलाशङ्कर की लड़की बीमार पड़ गई थी; सो, कमलाशङ्कर की मां ने विंध्य देवी का दर्शन करने का मानता मान दिया था; जगदम्बा की कृपा से वह चंगी हो गई है। यदि मुझे कमलाशङ्कर की प्रतिभा-सम्बन्धी हरकत का हाल न मालूम होता तो मैं दो चार दिन रुक भी जाता; किन्तु अब तो मैं कलही चलने का हठ करूंगा। इस चलने का अर्थ केवल विन्ध्य देवी का दर्शन न होगा, बल्कि काशी में विश्वनाथ का भी दर्शन करते हुए आजमगढ़ जाना होगा। काशी में दो तीन दिन से कम नहीं लगाऊँगा और पं० सदाशिव के यहां ही इन लोगों का डेरा डलवाऊंगा। तब ठीक होगा न ?"

सुकुल जी के इस कार्य्यक्रम से रामलखन मन ही मन बड़े प्रसन्न हुए।

श्यामलाल ने मुसकराते हुए कहा—"पंडितजी ! आपकी तजवीज है बहुत उम्दा।"

सु०—"अजी साहब, यह तो इसलिए है कि साँप मरे और लाठी न टूटे वाली कहावत के अनुसार काम करना चाहता हूं। अभी यदि मैं कमलाशङ्कर को यह सारी बात बुढ़िया से कह दूं तो वह क्या जाने क्या कर डाले; भला उसके देखते कमला-शङ्कर और प्रतिभा के विवाह की कल्पना भी हो सकती है ! हरे ! हरे ! शिव ! शिव !"

"पंडितजी, यदि आप इस विवाह को रोक देंगे तो मैं आप को एक बढ़िया बकरे का मांस खिलाऊँगा।" यह कहकर श्याम-लाल हँसने लगा।

श्यामलाल की इस हँसी में सुकुल जी के कार्यक्रम के प्रति एक छिपा हुआ व्यंग था, जिसकी उत्पत्ति का कारण यह था कि सुकुलजी के इस तत्परता-प्रदर्शन से रामलखन की दृष्टि में उसकी उपयोगिता का अन्त होता जा रहा था। रामलखन ने गंभीर रहकर उसे अपनी हँसी पर स्वयं ही लज्जा का अनुभव करने का अवसर दिया।

सुकुल जी ने विनय और तेजस्वितासूचक स्वर में कहा—

"अरे बाबू! आजकल के जमाने में आप लोग इस पुराने ढंग के ब्राह्मण से प्रणाम कर लिया करो, इतना ही बहुत है; अब तो ऐसी नास्तिकता फैल रही है कि भारतवर्ष के राजनैतिक पतन की सारी जिम्मेदारी ब्राह्मणों पर डाल कर, तथा उन्हें दोषी ठहरा कर लोग उनसे प्रणाम तक करने में संकोच करते हैं; हमारे बाबूसाहब के राजकुमार साहब का यही हाल है; वे तो हम लोगों को पाखण्डी, देशद्रोही, और पोप कहते हैं।"

राम ल०—"पंडित जी, उनकी तो कुछ बात ही न चलाइए; मेरी तो समझ ही में नहीं आता कि बाबू जगजीवन सिंह ऐसे धार्म्मिक और शान्ति-प्रिय सज्जन के यहां इतने उपद्रवी और उत्पाती पुत्र ने कैसे जन्म लिया! बाबू साहब के जीवन में यही एक दुःख रह गया।"

सु०—"बाबूसाहब के जीवन में दुःख ही नहीं, यह महान् दुःख की बात हो गयी। और देखिए न, उधर प्रतिभा की सुशीलता देखिए, इधर अजीत बाबू की उग्रता और उद्दण्डता; बहिन-भाई में ही ईश्वर ने कितना अन्तर कर दिया है! प्रतिभा तो मानो बाबू साहब की सहृदयता, सरलता, और मृदुलता की साकार शोभा है; इस अपूर्व बालिका को ईश्वर ने

जैसा ही अनूठा रूप दिया है वैसा ही मनोहर हृदय भी दिया है। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अजीत बाबू में अनेक गुण भी हैं, उनका सदाचार और उनकी सरलतापूर्ण प्रकृति उनके जीवन की बहुत बड़ी विशेषता है।"

श्यामलाल ने भी इस बातचीत में योग देना कुछ आवश्यक समझा। उसने कहा—"पंडित जी अजीत बाबू के सम्बन्ध में आपने जो कुछ कहा है वह ठीक हो सकता है। किन्तु प्रतिभा को आप बिलकुल ही भोली-भाली मत समझिए; अजीत की उग्रता का कुछ अंश उसमें भी विद्यमान है। सच बात यह है कि अजीत की माता लक्ष्मी देवी का प्रखर स्वभाव उनकी दोनों सन्तानों को प्राप्त हुआ है; अन्तर केवल इतना ही है कि प्रतिभा अपने मन में लिये रहती है, और अजीत उगल देता है; प्रतिभा हठीली बड़ी है।"

सु०—"भाई, बाबू जगजीवन सिंह के परिवार से जिनका थोड़ा भी परिचय है वे जानते हैं कि प्रतिभा बड़ी समझदार और उदार हृदय की बालिका है। मैं भी यही जानता हूं। लेकिन यदि इस बीच में कोई परिवर्तन हो गया हो तो मुझे नहीं मालूम।"

राम ल०—"पंडित जी, क्या यह सम्भव नहीं है कि विवाह होने के पहले मैं प्रतिभा की वर्तमान चित्त-वृत्ति और प्रकृति से परिचित हो सकूं। आपकी सहायता से यह कठिन तो न होना चाहिए। बात यह है कि मैं भी हठी और दुराग्रही पुरुष हूं; यदि श्यामलाल के कथनानुसार प्रतिभा भी हठीली हुई तो बड़ा कठिन होगा।"

सु०—"वाह बाबू साहब! आप इतने ही में घबरा गये। स्त्रियां तो सभी हठीली होती हैं! राजहठ, बालहठ, नारीहठ

प्रसिद्ध है। पुरुष के पौरुष की यही शोभा है कि तीक्ष्ण नयन-बाण चलाने वाली चन्द्रमुखी प्रमदाओं के हठ की रक्षा कर के उनकी कामनाओं की पूर्त्ति करे। महाराज, इस संसार में रक्खा ही क्या है; सुकुमारी प्राणवल्लभाओं के सामने प्रेमपूर्ण पराजय का रसास्वादन न किया तो जीवन का कुछ आनन्द ही नहीं मिला।"

सुकुलजी के इस गद्य-काव्य का उत्तर देना कठिन था। इस सुकुमार दलील का कुछ भी विरोध न कर के श्यामलाल ने कहा—"अच्छा पंडितजी अब चलना चाहिए। सुपरिएटेण्डेण्ट साहब भी बड़े आदमी हैं; इनके पास बड़े बड़े काम हैं। साथ ही हमको और आपको बहुत काम करना है; हम लोग कुछ कर दिखायेंगे तभी इनकी दृष्टि में हमारा और आप का गौरव भी रहेगा, अन्यथा नहीं।"

लेकिन रामलखन सिंह ने इन दोनों महाशयों को इतनी जल्दी जाने नहीं दिया। उन्होंने कहा—"देखिए, बाहर लू चल रही है। मैंने स्वार्थ-वश आप दोनों महाशयों को ऐसे समय में बुला कर कष्ट दिया तो आपको इस प्रकार जाने देकर मैं अपने अन्याय की मात्रा को बढ़ाऊंगा नहीं। ठहरिए, आप जंगल में नहीं बैठे हैं, थोड़ा शरबत पीजिए और दोपहरी भर यहीं आराम कीजिए। पंडितजी! क्षमा कीजिएगा, यदि आज-कल किसी दूसरे समय मुझे अवकाश मिलता तो इस भयङ्कर गरमी में मैं आपको हैरान न करता।"

सुकुलजी ने कहा—"बाबू जी! आप बड़े आदमी हैं, आपको खस की टट्टियां मिल सकती, हैं और लू से आपका डरना स्वाभाविक है; परन्तु, मुझ जैसे देहाती आदमियों के लिए लू उतनी भयङ्कर नहीं है जितनी आप समझे हैं। मुझको

आपने प्रेम से बुलाया; ऐसी दशा में लू क्या आग भी बरसती होती तो मैं अवश्य ही आता; इसके सिवा पेट के धन्धे से छुट्टी पाने पर आपकी सेवा करना ही तो हमारा काम है। हां, बाबू श्याम-लाल को अवश्य ही कष्ट हुआ होगा; ये तो अँगरेजी पढ़े लिखे नये छैले हैं।"

शरबत बन कर आ गया; एक एक ग्लास सब के सामने रख दिया गया।

सु०—"जान पड़ता है, अभी आपको मेरा पूरा परिचय नहीं मिला।"

रामल०—"मैं अच्छी तरह जानता हूं कि आप संस्कृत के विद्वान, परोपकारी, और कुलीन ब्राह्मण हैं। यह भी जानता हूं कि इस ग्लास में देशी चीनी, घर का दही, और शुद्ध गंगाजल छोड़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है। फिर आपकी आपत्ति का क्या कारण हो सकता है?"

सु०—"बस आप हमको क्षमा कर दीजिए।"

रामल०—"यदि आप कारण न बताएँगे तो मैं यही सम-झूँगा कि आप मेरा अपमान कर रहे हैं।"

सु०—"बाबू जी! यदि आप कारण जानने ही के लिए उत्कण्ठित हैं तो सुनिए—मैंने यह सब व्यवहार उसी दिन से छोड़ दिया जिस दिन अजीत बाबू की यह अपमान-जनक बात सुनी कि एक सीधा और लोटे भर शरबत के लिए अकर्मण्य, पेटू और भिखारी ब्राह्मणों ने भारतवर्ष का नाश कर डाला। अजीत बाबू ने यह बात अपने एक मित्र से कही थी और जब उन्होंने मुझे देखा था तब आवाज और ऊँची कर दी थी। उसी दिन मैंने प्रण किया था कि कम से कम मैं दान-दक्षिणा अथवा ऐसा समझा जाने वाला कोई अन्य व्यवहार स्वीकार नहीं करूंगा।"

रामलखन ने उत्तर दिया, "पहली बात तो यह है कि मैं आपको कुछ दान नहीं दे रहा हूं, केवल साधारण शिष्टाचार का पालन कर रहा हूं। किन्तु, यदि आप ही की बात मान ली जाय तो भी मैं यह कहूंगा कि आप मेरे ऊपर अन्याय कर रहे हैं; दूसरे के अपराध का बदला मुझसे ले रहे हैं। यह तो वैसा ही हुआ जैसे अजीत बाबू सरकार के विरुद्ध कोई कार्य्य करें और उसके लिए श्यामलाल को फाँसी हो। आपका न्याय विचित्र है, नहीं आपके इस प्रण को आज मैं तोड़ दूँगा।"

यह कह कर बाबू रामलखन सिंह स्वयं सुकुल जी का हाथ आदि धुलाने के लिए जल लेकर खड़े हो गए। इस आग्रह को टालना कठिन हो गया। अन्त में सुकुल जी ने कुर्सी से उतर कर फर्श के बिछौने आदि से अलग भूमि पर बैठ कर शरबत पी लिया। श्यामलाल कुर्सी पर बैठे बैठे ही दो ग्लास शरबत उड़ा ले गया। रूमाल से मुँह हाथ पोंछ कर जब सुकुलजी कुर्सी पर फिर आ बैठे तो हँस कर बोले—"अजीत बाबू अगर सुनेंगे तो यही कहेंगे कि ठंढे शरबत के लालच से यह ब्राह्मण दोपहर को बाबू रामलखन के यहां दौड़ा गया था।"

यह कह कर वे जोर से हँसने लगे। रामलखन और श्यामलाल भी हँसने लगे।

श्याम०—"सुकुल जी, अजीत बाबू को तो कुछ सनक सी हो गई है, वे कहते हैं कि भारतवर्ष की ऐसी दुर्दशा के समय क्या यह उचीत है कि हम हारमोनियम बजाएं, कविता करें, चित्र-कला का अभ्यास करें, सिनेमा और थियेटर देखने जायं। बताइए तो सही, भारत पराधीन है तो क्या हमने उसे पराधीन बनाया है जो गंगा जी में जाकर डूब मरें? एक दिन तो मेरे ऊपर बेतरह नाराज हो गये। मैंने कहा—"आपको तो मैं तब

समान स्वतन्त्रता के साथ मिलता-जुलता हूं, इसलिए जानता हूं कि कौन कितनी गहराई में है। यह मैं आपको स्पष्ट बताये देता हूं कि प्रतिभा इनको नहीं चाहता; उसका प्रेम कमलाशङ्कर से ही है। अजीत सिंह को आप जानते ही हैं, पुलीस विभाग के शत्रु हैं; वे प्रतिभा को सहायता देंगे, और सम्भव है, कमलाशङ्कर के साथ उसका विवाह कराने का उद्योग करें। यदि यह न हो सका, यदि कमलाशङ्कर का विवाह आपने पं० सदाशिव के यहां करा ही डाला तो आप विश्वास रखिए कि अजीत बाबू प्रतिभा का विवाह बाबू राधिकाकान्त के साथ करेंगे।"

सुकुल जी—"अरे उसी ढोंगी, पाखण्डी वेदान्ती मास्टर के साथ जो आजकल घोषकुमारी को सिनेमा और थियेटर दिखाता फिरता है, और जिसके न घर है न द्वार है? बाबू साहब कब भला उस दरिद्र के हाथों में प्रतिभा को सौंप देंगे? क्या उनकी कुछ न चलेगी? क्या अजीत ही सर्व्वे-सर्व्वा हो गये हैं?"

श्याम०—"नहीं, यह बात तो नहीं है। अभी बाबूसाहब चाहें तो अजीत को कान पकड़ कर निकाल दें। परन्तु पुत्र-प्रेम उन्हें दुर्बल कर देता है। वे बस झुँझला कर, सिर पीट कर, अपने भाग्य को कोस कर रह जाते हैं।"

ताँगा कम्पनी बाग के कर्नलगंज वाले फाटक के सामने आ गया। श्यामलाल उतर गया।

सुकुल जी ने कहा—"देखा जायगा। मैं बाबूसाहब से शीघ्र ही मिलूँगा।"

पण्डितजी को लेकर ताँगा बोर्डिंग हाउस की ओर चला।

[११]

प्रतिभा स्वभाव से ही मृदु और सरल बालिका थी; वह बाप की दुलारी और मां की आँखों का तारा थी; भाई उस पर जान देता था; नौकर-चाकर उसकी आज्ञाओं का पालन करने के लिए तन-मन से तैयार रहा करते थे। बँगले की चौहद्दी के भीतर का बाग भी—जहाँ मैना, सुग्गा, बुलबुल और मोर मीठी मीठी आवाज़ सुना कर रूखे से रूखे हृदय को भी हरा कर देते थे; जहां गुलाब, चमेली, बेला, कुन्द, गेंदा आदि फूलों की क्यारी में बारहो महीने बसन्त बिलमा रहता था और जहां हर एक ऋतु के अनुसार प्रकृति की मनोहर शोभा के अवलोकनार्थ कहीं अमराई, कहीं टीन से छाये गये और लताओं से परिवेष्टित छोटे छोटे दालान थे, और कहीं हरी हरी दूब से ढकी हुई भूमि थी, जिसकी शोभा देखते हुए हेमन्त ऋतु में सूर्य की मधुर किरणों का आलिंगन करने में स्वर्ग-सुख का अनुभव होता था—शायद प्रतिभा के कोमल चरणों, मृदुल करों, सरव रसना और चंचल नेत्रों के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करने के लिए तरसता सा रहता था। वास्तव में ईश्वर ने जैसी ही उसे शारीरिक सुघरता दी थी वैसी ही मधुरता उसके हृदय और मन को दी थी, जिससे सभी उसके वश में थे।

बचपन से लेकर किशोरावस्था तक का समय प्रतिभा ने माता-पिता की आँखों की छाया के नीचे प्रकृति-सखी के साथ खेल कूद कर बिता दिया। किन्तु उसके नवयौवन के प्रथम चरण में न जाने कहां से छिप कर अनंग देव ने उसके कोमल कलेजे को शर-विद्ध कर दिया; इस विषैले वाण के घातक प्रहार से कोई भी सगा से सगा उसकी रक्षा नहीं कर सका। विचित्र बात तो यह हुई कि प्रहार करने वाला ही सबसे अधिक सगा जान पड़ने लगा।

मिस घोष को प्रतिभा के साथ ईर्ष्या करने के अनेक कारण थे। उसने अजीत को हृदय से चाहा, किन्तु अजीत ने उसके भावों का आदर नहीं किया; पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट रामलखन सिंह भी प्रतिभा ही के लावण्य और सौन्दर्य की ओर अधिक आकर्षित हुए; ऐसी दशा में मिस घोष का क्षोभ स्वाभाविक था। वह स्वाभाविकता उस दशा में सर्वथा क्षम्य हो सकती थी जब वह प्रतिभा को हानि पहुँचाने का उद्योग न करती। किन्तु, उसने तो प्रतिभा की इस दुर्बल स्थिति से लाभ उठा कर उसका सर्वनाश ही करने का निश्चय कर लिया। एक ओर प्रतिभा को विवाह और प्रेम-विषयक अपने अधिकारों पर हठपूर्वक आरूढ़ होने के लिए प्रेरित करके वह उसे बाबूसाहब की आँखों में गिराना चाहती थी, दूसरी ओर अजीतसिंह के सामने प्रतिभा-कमलाशङ्कर विवाह-सम्बन्धी प्रयत्न को एक कर्तव्य के रूप में प्रस्तुत करके रामलखन के साथ प्रतिभा का विवाह असम्भव बनाने की वह चेष्टा कर रही थी, और बेचारी प्रतिभा को मिस घोष के इस कपट का पता नहीं था।

संध्या समय प्रतिभा जो बहलाने के लिए फूलों की एक क्यारी में चली गयी। वहां उसने देखा कि भौंरा स्वच्छन्द रूप से एक एक फूल का मधुपान करता घूम रहा है। इस दृश्य को देखते ही उसने अपने आप से पूछा—"क्या प्रकृति के राज्य में सब स्वतंत्र होंगे और केवल नारी ही परतंत्र रहेगी? क्या मुझे उस व्यक्ति से प्रेम करने का अधिकार नहीं है जिसकी ओर मेरा सम्पूर्ण व्यक्तित्व उसी प्रकार नृत्य सा करता हुआ आकर्षित हो जाता है जिस प्रकार उत्ताल तरङ्ग-माला-संकुल महासागर मंजुल चंद्रमा के दर्शन से हो उठता है? क्या मैं कमल बाबू को प्यार के योग्य समस्त गुणों से युक्त मानती हुई भी

इसलिए त्याज्य समझूं, अस्पृश्य और अचिन्त्य मानूं कि वे मेरे सजातीय क्षत्रिय नहीं हैं? भौंरा और गुलाब एक जाति के कहां हैं? फिर भी वे एक दूसरे के प्रति आन्तरिक अनुराग के कारण इतने निकट हैं जितना गुलाब गुलाब के नहीं, भौंरा भौंरा के नहीं। ऐसी दशा में मैं यदि प्रेम-पथ की पथिक बनी हूं, तो इसमें क्या हर्ज है?—यह विचार-श्रेणी थी उस प्रतिभा की जो काम-शर-विद्ध थी, जिसके यौवन के फूस के झोपड़े में दाहक अंगार का प्रवेश हो गया था।

किन्तु, जिस दिन प्रतिभा ने बाबूसाहब का अजीत के प्रति अपार रोष देखा था उस दिन उसकी सुकुमार प्रकृति आप ही आप काँप उठी थी और आज भी उसी का स्मरण आते ही वह सुकुमार लता की तरह काँप गयी। पिता जी और माता जी के प्रेम से अधिक सच्चा और कपट-शून्य प्रेम मेरे लिए किसका हो सकता है? मेरे मुंह पर जरा सी उदासी देख कर जिनका कलेजा काँप जाता है, अपनी भलाई के सम्बन्ध में उन्हें ही सोचने-विचारने का अवसर न देकर क्या मैं कृतघ्नता नहीं कर रही हूं? इन्हीं विचारों की माला कभी प्रतिभा को एक ओर ले जाती और कभी दूसरी ओर। दोनों ओर प्रबल वेग था; ऐसी दशा में संकल्प-शक्ति-शून्य होने के कारण किस पथ पर अग्रसर होना चाहिए, यह स्वयं निर्णय करने में वह असमर्थ हो रही थी। अचानक उसे अपने कुञ्जियों के गुच्छे की याद आ गयी, जिसे वह सदा अपने ही पास रखती थी, किन्तु आज अन्यमनस्कता के कारण कहीं छोड़ आयी थी। भयभीत हरिणी की तरह वह द्रुत गति से चल कर अपने कमरे में आयी और गुच्छा ढूँढ़ने लगी। गुच्छा तो शीघ्र ही मिल गया, किन्तु फिर भी उसका चित्त शान्त न हुआ। अपने सन्दूक में उसने

एक चीज बड़े ही प्यार से रख छोड़ी थी—यह प्यारी चीज थी कमलाशङ्कर के पत्रों की पूरी पुस्तकाकार फाइल। इसकी रक्षा का ध्यान उसे अपने प्राणों से भी अधिक रहा करता था। गुच्छा पाते ही उसने तुरन्त अपने शंकित और व्याकुल हृदय को सम्हालने की व्यर्थ चेष्टा करते हुए काँपते हुए हाथों से ही किसी तरह सन्दूक खोला। नियत स्थान पर फाइल को न पाकर ही उसका कलेजा धड़का। फिर तो क्षण भर में सारे सन्दूक की चीजें उलट पुलट डालीं। किन्तु वह फाइल कहीं दिखायी नहीं पड़ी। फिर भी बड़ी देर तक उसके खो जाने की हृदय-विदारक किन्तु अब अत्यन्त दुर्निवार सम्भावना को वह बड़ी देर तक टालने की कोशिश करती रही। अन्त में, सत्य बात की भीषणता से मर्माहत होकर वह सिर के बल गिर पड़ी। इसी समय जानकी महरिन ने प्रकाश लेकर कमरे के भीतर प्रवेश किया।

[१२]

कमलाशङ्कर का बहुत दिनों का स्वप्न प्रायः कार्य्य-रूप में परिणत होने की अवस्था में आ गया था; प्रतिभा के जिस प्यार की कामना को उसने अनेक वर्ष पूर्व अपने हृदय में स्थान दिया था, उसकी तृप्ति का अवसर अब उपस्थित हो गया था। किन्तु किस प्रकार वह जीवन-संगिनी हो सकेगी, यह प्रश्न साधारण नहीं था। पं० हरिहर सुकुल ने उसके पुनर्विवाह के लिए जो कोशिश शुरू कर दी थी उसका ध्यान आते ही वह खीझ उठता था; क्योंकि, उसके दुर्भाग्य से सुकुल जी धुन के पक्के थे और सब प्रकार की जनमण्डली में अपना विशिष्ट प्रभाव रखते थे। इस समय कमलाशङ्कर यदि किसी को अपना सबसे प्रबल शत्रु मानता था तो केवल सुकुल जी को। बहुत

बड़ी कठिनाई तो यह थी कि यह बेढब ब्राह्मण उचित को उचित और अनुचित को अनुचित कहने में लेशमात्र संकोच करना जानता ही नहीं था। ठीक उसी समय जब कि उसके मौन रहने से काम के सफल हो जाने की आशा हो गई रहेगी वह समस्त जीवन को मित्रता को ताक पर रख कर खरी बात कह ही डालेगा—यह सोच कर कमलाशङ्कर अपने प्रायः सफल प्रेमकाण्ड की अन्तिम सफलता के लिए बहुत चिन्तित हो रहा था।

बाबूसाहब और लक्ष्मी देवी के विचारों से कमलाशङ्कर को पूरी जानकारी थी; उनसे किसी प्रकार की सहानुभूति की आशा करने की मूर्खता वह नहीं कर सकता था। किन्तु अजीत और बाबूसाहब की हाल की बातचीत की जो थोड़ी-बहुत भनक उसके कानों में पड़ी थी उससे उसने यह उचित और आवश्यक समझा कि इस विषय में अजीत की सहानुभूति कहां तक साथ देगी, इसका पता लगाने की वह कोशिश करे। आज सन्ध्या समय आजमगढ़ से एक पत्र आ जाने और उसकी माता अन्नपूर्णा देवी के वहां जल्दी चलने के निश्चय ने यह अनिवार्य कर दिया कि यह कार्य जितनी ही जल्दी हो जाय उतना ही अच्छा। इसलिए कपड़े पहन कर वह तुरन्त ही अजीत से मिलने के लिए चला। बाबूसाहब से अब उसे इतनी घबराहट मालूम होती थी कि उसने अजीत बाबू से बँगले के बाहर ही मिलने का निश्चय किया।

[१३]

अजीत बाबू यह शीघ्र निर्णय न कर सके कि मिस घोष के पत्र का क्या उत्तर दिया जाय। पत्र की मादक भाषा और भाव का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा। सार्वजनिक जीवन में पड़ कर

इधर कुछ दिनों से नारी के भावुक हृदय से वह बहुत दूर हो गये थे। पद्मा उनसे कुछ ऐसी खिंची रहती थी कि अजीत को वह अपने कौशल से नारी के स्निग्ध हृदय का परिचय देने के प्रायः सर्वथा अयोग्य हो गयी थी। ऐसी अवस्था में मिस घोष के पत्र ने अजीत के चित्त को आज स्वर्गीय सौरभ से सौरभित कर दिया। भाव-जगत के इस वासन्तिक मलय-पवन ने कमरे की पंखे की हवा के साथ मिलकर अजीत को निद्रित बना दिया।

नींद टूटने पर मिस घोष के पत्र का उत्तर लिखने का विचार अजीत ने किया और लेटर पेपर तथा लिफाफे के लिए अपना बक्स देखा; उसमें न पाने पर इन्हीं की तलाश में वह बाबूसाहब के कमरे की ओर चले। लेकिन दरवाजे पर पड़ी हुई चिक को थोड़ा सा उठाने पर ही देखा कि वे शान्ता के साथ स्वयं बच्चों की तरह खिलवाड़ कर रहे हैं; इस मधुर बाल-लीला में उन्हें बाधा डालने की हिम्मत नहीं हुई; वह चुपचाप पास ही खड़ा होकर बड़ी देर तक न जाने क्या क्या सोचते रहे।

अजीत का हृदय बड़ा कोमल था। पिता का यह स्व-भाव देख कर उनका भावुक हृदय रो उठा। उन्होंने मन ही मन कहा—यदि इनमें केवल एक ही दोष न होता—ये गवर्मेंट के अन्ध-भक्त, देश-भक्ति के प्रबल शत्रु, और संसार के समस्त सुखों को केवल अपने ही कुटुम्बियों तक परिमित रखने की आकांक्षा से प्रेरित न होते, तो इन सरल-हृदय पितृदेव को देवता-रूप मान कर मैं कितने भक्ति-भाव से पूजता। यदि कोई तर्क के द्वारा यह सिद्ध कर देता कि उक्त अवगुण ही सुगुण हैं और मनुष्य उन्हें आदर्श रूप में ग्रहण कर सकता है तो आज

अजीत की अपार प्रसन्नता होती, क्योंकि तब उन्हें अपने प्रेमी पिता से विरोध न करना पड़ता। वह लौट आये; और पलँग पर लेट कर इन्हीं विचारों में डूब गये। पंखे की हवा लगते लगते उन्हें फिर निद्रा आ गयी। जब वह जागे तो संध्या हो गयी थी। जान की महरिन ने उन्हें उठ के बैठा हुआ देखा तो पास आकर कहा—"भैया! अभी अभी बाबू जी घूमने गये हैं, कई बार देखा कि आप जगे हैं या नहीं। आप सोते रहे, कई आदमी आये थे, उन्हीं के साथ हवा खाने गये हैं।"

बाबूसाहब के कमरे में जाकर उनकी मेज पर से अजीत ने बढ़िया लेटर पेपर और लिफाफा लिया और अपने कमरे की किवाड़ बन्द कर मिस घोष को पत्र लिखने की तैयारी की। किन्तु कुछ भी शुरू करने के पहले उन्होंने अपने आपसे पूछा, "इस पत्र में क्या लिखूं ?"

एक बार तो अजीत के जी में आया कि प्रेम की प्यासी मिस घोष को उसकी भाषा की अपेक्षा दुगुनी सरस भाषा में पत्र लिखूं। उनसे किसी अदृष्ट, अज्ञात, अनाम, अरूप व्यक्ति ने मौन भाषा में कहा, "ऐसी असाधारण सौन्दर्य्यमयी और प्रतिभाशालिनी नारी यदि किसी युवक के प्रति प्रणय-भाव प्रकट करे तो उसे निराश करना क्रूरता की पराकाष्ठा है।" इस आदेश के सामने अजीत ने प्रायः अपना सिर झुका दिया।

'किन्तु—और यह साधारण किन्तु नहीं था—आज जिस बूढ़े को शान्ता के साथ खेलते देख कर तुम बड़ी देर तक अवाक् रह गये थे, जिनके जीवन की समस्त आशाओं और आकांक्षाओं के एक मात्र आधार तुम्हीं हो उनका भी तो तुम्हें कुछ ख्याल करना ही चाहिए'—यह अजीत के सौजन्य-भाव ने अत्यन्त विनयपूर्वक निवेदन किया। अपनी निर्बलता से आप ही

सिकुड़े जाते से अपने स्वरूप को अजीत की धुँधली दृष्टि के सामने प्रस्तुत करके उन्होंने लड़खड़ाते स्वरों में कहा—'और यह तो सोचो कि मिस घोष के साथ यह अनुचित प्रेम-व्यवहार करके बाबूसाहब के सामने कैसे मुँह दिखाओगे? क्या यह भी भारतवर्ष के कल्याण के लिए आवश्यक है कि विवाहित और एक लड़की के बाप होने पर भी तुम ईसाई बालाओं का प्रेम निमंत्रण स्वीकार किया करो? कौन कह सकता है कि पद्मा सुन्दरी नहीं है? कौन कह सकता है कि पत्नी के समस्त कर्तव्यों का पालन करने की उसमें योग्यता नहीं है? सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करके क्या तुमने उसके उचित अधिकारों को भी पैरों तले नहीं रौंदा है? क्या मिस घोष के साथ प्रेम करना भी सार्वजनिक जीवन के अनेक कर्तव्यों में से एक हो सकता है? क्या इस उच्छृङ्खल अनाचार से चारों ओर तुम्हारी अपकीर्ति नहीं फैलेगी, जिससे सार्वजनिक जीवन में भी तुम्हारा टिकना असंभव हो जायगा।'

इस क्षीण और अज्ञात दिशा से आने वाली आवाज में अजीत को थर्रा देने की शक्ति तो नहीं थी, किन्तु फिर भी उसने उन्हें थोड़ा विचार-निमग्न अवश्य ही कर दिया।

इसी समय कमलाशङ्कर आ गया। बैठते ही बोला, "अजीत बाबू! आज थोड़ी देर पहले एक तार के आने से हमें शीघ्र आजमगढ़ जाना आवश्यक हो गया। तय पाया है कि विन्ध्य देवी और काशी-विश्वनाथ का दर्शन करते हुए चलेंगे। विन्ध्याचल तक आप भी चलें तो बड़ा अच्छा हो। यही कहने के लिए मैं आया हूं। चलें तो वहां तक साथ ही रहेगा, पं० हरनन्दन सुकुल भी अपने लड़कों सहित चलेंगे।"

अजीत—"अच्छा मैं अम्मा से पूछ कर सवेरे कहला

दूँगा। चलने की राय होगी तो वहां दोपहर की गाड़ी से चलना ठीक होगा। अगर कोई न चलेगा तो मैं ही चला चलूँगा; मैं तो कलियुग में केवल अभयंकरी देवी के ही चरणों में विश्वास करता हूं; चंडी की आराधना से ही भारतवर्ष का भी उद्धार होगा।"

कमलाशं०—"भाई भारतवर्ष विचित्र देश है। यहां तो दुर्गा-सप्तशती का पाठ भी करेंगे और मच्छरों को भी जूजू समझ कर पीठ दिखावेंगे; दो एक चण्डी के सच्चे उपासक भी हुए तो क्या हुआ? करोड़ों मनुष्य जब कायरता में डूबे रहेंगे और झूठमूठ देवी के भक्त होने का ढोंग रचेंगे तो एक चना कहां तक भाड़ फोड़ेगा।"

अजीत—"कमल बाबू, इस देश के अपने भोले-भाले भाइयों को दुर्गा के सच्चे स्वरूप से परिचित कराना ही मेरे जीवन का उद्देश्य है। इन अभागे अज्ञानी लोगों ने तो यह समझ रक्खा है कि बकरों का रक्त-पात कर देने से ही दुर्गा प्रसन्न हो जायगी; यही ये करते रहे हैं, और अब भी किये जा रहे हैं। लेकिन यह तो हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि देवी प्रसन्न नहीं है; क्योंकि, फिर हमें पराधीनता का दुःख क्यों भोगना पड़ रहा है? ये यह नहीं जानते कि महिषासुरमर्दिनी आद्या भगवती केवल हिंसक, जगत के भार-स्वरूप जीवों का रक्त-पान करके ही सन्तुष्ट होती है। सच पूछो तो संसार के जिन पूँजीवाद, साम्राज्यवाद आदि दैत्यों द्वारा दरिद्रों के शरीर, धन और धर्म का शोषण हो रहा है उन्हीं का लोहू पीकर जगदम्बा आशीर्वाद देगी, इन्हीं दैत्यों के पैशाचिक उदर की पूर्त्ति के लिए इस अभागे देश में करोड़ों भारतीयों की नर-बलि हो रही है; इन राक्षसों का रुधिर-पान करके ही मा प्रसन्न होगी।"

इस गहरे मत-भेद की बात को टालते हुए कमलाशङ्कर ने कहा—"परन्तु मेरी अम्मा तो फूलबाला के कुशल-क्षेम के लिए बकरों का ही बलिदान करावेंगी। हां, गौतम बुद्ध और जैनाचार्य स्वामी महावीर को धन्यवाद दीजिए कि पंडे को कुछ रुपया दे देने से ही यह मान लिया जायगा कि बकरों की बलि हो गयी; हरिहर सुकुल तो यह भी नहीं करेंगे; वे तो शाक्ति हैं।"

कमलाशङ्कर की अम्मा ने उससे शीघ्र ही लौट आने को कहा था। परन्तु, इस समय बातों का ऐसा सिलसिला चल पड़ा कि मन ही मन कुछ सोच कर वह थोड़ी देर के लिए और ठहर गया और बोला—"अजीत बाबू भारतवर्ष का उद्धार तो तभी होगा जब आपकी तरह महाकाली के सच्चे उपासक सभी लोग हो जायं। परन्तु, आपकी बात को तो शाक्त लोग भी न मानेंगे, वैष्णव, जैनी और शेष अधिकांश हिन्दू भले ही स्वीकार करलें। सो ये बेचारे अहिंसक ठहरे; राक्षसों को मारना इनके धर्म के विरुद्ध है। मेरी समझ में यदि बाईस करोड़ हिन्दू जाति-पांति और साम्प्रदायिकता के समस्त भेद-भाव को भुला कर तथा खाने-पीने और विवाह आदि से सम्बन्ध रखने वाले संकोच-भाव को भी तिलाञ्जलि देकर पक्की एकता के सूत्र में बँध जायं और महाचण्डी की सेवा का वास्तविक मर्म समझ लें तो हिन्दुस्तान के सारे संकट दूर हो जायं। परन्तु यह देश अधिकतर उन लोगों का है जो दूसरों को उपदेश देते समय तो महात्मा बन जाते हैं, किन्तु स्वयं आचरण करने का साहस नहीं रखते।"

अ०—"कमल बाबू! यदि ईश्वर ने चाहा तो मैं आप को यह दिखा दूँगा कि इस देश में कम से कम एक युवक ऐसा है जो सारे भारतवर्ष में, एक छोर से दूसरे छोर तक

क्रान्ति उत्पन्न करने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ है—वह क्रान्ति राज-नैतिक, सामाजिक और धार्म्मिक तीनों है, पूर्ण जीवन की क्रान्ति है; संसार में कोई शक्ति ऐसी नहीं है जो मेरे अटल प्रण से मुझे विचलित कर सके; शिवाजी, राणाप्रताप और नैपोलियन मेरे जीवन के पथ-प्रदर्शक हैं।"

यह कहते हुए एकाएक उन्हें पिता का ध्यान आ गया। उन्होंने मन ही मन कहा—"मैं केवल पिता को नहीं जीत सका हूं।"

अजीत की जिह्वा एकाएक रुक गयी। वह कुछ सोचने लगे। मिस घोष के पत्र का क्या उत्तर दूँगा, इसका स्वरूप भी उन्होंने आन्तरिक नेत्रों के सामने कुछ कुछ स्थिर कर लिया।

कमलाशङ्कर ने अजीत को प्रसन्न करने की दृष्टि से कहा—"अजीत बाबू! आप कितने बड़े देशभक्त हैं, इसे मैं जानता हूं। मैं तो, भाई, एक आराम-तलब और स्वार्थ-लोलुप व्यक्ति हूं। मेरा विश्वास है कि हममें से हर एक व्यक्ति को प्रयत्न करके धनवान और प्रभावशाली बनना चाहिए। साथ ही मैं यह भी मानता हूं कि इस सृष्टि की हर हालत में कुछ न कुछ लोग ग़रीब होंगे। मैं किसी किसी अंश में चाणक्य की नीति को मानता हूं और सोचता हूं कि सब के पुरुषार्थ बराबर नहीं, सब की योग्यता बराबर नहीं; इसी कारण मैं गरीबों के कष्ट से घबराता नहीं, चिन्तित नहीं होता। जो लोग स्वार्थ-त्याग करते हैं, औरों के लिए कष्ट सहते हैं वे या तो महात्मा हैं, या अत्यन्त अधिक सीधे साधे; आपको तो मैं महात्मा ही समझता हूं।'

अजीत ने हँसकर कहा—"वाह, खूब मुँह-देखी प्रशंसा की!"

क०—"नहीं, अजीत बाबू! मैं मुँह-देखी प्रशंसा नहीं करता। मैं ही क्या, सारा इलाहाबाद आपका गुण-गान कर

रहा है; समाचार-पत्र आपके स्वार्थ-त्याग का भूरि-भूरि कीर्त्तन कर रहे हैं।"

कमला का अन्तिम वाक्य अजीत के लिए बड़ा ही शान्ति-प्रद था। अपने पिता के एकलौते लड़के होने के कारण अजीत बाबू लड़कपन से ही बड़े लाड़-प्यार से पाले गये थे; पिता और माता ने कलेजा काढ़ काढ़ के उनकी इच्छाओं की पूर्त्ति की थी; उनकी बात का विरोध करने का साहस तो कभी किसी ने किया ही नहीं था; अपनी किशोरावस्था को उन्होंने ऐसे अध्यापकों, मित्रों और नौकरों-चाकरों के बीच में बिताया था, जो जानबूझ कर उनके कथन को महत्ता दिया करते थे; ऐसी दशा में अजीत का निरंकुश हो जाना स्वाभाविक था; उनकी यह प्रकृति हो गयी थी कि वह प्रशंसा से प्रसन्न और विरोध तथा वाद-विवाद से अप्रसन्न हो जाते थे। उनकी इस दुर्बलता से कमलाशङ्कर खूब परिचित थे और समय पाकर उन्होंने उससे लाभ उठा लिया। थोड़ी देर के लिए अजीत ने पक्का निश्चय कर लिया कि अपनी विचार-स्वतन्त्रता को न छोड़ूँगा, पिता जी को भले ही क्लेश पहुँचे। और लोग कायर हैं, धोखेबाज हैं, बेईमान हैं, तो क्या मैं भी धोखेबाज, बेईमान और कायर बनूं? शिवाजी ने औरङ्गजेब के राजत्वकाल में हिन्दुओं की रक्षा की थी, गुरु गोविन्द सिंह ने साधारण किसानों को भयङ्कर सिक्ख बना दिया था—क्या इन महावीरों का पथानुसरण मैं भी नहीं कर सकता? बड़े बड़े राजे और महाराजे उत्पन्न हुए और मर गए उन्हें कौन जानता है? परन्तु शिवाजी और गुरु गोविन्द सिंह का यश आज भी विद्यमान है। अपने वीर जीवन के प्रारम्भ-काल में ये जैसे थे क्या उससे मैं किसी बात में कम हूं? शारीरिक बल,

स्फूर्त्ति, उत्साह और कार्य्यकारिणी शक्ति में तो मैं किसी से कम नहीं—मन हीमन अजीत बाबू इन बातों को सोचता हुए आनन्द-रसका पान करने लगे। फिर उन्होंने कहा—'कमल बाबू, आप के द्वितीय विवाह के सम्बन्ध में क्या तै हुआ? पाँच छः दिनों पहिले मैंने मां से सुना था कि पं० हरिहर सुकुल आपका विवाह काशी के प्रसिद्ध नेता पं० सदाशिव मिश्र की कन्या से कराना चाहते हैं। सुकुलजी से भी मैंने बातचीत की थी; उन्होंने कहा था कि कमलाशङ्कर की माता ने प्रायः स्वीकार कर लिया है; केवल कमलाशङ्कर की सम्मति अभी नहीं मिली है। मैं इस विषय में आप से पूछने वाला था; किन्तु अभी कोई अवसर ही नहीं मिला था। विवाह तो शीघ्र ही करना ही पड़ेगा। छः महीने की बालिका का लालन-पालन और जमींदारी का सम्पूर्ण प्रबन्ध कब तक बूढ़ी अम्मा पर छोड़े रहोगे। धीरे धीरे चार-पाँच महीने तो आप को स्त्री को मरे भी हो गये। इधर महीनों से मैं बच्ची को देख नहीं सका हूं। है तो वह अच्छी तरह?"

"हां, वह तो अच्छी तरह है", कह कर कमलाशङ्कर ने मूल विषय की चर्चा फिर शुरू की—"पं० सदाशिव से हमारे एक बहुत पुराने सम्बन्ध का भी पता लगा है। सुकुलजी का घर मिश्रजी के बंगले के पड़ोस ही में है। इसीलिए वे चाहते हैं कि उनके द्वारा हम लोगों का प्राचीन सम्बन्ध नवीन रूप से स्थापित हो जाय। मिश्रजी के कैद हो जाने से सुकुलजी और भी व्यग्र हैं। मिश्र जी की कारावास-अवधि समाप्त हो चली है; उनके छूटने के पहले सुकुल जी सब कुछ ठीक रखना चाहते हैं। यह सब तो है, परन्तु मैंने अभी कुछ निश्चय नहीं किया है। आपकी क्या राय है?"

अजीत ने कहा—"कमल बाबू, यह टेढ़ी बात है। मैं विवाह जैसे उत्तरदायित्व के कार्य्य में आप को अपनी क्या राय दे सकता हूं? इस सम्बन्ध में मेरे विचार आपसे छिपे नहीं हैं। मैं तो यही कहूंगा कि वर और कन्या पूर्ण अवस्था को प्राप्त होकर और एक दूसरे के प्रेम का परिचय लाभ करके ही विवाह-बन्धन में बँधें। साथ ही यह भी ध्यान रहे कि प्रेम के राज्य में जाति-पाँति नहीं प्रचलित है। आवश्यक सहानुभूति उत्पन्न होने पर प्रत्येक नारी और पुरुष को एक दूसरे का आजन्म सहयोगी बनने का अधिकार है। इस सम्बन्ध में तो मैं अङ्गरेजों आदि का ही ढंग पसन्द करता हूं। आप तो शायद अपनी ब्राह्मण उप-जाति के बाहर जाकर विवाह करने का साहस न कर सकें।"

कम०—"नहीं, मैं तैयार हूं। मैं प्रेम का भूखा हूं। पहली स्त्री से मुझे कुछ भी सुख नहीं मिला। वह अशिक्षिता थी, जैसी कि मेरी जाति की अधिकांश स्त्रियां हैं। मेरे स्वर्गवासी पिता दहेज के बड़े प्रेमी थे और बहुत से रुपये और माल असबाब के साथ-साथ कुरूपा पुत्र-वधू भी लाये थे। तब मैं कुछ कह नहीं सकता था। किन्तु, अब उसी गलती को फिर नहीं होने दूँगा। मैं सबसे पहले प्रेम, शिक्षा, उदारता, और सरलता चाहता हूं, बाद को और सब।" अजीत ने प्रसन्न होकर कहा—"यदि ऐसी बात है तो मैं आप की सहायता कर सकता हूं; प्रतिभा को मैं आप की सेवा में समर्पित कर दूँगा। वह सब तरह से आपके योग्य है और आप उसके योग्य हैं। पिता जो उसके विवाह का जो प्रबन्ध कर रहे हैं उससे मैं सहमत नहीं हूं।"

अजीत के इस वादे से बहुत अधिक आनन्दित न जाने

पढ़ने की चेष्टा करते हुए कमलाशङ्कर ने कहा—"अजीत बाबू, बहुत बड़ा तूफ़ान खड़ा होने का डर है; अपने पिताजी के स्वभाव को आप अच्छी तरह जानते हैं; मैं आपको संकट में डालना नहीं चाहता।"

अजीत ने स्पष्टवादिता से काम लिया। उसने तुरन्त ही कहा—"प्रश्न यह है कि आप तो संकट में पड़ने से नहीं घबराते? आप अपने को सब तरह से बचा के चलने वाले आदमी हैं। ऐसा करने पर सैकड़ों ही क्यों, लाखों मनुष्य आपकी ओर उँगली उठावेंगे। ऐसी दशा में अपना कलेजा मज़बूत कीजिए। रहा मेरा संकट, सो उसकी चिन्ता करना व्यर्थ है; अजीतसिंह से मनही मन जलने वाले आदमी तो सहस्रों हैं, परन्तु उसका बाल भी बाँका करने का साहस किसी किसी में ही है। मेरा विरोध और अपमान करना हँसी खेल नहीं है। जान को हथेली पर रख कर मैंने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया है। मैं ग़रीबों को छोड़कर किसकी आँखों का काँटा नहीं हूँ। सरकार का आलोचक, पूँजीवाद का शत्रु, लकीर के फ़क़ीर सनातनियों के अंगुलि-निर्देश का पात्र; मैं तो संकट के वायु, मण्डल में ही सांस लेता हूं, जैसे मछलियां समुद्र के अन्तस्तल में। सोच-विचार लीजिए, अपने विचारों को किसी पर लादना नहीं चाहता।"

क०—"अजीत बाबू, मैं दुर्बल-हृदय नहीं हूँ। जिस बातको मेरा मस्तिष्क स्वीकार कर लेता है उसे करने में मैं जौ भर नहीं डिगता। स्वार्थ-त्याग के मामले में भी, जहाँ तक सम्भव होता है, मैं नहीं पिछड़ता। मैं आप को बता चुका हूँ कि पहले विवाह से मुझे कोई सुख नहीं मिला। मुझे विश्वास है कि यदि मैं स्वयं को इस सम्बन्ध में अब भी पराधीन रक्खूँगा

तो पहले विवाह की त्रुटियों की ही पुनरावृत्ति हो जायगी; इस कारण मैं उन लोगों का विरोध करने को पूर्ण रूप से तैयार हूँ जिनके विचारों के कारण मेरे आनन्दमय जीवन में बाधा पड़ने की सम्भावना है; मेरा स्वार्थ ही मुझे विवश करता है कि मैं इस सम्बन्ध में दृढ़ता से काम लूँ। मुझे अत्यन्त हर्ष है कि आप मेरी पूरी सहायता करनेको तैयार हैं।"

अ०—"तो फिर पक्का रहा।"

कम०—"हाँ, पक्का रहा।"

अ०—"सोलहो आने ? तनिक भी सन्देह तो नहीं हैं ?"

कम०—"लेशमात्र नहीं, मैंने अच्छी तरह सोच लिया है।"

अजीत को कमलशङ्कर के इस उत्तर से बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने यह कभी नहीं सोचा था कि कमलाशङ्कर इतना साहस दिखा सकेंगे। सन्तोष प्रकट करते हुए उसने कहा—"कमल बाबू, मेरा आपसे गहरा मतभेद रहता है। मुझे अँगरेजी भाषा अँगरेजी पोशाक, अँगरेजी शासन से चिढ़ है; मैनचेस्टर और लङ्काशायर के जिन पूँजीपतियों ने हमारे देशवासियों को निर्धन कर डाला है उन्हीं की प्रभुता बढ़ाने में सहायता देने वाली इन बातों का मैं घोर विरोधी हूं, और इन्हीं के आप हिमायती हैं, उपासक हैं। तथापि, वाद-विवाद में अधिक से अधिक उत्तेजित होने पर भी मैं यह नहीं भूला हूं कि आप जैसा सोचते हैं वैसा करते भी हैं। हां, एक बात का आप को ध्यान रखना होगा, वह यह कि मैं पं० सदाशिव को अपना राजनीति-गुरु मानता हूं; उनके प्रति मेरे हृदय में बड़ी भक्ति है; इसमें सन्देह नहीं कि वे जेल जाने के पहले लड़की के विवाह के लिए बहुत चिन्तित थे।"

इतना ही कह कर अजीत बाबू फिर रुक गये। उसने बात पलट दी, और कहा—"खैर कुछ हर्ज नहीं, सब ठीक है।"

कमलाशङ्कर का मतलब सिद्ध हो गया; अजीत जैसे प्रचण्ड व्यक्ति के सहायक होने पर प्रतिभा के मिलने में उसे सन्देह नहीं रहा। उसने कलाई-घड़ी में समय देख कर कहा—"अजीत बाबू, अब आज्ञा हो तो चलूं, आठ से ऊपर हो गये; मां भोजन बनाए बैठी होंगी। राधिकाकान्त के सम्बन्ध में कुछ बातें करता हुए अजीत बाबू कमलाशङ्कर के साथ कुछ दूर तक उसे पहुँचाने के लिए भी चला गया।"

कमलाशंकर को विदा करके जब अजीत अपने कमरे में आये, तब फिर उन्हें पत्र लिख डालने की इच्छा हुई। लेकिन गरमी इतनी अधिक थी कि वहां बैठना प्रायः असम्भव हो रहा था। इसलिए वह कलम, दावात लेकर ऊपर चला गया। वहां उन्होंने निम्नलिखित पत्र लिखाः—

प्रिय मिस घोष;

तुम्हारा प्रिय पत्र मिला। तुम्हारे प्रेम का परिचय पाकर संतोष हुआ। किन्तु उस प्रेम का जो मूल्य तुमने माँगा है वह बहुत अधिक जान पड़ता है, इतना जितना दे सकना मेरी शक्ति के बाहर है। मेरी सम्मति तो यह है कि मैं तुमसे प्रेम करने के लिए पूरा पूरा स्वतन्त्र हूं। इसमें संसार की कोई शक्ति बाधा नहीं डाल सकती; परन्तु मेरे लिए यह उचित नहीं है कि अपने इस प्रेम के बदले में तुमसे ऐसा मूल्य माँगूं जो तुम दे न सको। प्रेम त्यागमय होता है और यदि तुम्हें वास्तव में मुझसे प्रेम है तो तुम्हें मेरे लिए सब कुछ त्याग देने का अधिकार है। क्या सार्वजनिक जीवन में तुम मेरा सहयोग करने के लिए तैयार हो? यदि हाँ, तो, यह सहयोग ही तुम्हारे प्यार की कसौटी है और यदि इस पर अपने को कस

कर तुम अपने को सफल प्रमाणित कर दो तो वास्तव में तुम्हारा अधिकार पद्मा से अधिक हो जायगा।

तुम्हारा—
अजीत

यह पत्र लिखते लिखते उन्हें एकाएक एक बहुत आवश्यक कार्य का स्मरण आ गया और पत्र को लिफाफे में डाल कर ट्रङ्क में रख देने के बाद उहोंने तुरन्त ही वहां को प्रस्थान कर दिया। उनके पैरों ही में इस समय तेज चाल नहीं थी, दिमाग़ में भी एक तूफ़ान मच रहा था। प्रतिभा और कमलाशंकर के विवाह को सफल बना कर समाज में जो एक नवीन आदर्श उपस्थित कर सकने की सम्भावना अब उन्हें स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रही थी, यह तूफ़ान उसी की उपज था।

[१४]

९ बजे के लगभग बाबूसाहब घूम कर घर वापस आये। शौच से निवृत्त होने पर उन्होंने स्नान किया और नित्य की भाँति रामायण का पाठ करने के निमित्त जंजाली से पोथी मँगवाई। पोथी खोलते ही उन्हें एक बहुत सुन्दर कापी दिखायी दी, जिस पर एक रंगीन चित्र था; इसमें अरुणोदय की दिव्य विभूति को पाकर परम प्रफुल्ल कमल पुष्प पर एक भौंरा गुञ्जार करता हुआ दिखलाया गया था। इस आवरण-पृष्ठ को उलट देने पर बहुत सुन्दर अक्षरों में लिखा हुआ यह पत्र मिला—

आजमगढ़
जन्माष्टमी, सन १८९६

प्रिय प्रतिभा

तुम्हारा प्रेम-पूर्ण पत्र मिला। तुम्हारे सरस चापल्य और

व्यङ्ग-पूर्ण हास्यों का रसास्वादन करने की शक्ति तुम्हारी भाभी में नहीं है। कुछ दिन बाहर रहने के बाद लोग आनन्द-प्राप्ति की कामना से घर जाते हैं और मैं अभागा डरता हुआ घर में प्रवेश करता हूं ; मैं तो पहले से ही जानता रहता हूं कि चिन्ता और उद्विग्नता अत्यन्त विकराल स्वरूप में मेरे सामने आयेंगी, और इसी कारण मैं प्राय: प्रयाग को छोड़ कर यहां आना नहीं चाहता । परन्तु, क्या करूं, रोगिणी की सेवा-सुश्रूषा में रहते रहते मां भी तो ऊब जाती हैं। उनका पत्र जाने पर तो आना ही पड़ता है। ईश्वर न करे, किसी को ऐसी रोगिणी स्त्री मिले; मेरे ऐसा अभागा कोई न हो।

आशा है, तीन चार दिनों में मैं फिर वहां पहुँच जाऊँगा। कालेज का छात्र-जीवन और तुम्हारा साथ—ये दोनों मेरे लिए इतने आनन्दप्रद हैं कि इनके आगे मैं स्वर्ग की भी कामना नहीं करता।

प्यारी प्रतिभा तुम्हारी सरस कविता ने तो मुझे मुग्ध कर दिया है। सोचता हूं' जिस हृदय से इतने मिठास-भरे भाव कढ़े हैं वह स्वयं कितना माधुर्य्य-मय होगा! तुम्हारा शब्दों का चुनाव तो इतना बढ़िया होता है कि तुम्हारी लेखनी को चूम लेने के लिए चित्त विकल हो उठता है। मुझे पूर्ण आशा है कि कुछ ही काल में तुम्हारे सरस काव्य का सौरभ दिगन्त में व्याप्त होकर हिन्दी भाषा का गौरव बढ़ायेगा।

मेरे लौटने तक के लिए कहीं हारमोनियम पर अभ्यास करना टाल मत देना।

हां, तुम्हें एक उलहना देना है। मैंने तुम्हें जो डूबने से बचाया सो उसके लिए तुम इतनी आभारी क्यों हो रही हो?

सच मानो प्रतिभा ! मैं तुम्हें हृदय से प्यार करता हूं, और यदि तुम डूबतीं तो तुम्हारे साथ ही वरुण देव के मन्दिर में मेरी भी समाधि लग जाती। यदि तुम्हारे शब्दों में 'अपने प्राणों को संकट में डाल कर, मैंने तुम्हारी जीवन-रक्षा की' तो मैं तुम से यह पूछता हूं कि क्या अपनी प्राणप्रिय वस्तु के लिए प्राण-त्याग करने को तैयार होना सर्वथा स्वाभाविक बात नहीं है ? आशा है, ऐसी बात लिख कर तुम मुझे दुखी नहीं करोगी।

पत्र पाते ही अपना समाचार लिखना।

तुम्हारा,
कमलाशंकर

बाबूसाहब को सन्देह हुआ। वे कमलाशंकर और प्रतिभा के भावों को और भी जानने के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हो उठे। रामायण की पोथी खुली पड़ी थी, उसे बन्द करके उन्होंने अलग रख दिया और आगे का पत्र पढ़ना शुरू किया।

कटरा, प्रयाग
२५ सितम्बर, १८९६

प्रिय प्रतिभा;

तुम्हारी इच्छा है कि मैं दशहरे की छुट्टियों में आजमगढ़ अवश्य जाऊं। मैं तुमसे प्रायः नित्य ही मिलता हूं। तुम मुँह से नहीं कह सकीं तो पत्र ही लिखने बैठ गईं। मेरे घर जाने के लिए तुमने जो कारण बताया है उसी से, सच पूछो तो, मेरा वहां जाना रुक रहा है। तुम्हीं सोचो, कहीं कुम्हलाये हुए फूलों के पास जाकर भौंरा व्यथ सहानुभूति प्रकट करता है ? वह तो सरस सौन्दर्य्य और मधुर प्रेम का भूखा है। मैं घर की चिन्ताओं और झंझटों से दूर भागता हूं ; मैं तो तुम्हार

कविता, तुम्हारे गाने, और रूप- लावण्य का पुजारी हूं। प्रतिभा! सच कहना, तुम्हारी मृदुल मूर्त्ति के दर्शन से, तुम्हारे सुगुण-सौरभ के प्रसार से मेरे हृदय में जो नित-नूतन शक्ति-मय प्रेम का सञ्चार हो रहा है वह तुम्हें खलता तो नहीं है? मुझे तो विश्वास है कि नहीं खलता है, परन्तु मेरे आजमगढ़ जाने के लिए तुम जो इतना आग्रह कर रही हो सो उसका अर्थ मैं क्या समझूं? क्या तुम्हें यह प्रिय नहीं है कि छुट्टी के दिन में अधिक अवकाश और निश्चिन्तता के साथ हम तुम काव्य और संगीत आदि का रस-पान करें?

तुम्हारा प्रेम-भिखारी
कमलाशंकर

बाबूसाहब का सन्देह एक स्थिर मत का रूप धारण करने लगा। वे एकाग्र-चित्त होकर दूसरी चिट्ठी पढ़ने लगे—

कटरा,
२० दिसम्बर १८६६

प्रिय प्रतिभा

तुम्हारा लम्बा पत्र मुझे डाक-द्वारा मिला। इस पत्र में तुम्हारी सरलता और निर्मलता कूट कूट कर भरी है। तुमने मुझसे एक विकट प्रश्न पूछा है—विवाह के सम्बन्ध में किस आदर्श के अनुसार चलना चाहिए? जिसके साथ माता-पिता विवाह कर दें उसी को संतोष-पूर्वक 'स्वीकार करना उचित है, अथवा जिससे प्रेम हो उसे पति-रूप में वरण करना ठीक है? और, जिससे प्रेम हो वह अपनी जाति का न हो तो फिर क्या किया जाय?

मैं सोचता हूं, तुम्हारे इस प्रश्न का क्या उत्तर दूँ। लेकिन आप-बीती ही क्यों न सुना दूं। बारह वर्ष की अवस्था में मेरा

विवाह पिता जी ने किया। उस समय लड़की ९ वर्ष की रही होगी। सातवें वर्ष में मेरा गौना आया और स्त्री जैसी मिली है उससे मेरा मन कभी मिल ही नहीं सकता। वह भैंस की तरह काली-कलूटी है और अक्षरों को भैंस बराबर समझती है। मैं अपने को बहुत उदार समझता हूं, परन्तु उसके सामने मैं भी अनुदार बनने की इच्छा करता हूं। उसे घर में रहते तीन वर्ष हो गये, और घूँघट से रहित मैंने उसे कभी देखा ही नहीं। दिन में वह मुझसे कभी भेंट कर ही नहीं सकती। यदि मेरी अवस्था कुछ अधिक होती और बधू को पसन्द करने का अधिकार मुझे मिला होता तो हम लोगों का यह बेमेल विवाह क्यों होता, क्यों उसका और मेरा भी जीवन नष्ट होता ?

तुमने जो यह पूछा है कि जिससे प्रेम हो जाय वह अपनी जाति का न हो तो क्या किया जाय, सो उसका उत्तर भी मैं देना चाहता हूँ। स्त्री और पुरुष किसी भी जाति के क्यों न हों, एक ईसाई और दूसरा हिन्दू ही क्यों न हो, उनका विवाह अवश्य ही होना चाहिए।

प्रेम के राज्य में मैं किसी प्रकार की जाति-पाँति मानने को तैयार नहीं हूं; हिन्दू समाज में यही एक बड़ी कमजोरी है; स्त्री-सौन्दर्य के लोभ में पड़ कर क्या जाने कितने लोग ईसाई हो गये। हम लोगों में भी पहले यह त्रुटि नहीं थी; महाभारत के बनाने वाले वेदव्यास एक महर्षि और निषाद-कन्या के सम्बन्ध से उत्पन्न हुए थे; अगस्त मुनि ने एक क्षत्रिय बाला से विवाह किया था; राजा ययाति ने अपने गुरु शुक्राचार्य्य की कन्या से विवाह किया था; कहने की आवश्यकता नहीं कि शुक्राचार्य्य ब्राह्मण थे। यदि तुम प्राचीन ग्रंथों

को उठा कर देखोगी तो तुम्हें यह प्रकट हुए बिना नहीं रहेगा कि हिन्दुओं की भिन्न-भिन्न जातियों में विवाह करने की प्रथा जारी थी; ऐसी दशा में मैं तो यही कहूँगा कि हिन्दुओं की वर्तमान संकीर्णता का अन्त शीघ्र ही हो जाना चाहिए, और हम जैसे युवकों और युवतियों को साहसपूर्वक आदर्श उपस्थित करना चाहिए।

प्रतिभा! अब तुमसे एक बात और कह देना चाहता हूँ। शीघ्र ही तुम्हारा विवाह किसी के साथ हो जायगा और संभवतः तुम परदे में रहने लगोगी। इस दशा में तुमसे अधिक स्नेह बढ़ाने से कोई लाभ नहीं है, क्योंकि फिर जब तुम किसी दूसरे की हो जाओगी तब मुझे अपार कष्ट होगा।

बड़े दिन की छुट्टियों में तुम मुझे यहां नहीं देखना चाहतीं। यदि मैं चला न जाऊँगा तो तुम न मुझसे मिलोगी, न हारमोनियम सुनाओगी, और न अपनी मधुर कविताओं का रसास्वादन कराओगी; इस धमकी से मुझे भयभीत होना ही चाहिए; लो, एक मात्र तुम्हारी आज्ञा का पालन करने के निमित्त आजमगढ़ चला जाता हूँ। इस आज्ञा-पालन के लिए मुझे कुछ इनाम भी मिलना चाहिए। पता नहीं कुछ तुम देना स्वीकार करोगी या नहीं।

यह आज्ञा देने की क्या आवश्यकता थी कि बिना मुझसे भेंट किये आजमगढ़ मत जाना। यह तो वही बात हुई कि नेकी करें और पूछ पूछ कर।

बाबू राधिकाकान्त को मास्टर न रखने का अच्छा कारण मिस घोष ने बताया। प्यारी प्रतिभा! राधिकाकान्त को बादाम ही समझो; ऊपर से उबड़ खाबड़ हैं, परन्तु हृदय के बहुत ही मधुर हैं। बेचारे ग़रीब हैं, स्कूल मास्टरी में मिलते ही कितने

रुपये हैं जो मिस घोष जैसी फैशनेबुल महिलाओं को सन्तुष्ट रखने लायक़ पोशाक़ वे पहिनें। उन्हें एक बड़े परिवार का पालन-पोषण करना पड़ता है। यदि वे स्वयं अपने ऊपर सारी आमदनी खर्च कर डालें तो अनेक सम्बन्धियों को उपवास करना पड़ जाय। यदि केवल पोशाक और रहन-सहन पर मिस घोष बहुत अधिक ध्यान न दें तो तुम उन्हें समझा देना कि इतना सच्चा, मिहनती और सुदक्ष शिक्षक थोड़े रुपयों में नहीं मिलने का।

हां, इसी प्रसङ्ग में एक बात और भी पूछ लूं। आशा है, तुम लज्जा-संकोच में न पड़ कर स्पष्ट उत्तर दोगी। तुम्हारा विवाह होने की कुछ बातचीत तो बाबू राधिकाकान्त से भी चल रही थी; एक दिन जब मैं तुम्हारे यहां आया था, इस सम्बन्ध की कुछ भनक मेरे कान में पड़ी थी। यदि हो सके तो इस पत्र का उत्तर जानकी महरिन के हाथ भेज देना।

तुम्हारा
कमलाशंकर

यह पत्र समाप्त करके बाबूसाहब ने ज्यों ही सिर उठाया त्यों ही कुछ दूर सीढ़ी पर थोड़ा घूँघट निकाले हुए पद्मा को खड़ी देखा। उन्होंने विघ्न का अनुभव करते हुए कहा—क्या है बहू ? चलो, मैं अभी भोजन करने आता हूं।

पद्मा चली गई। बाबू साहब आगे का पत्र पढ़ने लगे।

आजमगढ़
३ जनवरी, १८९७ ई०

प्यारी प्रतिभा;

अब की तो तुमने पत्रों के लिए ख़ूब तरसाया। न तुमने मेरे प्रयाग वाले पत्र का उत्तर दिया, और न भेंट होने पर कुछ विशेष बातचीत ही की। यहां से भी मैंने एक पत्र भेजा।

और उसका भी तुमने उत्तर नहीं दिया। इसका अर्थ मैं क्या समझूं? क्या तुम्हारे व्यवहार से यह स्पष्ट नहीं है कि तुम मुझसे उदासीन हो रही हो। तुम्हारी रुखाई के कारण मेरी सारी आशाओं के महल का ध्वंस होता जा रहा है।

यह नेह की बेलि लगाई जु है
तेहि सींचि भले सरसाइये जू।

इस पत्र में तुम्हें एक दुःख-समाचार भी देना है। मेरी स्त्री का देहान्त हो गया। दो तीन वर्षों तक मेरा उसका साथ रहा। मैंने उससे प्रेम तो नहीं किया, परन्तु उसकी गोद से मुझे एक परम सुन्दरी कन्या प्राप्त हुई है। अब सब से बड़ी चिन्ता इसी अबाध बालिका के जीवन की है। इस समय जान पड़ रहा है कि उस काली-कलूटी स्त्री का कितना मूल्य था। मैं सदैव सोचा करता था कि यह अभागिनी किसी तरह भी मर जाती। लेकिन, आज जब वह इस संसार में नहीं है, मैं दुखी हो रहा हूं। मनुष्य को किसी के वास्तविक महत्व का पता चलना बड़ा कठिन है। मुझे विश्वास है, इस समाचार से तुम्हें भी कष्ट होगा। आज अजीत बाबू के नाम भी पत्र लिख रहा हूं।

तुम्हारा वही,
कमलशंकर

पन्ना उलट कर बाबूसाहब फिर एकाग्र-चित्त होकर पढ़ने लगे:—

कटरा
१० फरवरी, १८६८ ई०

प्यारी प्रतिभा;

तुमसे भेंट हुए सात-आठ दिन हो गये। तुमने भी अम्मा

से भेंट करने के लिए आने की कृपा नहीं की। मेरे पास तो एक सबल कारण है; मेरी परीक्षा मार्च में होगी। पूरे साल भर मैंने खेल किये हैं; यदि अब परिश्रम न करूँगा तो बी. ए. में प्रथम आकर जो कीर्त्ति मैंने संचित की है वह नष्ट हो जायगी। परन्तु, तुम्हारे पास तो ऐसा कोई कारण नहीं है।

मुझे तुमसे एक बहुत बड़ी शिकायत है; अपने विवाह के सम्बन्ध में तुम बिलकुल चुप हो। दो तीन दिन हुए, अजीत बाबू घूमते हुए मेरे यहां आ गए थे; कह रहे थे कि बाबू राधिकाकान्त के साथ प्रतिभा का विवाह करना पिता जी को पसन्द नहीं है; बाबूसाहब किसी रईस के साथ उसका विवाह करना चाहते हैं।

जो हो, प्रतिभा ! यह निश्चित है कि आगामी चार पाँच महीनों के भीतर ही तुम किसी दूसरे की हो जाओगी। ऐसी स्थिति में, मुझे अपने हृदय की एक गुप्त बात को प्रकट करने के लिए क्षमा करना; तुम्हारे विवाह के पहले ही मैं तुम्हें यह बता देना चहता हूं कि मैं तुम्हारे प्रेम का प्यासा हूं; तुम्हें अपनाने के लिए मेरे उत्कंठित हृदय का प्रेम-प्रवाह समस्त मर्यादाओं का उल्लंघन करने को कटि-बद्ध है। और यह आज से नहीं, कई महीनों से। मेरे अन्धकारपूर्ण हृदय को प्रकाशित करने वाली हे सौन्दर्य्य-मूर्ति ! स्पष्ट शब्दों में मेरी अभिलाषा यह है कि हिन्दू समाज की वर्तमान प्रथाओं की उपेक्षा करके तुम्हारे साथ विवाह करूं। कृपा करके अपने हृदय के सच्चे भावों से मुझे परिचित करो। मैंने तो निश्चय कर लिया है कि विवाह करूंगा तो तुम्हारे साथ, नहीं तो बिना ब्याह के ही रहूँगा।

तुम्हारे प्रेम का भिखारी
कमलाशङ्कर

बाबूसाहब के हृदय में अपमान का भाव उदित हो गया। उनका चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। किन्तु, अभी उन्होंने पत्रों को पढ़ना बन्द नहीं किया ; आगे का पत्र देखने के लिए उन्होंने पन्ना उलट दिया :—

कटरा
१५ फरवरी १८९७

प्रिय प्रतिभा !

तुम्हारा प्राणों से भी प्रिय पत्र मिला। बहुत दिनों की प्रतीक्षा के बाद उसका आना मुझे इतना मधुरिमा-मय प्रतीत हुआ जितना पपीहे को स्वाती का पानी भी न मालूम होता होगा। तुम्हारे मनोभावों को प्रकट करने वाली स्वीकारोक्तियों से पूर्ण होने के कारण तो यह पत्र अत्यन्त मूल्यवान् हो गया है। तुम्हें भी मुझसे उतना ही प्रेम है जितना मुझे तुमसे है, यह जान कर तो मैं आनन्द के अपार समुद्र में निमग्न हो गया हूँ; पढ़ना-लिखना तो सब हवा हो गया; जब से तुम्हारा पत्र मिला है तबसे कोर्स की किताबें बस आलमारी में ही रक्खी हैं—उन्हें छूने को जी नहीं चाहता।

प्रतिभा ! मेरा यह पक्का विश्वास है कि हिन्दू समाज में जाति-पाँति का ढकोसला बिलकुल अस्वाभाविक है, और जो काम प्रकृति के नियमों के विरुद्ध है उसे आँख मूँद कर करने वालों से प्रकृति स्वयं बदला लेगी। मैं तो इतिहास का विद्यार्थी हूँ; ऊँच-नीच के खयाल ने संसार में जहाँ कहीं बल पकड़ा है वहीं कलह और उपद्रव हुए हैं। मैं स्वयं श्रेष्ठ कनौजिया ब्राह्मण कुल का हूँ, परन्तु केवल अपनी जातीय मान-रक्षा के लिए मैं सत्य का गला नहीं घोंट सकता और इतना पढ़ने-लिखने के बाद और लोगों की तरह लकीर का फकीर नहीं

बना रह सकता। मैं यह मानता हूं कि हमारे विवाह के मार्ग में अनेक कठिनाइयां हैं; परन्तु तुम्हारी तरह मैं उसे सर्वथा असम्भव नहीं मानता। यह सच है कि बाबूसाहब ऐसे विवाह की कल्पना भी नहीं कर सकते। परन्तु, मुझे विश्वास है कि अजीत बाबू हमारा पक्ष लिए बिना नहीं रह सकते। जो हो, हमें कठिनाइयों से घबराना न चाहिए।

मिस घोष से कल भेंट हुई थी। वे शीघ्र ही राधिका बाबू से पढ़ना शुरू कर देंगी। देखो, एक बात मैं तुम्हें अभी से बताये देता हूं। राधिका बाबू गणितज्ञ होने के साथ साथ वेदान्ती भी हैं, कहीं ऐसा न हो कि आगे चलकर उनकी धार्मिक सहृदयता से प्रभावित होकर मिस घोष उन पर लट्टू हो जायं। मुझे तो आशा है कि जैसे वे तुम्हें चिढ़ाती हैं वैसे ही तुम्हें भी उनको थोड़े ही दिनों के बाद चिढ़ाने का अवसर मिलेगा। राधिका बाबू से भेंट करके उन्हें बधाई देना है।

तुम्हारा स्नेही
कमलाशङ्कर

इन पत्रों को समाप्त करने पर बाबूसाहब का चेहरा लाल हो गया। क्षोभ, अपमान, क्रोध, विवशता आदि भावों से उनका हृदय भर गया। कापी को अलग रख कर वे तरह तरह के विचारों में लीन हो गये। इसी समय जंजाली ने आकर कहा—'सरकार, भोजन तैयार है।'

बाबूसाहब ने उत्तर दिया—'जाओ महराजिन से कह दो, और सब को भोजन दे। आज मेरी इच्छा भोजन करने की नहीं है।'

जंजाली चला गया। थोड़ी देर में लक्ष्मी ने आकर पूछा—'क्यों, खाओगे क्यों नहीं?'

बाबू साहब—तबियत अच्छी नहीं है ।'

ल०—'आखिर, इतनी ही देर में क्या हो गया ? अभी तो बहू आई थी, उससे तुमने कहा था कि चलो अभी आता हूं ।'

बा०—'अधिक बहम करने से कोई लाभ नहीं है। इस समय मैं कुछ नहीं बतलाऊँगा ।'

कभी की न हार मानने वाली लक्ष्मी कुछ दाल में काला समझ कर नीचे चली गई ।

बाबू साहब विचार में मग्न हो गये। उन्होंने अपने आप से पूछा—" क्या यह सब सच है ? क्या प्रतिभा ने भी अपने कुल के अयोग्य काम किया ? माता-पिता का आज्ञा-पालन करने वाली यह सरल बालिका कैसे अपने पथ से विचलित हो गयी ? इतनी धार्मिक प्रवृत्तियों वाली लड़की किसी साधारण कारण से तो नहीं बहक सकती। यह सब किसी दूसरे की कार्रवाई तो नहीं है ? घर में पद्मा को छोड़कर और कोई तो ऐसा नहीं है जो प्रतिभा से रुष्ट रह सके। परन्तु, उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह इतने सुन्दर अक्षरों में, ऐसी परिमार्जित भाषा में ऐसे जाली पत्र लिखकर मुझे प्रतिभा से अप्रसन्न बनाने की चेष्टा करे। अक्षर भाषा और शैली आदि से तो यह बात स्पष्ट है कि लेख कमलाशङ्कर का है। हां इस षडयन्त्र में बच्चा का क्या भाग है ? अभी नरसों तो उसने इसी विवाह की चर्चा छेड़कर मुझे चकित कर दिया था। जान पड़ता है, भीतर ही भीतर उसने इन दोनों को प्रोत्साहित किया है। मैं समझ गया। अजीत जैसे बिगड़े-दिमाग भाई की छोटी बहन उसके विचारों से कब तक न प्रभावित होगी ? और फिर वह मिस घोष की मित्र ठहरी। मिस घोष ने भी अवश्य ही आग में घी का काम किया होगा। बच्चा को तो मैं घर से

नहीं निकाल सकता था, परन्तु मिस घोष के साथ से तो प्रतिभा को बचा सकता था। मैंने सख्त गलती की जो ईसाई परिवार के साथ प्रेम का नाता निभाया।

थोड़ी देर तक इन्हीं विचारों में डूबे रहने के बाद बाबू-साहब पत्रावली लिए हुए नीचे उतरे। उनकी बैठक के सामने वाले बरामदे में उनका बिस्तरा लगा था, पंखा-कुली बैठा था, एक स्टूल पर कांच के एक गिलास-सहित सुराही रक्खी थी। पत्रावली को आलमारी में बन्द किया, फिर थोड़ा पानी पीने के बाद पतले रेशम की एक चादर ओढ़ कर लेट गये। नौकर सिरहाने की ओर खड़ा होकर पंखा हाँकने लगा।

जंजाली चुपके से आकर पैर दबाने लगा। वह एक ही उस्ताद था; इसी बहाने भयंकर गरमी की व्याकुलता मिटाने के लिए हवा खाने आया था।

[१५]

पत्रों की जिस पुस्तकाकार फाइल की चर्चा पहले की गयी है वह बाबूसाहब की रामायण की पोथी में कैसे आयी, पाठकों को यह जानने की उत्कण्ठा होगी। बात यह है कि उसे पद्मा की अन्वेषक दृष्टि ने किसी समय, जब प्रतिभा अपने कमरे की किवाड़ों को बन्द कर, किन्तु खिड़की को खुली ही छोड़ कर, भावुकता में अतिशय तल्लीन बनी हुई उसे देख रही थी, दृष्टिगत कर लिया था। उसके बाद वह सदा इस टोह में रहती थी कि किसी तरह वह फाइल हाथ लगे। आज संयोग से प्रतिभा ने अपनी चाभियों का गुच्छा कमरे के भीतर ही छोड़ दिया था। बाग की ओर उसके जाने के थोड़ी ही देर बाद पद्मा बिजली की सी तेजी और बिल्ली की सी आहिस्तगी के बीच में समझौता करती हुई आयी और

चट पट सन्दूक खोलकर प्रतिभा की प्राणों से भी प्यारी फाइल को निकाल ले गयी।

यह कार्य्य सिद्ध हो जाने के बाद पद्मा सोचने लगी थी कि अब क्या करना चाहिए। सास को तो इस प्रतिभा-कमलाशंकर प्रेम-काण्ड की सूचना देना वह व्यर्थ समझती थी; क्योंकि उनका मातृ-स्वभाव अपनी संतानों के ऐब की ओर आँख ही नहीं डालने देता था। रहे बाबूसाहब, सो उन्हीं के सामने किसी न किसी प्रकार यह फाइल चली जानी चाहिए और शीघ्र से शीघ्र। यह तो निश्चित था ही कि घूमकर आने के बाद बाबू-साहब रामयण का पाठ किये बिना भोजन नहीं कर सकते। अतएव पद्मा ने यही स्थिर किया था कि उनकी रामायण की पोथी में ही यह फाइल रख दूं, जिससे रामायण पढ़ने के पहले ही वे अपनी दुलारी बेटी की करतूत देख लें। इस निश्चय को पद्मा ने शीघ्र ही कार्य रूप में परिणत कर दिया था।

पद्मा अजीत बाबू की आदतों से भी बहुत तंग आ गयी थी। सारे शहर के झंझटों को अपने सिर पर लेकर अजीत बाबू का दिन रात घर से गायब रहना उसे उतना ही नापसन्द था जितना प्रतिभा और कमलाशंकर का प्रेम-सम्बन्ध उसे खलने लगा था, जिसका कारण कुछ तो ईर्ष्या-भाव था और कुछ थी भविष्य में उसके भयंकर स्वरूप ग्रहण करके गृह में और विशेष कर उसके जीवन में अशान्ति उत्पन्न करने की आशंका। अजीत बाबू कमलाशंकर के साथ ही प्रतिभा का विवाह करने पर तुले हुए थे, इसकी चर्चा बाबूसाहब के कान तक तो अजीत ही के द्वारा पहुँच चुकी थी। किन्तु पद्मा अब यह चाहती थी कि बाबूसाहब प्रतिभा और कमलाशंकर के प्रेम-काण्ड के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त करलें और शीघ्र से शीघ्र उसका

अन्त करने की चेष्टा करें; वे यह भी देखलें कि कमलाशंकर के साथ प्रतिभा का विवाह करने के लिए अजीत बाबू जो सन्नद्ध हुए हैं उसमें प्रतिभा का अपराध ही अधिक है। पद्मा को आशा थी कि इसके फलस्वरूप बाबूसाहब का क्रोध अजीत बाबू के ऊपर से हट कर प्रतिभा के ऊपर आ पड़ेगा और डाट फटकार से प्रतिभा सहज ही ठीक रास्ते पर आ जायगी, जिससे अन्ततोगत्वा अजीत बाबू को घर में पिता से झगड़ने की जरूरत ही न रह जायगी। यह व्यवस्था कर चुकने के अनन्तर पतिदेव पर भी शासन और उनके सार्वजनिक जीवन के अस्थिर स्वरूप का, विशेष कर उस स्वरूप का जो बाबूसाहब को बहुत नापसन्द था, अन्त करने का उसने निश्चय किया था।

[१६]

जिस आवश्यक कार्य्य की याद आते ही अजीत बाबू मिस घोष वाले पत्र को तुरन्त भेजने का प्रबन्ध करने के पहले ही कहीं चले गये थे उससे अवकाश पाकर जब वह लौटे तो घर में सोता पड़ गया था। पद्मा ने महराजिन को भी रसोई से चली जाने की आज्ञा दे दी थी।

अजीत ने कई आवाजें दीं, फिर भी किसी ने उत्तर नहीं दिया। एक एक करके सभी के ऊपर वह खीझ उठे, कभी माँ पर दाँत पीस कर रह जाता और कभी प्रतिभा की लापरवाही पर झल्ला उठते। किन्तु सब से अधिक क्रोध उन्हें पद्मा पर था। उन्होंने अपने आप से कहा—"देखो न, इस स्त्री की यह दशा है! इसे मेरे साथ तनिक सी भी सहानुभूति नहीं, और मैं केवल इसलिए मिस घोष को भुलाता रहा हू कि विवाहिता पत्नी के अधिकारों को आघात न लगे। इसी

को मूर्खता कहते हैं। अगर चाहता ही तो क्या बाबूजी मुझे मिस घोष से अलग कर सकते थे ? नहीं, कदापि नहीं। केवल इस अभागिनी नारी का जीवन नष्ट न होने देने के खयाल से मैंने मिस घोष को निरुत्साह किया और इसकी यह लीला है !"

बाबूसाहब के भोजन न करने से लक्ष्मी देवी भी उपासी ही रह गयीं। रही प्रतिभा, सो तो अपने कमरे में जानकी महरिन द्वारा सचेत की जाने पर कमरे के किवाँड़ बन्द करके शाम से ही पड़ रही थी। लक्ष्मी देवी के द्वारा एकाध बार भोजन के सम्बन्ध में पूछताछ होने पर उसने यही कह दिया था कि मेरी तबियत अच्छी नहीं है। ऐसी दशा में परिस्थिति स्पष्ट थी; पद्मा को छोड़ कर और कोई अजीत का आज स्वागत करने वाला नहीं था।

पद्मा सोती नहीं थी; किंतु उसका सब दिन का क्रोध आज जैसे उसके मौनावलम्बन के रूप में सिमिट कर बैठ गया था। उसे इस बात की बिलकुल ही चिंता नहीं रह गयी थी कि अजीत बाबू कितने नाराज होंगे। किंतु उसने यह निश्चय नहीं किया था कि वे भूखे ही सो जायं। उसका केवल यही उद्देश्य था कि उनके शब्दों से अनुताप का भाव प्रकट हो, वे समझ जायँ कि उन पर स्त्री और पुत्री का भी कोई हक है; यदि सारा दिन चमारों, पासियों, और किसानों की भलाई में बिताया जाता है तो कम से कम घण्टे दो घण्टे लेने का अधिकार शान्ता को भी है, मन ही मन अपनी इस विचार-श्रेणी द्वारा इस कार्य के औचित्य को बारम्बार सिद्ध करने की चेष्टा करती हुई वह उचित अवसर पाकर अपने कमरे से निकलने का भी विचार कर रही थी। किंत न अजीत ने नम्रता

दिखायी और न पद्मा को वह अवसर मिला। जब अजीत क्रुद्ध होकर अपने कमरे की ओर चला गया तब तो पद्मा को गहरी निराशा हुई। किन्तु, अजीत को समझाने-बुझाने की कोई चेष्टा न करके वह शान्ता को लेकर छत पर सोने चली गयी।

अजीत ने पद्मा को दण्ड देने के उद्देश्य से मिस घोष के नाम एक दूसरा प्रेम-पत्र लिखना शुरू किया:—

प्रिय मिस घोष,

तुम्हारा अत्यन्त प्रिय पत्र मिला। हम और तुम दोनों एक दूसरे के प्रेम के प्यासे हैं और आश्चर्य है कि हममें से प्रत्येक को दूसरे की आवश्यकता होने पर भी अब तक हम लोग जीवन के वास्तविक आनन्द की उपेक्षा करते रहे हैं। आज मैं सोचता हूं कि तुम्हें सहधर्मिणी बनाने का पूरा उद्योग न कर के मैंने बहुत बड़ी भूल की है। जिन तुच्छ बन्धनों को मैंने उचित से अधिक महत्व प्रदान करके तुम्हें प्रेम-पथ की ओर कभी प्रोत्साहन नहीं दिया वे आज मेरी दृष्टि में कितने निस्सार और निर्बल प्रतीत हो रहे हैं, यह देख कर मैं स्वयं ही अत्यन्त चकित हूं। आह! कितनी सुखमयी घड़ियों की मनोहर कल्पना को मैंने झूठी कठिनाइयों के निष्ठुर आघात से आहत कर दिया है! कितने ही बार चित्त को उस कल्पित आनन्द-रस का आस्वादन भी नहीं करने दिया है जो तुम्हारे जैसी दिव्य गुण-संपन्न नारी को सहचरी के रूप में पाने पर होता। किन्तु अब उन सुखों के लिए रोने बैठना व्यर्थ है जो किसी विशेष परि-स्थिति में भूतकाल में मिल सकते थे, उससे अधिक अच्छा काम यह होगा कि हम लोग भविष्य में उन्हीं अभीष्ट आनन्दों को प्राप्त करने का प्रयत्न शुरू कर दें।

मिस घोष! यह तो तुम जानती ही हो कि देश-सेवा मेरे

जीवन का उद्देश्य है। इसी उद्देश्य-सिद्धि के लिए मैंने अपने बड़े बड़े सुखों को लात मार दिया है; इसी के लिए मैंने अपने पिता की अप्रसन्नता मोल ली है; इसी के लिए मिस्टर मार्क को भी प्रायः अपना शत्रु बना डाला है; एक धनवान और प्रतिष्ठित घराने का युवक होने के कारण मुझे जो आराम सहज ही प्राप्त थे उनसे अपने को तो वंचित हो किया है, पद्मा को भी इस उत्सर्ग का बलपूर्वक भागी बनाया है। इसी से तुम समझ सकती हो कि मेरी प्रेम-पात्री होकर तुम्हें भी कष्ट तो सहने ही पड़ेंगे। क्या तुम इस त्याग के लिए तैयार हो? मुझे पूर्ण आशा है कि तुम मेरे जीवन के प्रवाह में अपनी जीवन-धारा को सम्मिलित करके उस अपूर्व तरंगित सौन्दर्य की सृष्टि करोगी जिसमें विलीन हो जाने के लिए मेरा हृदय न जाने कब से उत्कण्ठित और व्याकुल हो रहा है। प्यारी मिस घोष! मेरे हृदय की अधिष्ठात्री मिस घोष! तुम्हीं वह नारी हो जिसके शीतलतामय हृदय की विश्रामदायिनी छाया में मेरा संतप्त मानस-यात्री शान्ति-लाभ करना चाहता है। ईश्वर ने तुम्हें जैसा ही अनूठा शारीरिक सौन्दर्य दिया है वैसा ही मधुर और विलक्षण सहानुभूतिपूर्ण कोमल कलेजा भी दिया है। ऐसी दशा में मैं क्यों न आशा करूं कि तुम्हारा मेरे प्रति सरल, निर्मल अनुराग मेरी इस कामना की शान्ति कर देगा।

मेरे हृदय की दुलारी मिस घोष! तुमने अपनी करुण जीवन-कथा का जैसा वर्णन किया है वह पाषण को भी द्रवित कर देने की शक्ति रखता है, और मैं तो मनुष्य ही हूं। किन्तु मान लिया, हम और तुम प्रेम-सूत्र से सम्बद्ध होकर अपने अपने कष्टों को दूर कर लें तो क्या उसके बाद हमारा कुछ कर्तव्य न रहेगा? हिन्दू समाज में आलोचना और निंदा की परवा न

कर के दृढ़ भाव से अपने पथ पर चलने वाले मेरे जैसे युवक कितने हैं ? मान लिया, मैंने तुम्हारी समस्या को हल कर दिया, किन्तु हिन्दू समाज के जिस मानसिक रोग के कारण तुम जैसी प्रतिभाशालिनी स्त्री को भी उसमें लौट आना असम्भव हो रहा है उस रोग का सदा के लिए उन्मूलन करके आगे की पीढ़ियों के लिए जीवन में अधिक सरलताएं, अधिक सुविधाएं छोड़ जाना क्या एक ऐसा आदर्श नहीं है जिसके लिए हम लोग सब तरह के कष्ट स्वीकार करें, सब तरह की कठिनाइयां झेलें और अन्त में उसे सिद्ध करके ही शान्त हों। सोच और समझ लो, यदि तुम मुझसे प्रेम करती हो तो तुम्हें इस ओर ढलना ही पड़ेगा, ऐसा नहीं हो सकता कि मैं उत्तर जाऊं और तुम दक्खिन जाओ।

तुम्हारा

अजीत

यह पत्र लिखने के बाद अजीत बाबू सो गये।

[१७]

जिस समय अजीत बाबू मिस घोष के नाम उक्त पत्र लिख रहे थे लगभग उसी समय बशीर अहमद की स्त्री अजीत के नाम प्रेम-पत्र लिख रही थीं; अन्तर केवल इतना ही था कि अजीत बाबू मानसिक आघात के कारण मिस घोष को आत्म-समर्पण कर रहे थे और बशीर अहमद की स्त्री मार्क द्वारा विवश की जा कर ऐसा कर रही थी।

भगवान ने अधम पेट की रचना करके मनुष्य को मनुष्य का कैदी और गुलाम बना डाला है। और आश्चर्य तो यह है कि न्याय की हत्या करने वाले ऐसे ही ईश्वर को महापुरुषों ने दीनबन्धु कह कर सम्बोधित किया है! सतीत्व सभी स्त्रियों का एक सा बन्दनीय और रक्षणीय है, किन्तु, क्या कारण है

जो एक व्यक्ति अपनी स्त्री पर अत्याचार के प्रमाण पाकर भी अत्याचारी के सामने घुटने टेक देता है। मार्क ने मेरी स्त्री के साथ अनुचित व्यवहार करके महान अनाचार किया है—बशीर को यह बात भली भांति ज्ञात थी और फिर भी धनवानों के कौशल-जाल में फँस कर उसे कारखाने के काम से स्त्री को अकेली छोड़ कर, पापी पेट के लिए, शहर के बाहर जाना पड़ा। बेचारे ने समझा था कि मार्क अब दगा न करेगा। परन्तु वही मार्क रात्रि के अन्धकार में यम दूत की नाईं चार-पाँच अन्य पुरुषों के साथ उसकी स्त्री के एकान्त को भंग करने के लिए पहुँच गया और अपनी लालसा को पूर्ण करके उसने अपने काले मुख की कालिमा को और भी बढ़ा लिया। बेबसी और बेकसी की भी कोई हद है! एक ओर एक नर-पिशाच है, जिसमें मनुष्यता छू तक नहीं गयी, भलमनसाहत का जिसकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं! और दूसरी ओर है एक असहाय नारी जिसे पिस्तौल की गोलियों से डरा कर वह एक ऐसे पुरुष के नाम प्रेम-पत्र लिखने पर वाध्य कर रहा है जिसमें और ऐब भले ही हों, किन्तु जिसने पर नारी पर कुदृष्टि तक डालने का कभी दुस्साहस नहीं किया। बशीर अहमद की स्त्री का कलेजा काँप रहा था, सिर चक्कर खा रहा था, आँखों के सामने जितना अँधेरा पहले ही से था उसका चौगुना अब इकट्ठा हो रहा था। थरथराते हुए हाथों से उसने निम्नलिखित पत्र लिखा:—

"प्राणपति अजीत बाबू;

आप का प्रिय पत्र मिला। आप ने जो लिखा कि मार्क साहब को हम लोगों के सम्बन्ध का पता चल गया है और अब अधिक आने-जाने से बदनामी बहुत जल्द फैल जायगी, यह तो

बिलकुल सच है। किन्तु मैं क्या करूं, मेरा जी तो आप को देखे बिना मानता ही नहीं। आप पुरुष हैं, आप कठोरता धारण कर सकते हैं, किन्तु प्रेम-पथ पर पांव रख देने के अनन्तर नारी बिलकुल असहाय हो जाती है; जी उसके काबू में नहीं रह जाता। इस लिए कृपा कर के ऐसा न कीजिएगा। प्रेम की राह में कांटे ही कांटे तो होते हैं, वहां कब प्रेमियों को फूल बिछे हुए मिले? यदि इन क्षुद्र कठिनाइयों से घबरा कर आप मेरा साथ छोड़ देंगे तो आत्म-हत्या के सिवा मेरे लिए दूसरा कोई उपाय नहीं। किन्तु यदि आप निरमोही होकर मुझे आत्म-हत्या ही करने पर विवश करेंगे तो मैं आप का नाम लेकर प्रसन्नतापूर्वक इस संसार को—जहां पुरुष पहले स्त्रियों को प्रेम-जाल में फँसाते हैं और फिर बाद को बीच धार में छोड़ देते हैं—त्याग दूँगी। आशा है, आप मुझे ऐसा करने का अवसर नहीं देंगे।

आप की अनुचरी
रजिया

यह पत्र लिखा लेने के बाद मार्क अपने साथियों के साथ आगे कुछ भी गड़बड़ करने पर प्राण ले लेने की धमकी देता हुआ चला गया। रजिया बेदम सी बिस्तरे पर गिर कर फूट फूट कर रोने लगी।

[१८]

दूसरे दिन सात बजे, जब अजीत सिंह बँगले के पिछवाड़े बाग में एक कुर्सी पर बैठे हुए दातौन कर रहे थे, बशीर अहमद आया। वह उसके सामने ही चौतरे पर बैठ गया। अजीत ने प्रेमपूर्वक पूछा—"बशीर! इतने सबेरे कैसे चले? अब मार्क का कैसा व्यवहार है? मजदूरों के संगठन से तो वह बहुत घबराया है।"

बशीर अहमद की आँखों में आँसू भर आये। उसने रुआँसे होकर कहा—"भइया, मुझसे कुछ न पूछो, मैं तो किसी काम का नहीं रह गया।"

दाँतों से अलग करके दातौन को हाथ में लिये अजीत सिंह ने घबरा कर पूछा—"क्यों, क्या बात है बशीर ? कुशल तो है ?"

ब०—"भइया जी, मेरा तो सर्वनाश हो गया। मेरे घर का उजाला, मेरी गृहस्थी को सँभालने वाली अब इस दुनिया में नहीं रही। घोष साहब ने हम लोगों को परसों बुलाकर समझाया-बुझाया और मजदूरों के मुखियों को वेतन का कुछ लालच दिखा कर फोड़ दिया। इसके बाद तुरन्त ही बेईमान मार्क ने मुझे कारखाने के काम से कानपुर भेज दिया। आप से भेंट करने और पूरा हाल बताने तक का अवसर उसने न दिया। मैंने भी यह समझा कि अब सब मामला शान्त हुआ। मुझे यह तनिक भी आशङ्का न थी कि उसी दिन के समाप्त होने पर वह रात आवेगी जिसमें मेरी रही-सही इज्जत नष्ट हो जायेगी। आज रात को एक बजे की गाड़ी से मैं आया। यह तो देखने से मालूम हो गया कि घर वाली की तबियत अच्छी नहीं है, फिर भी बहुत मना करने पर भी खाना बना कर उसने मुझे खिलाया और बहुत शान्तिपूर्वक सोयी, जैसे कोई भी दुख की बात न हो। वह नित्य चार बजे जग जाया करती थी। आज देर होती देख मैंने समझा शायद नींद पूरी नहीं हुई है। लेकिन जब छः बजा तब बिना जगाये मुझसे नहीं रहा गया। लेकिन कितना भी जगाया वह जगी नहीं; इस दुनिया में हो तब तो जगे; वह तो चल बसी थी।"

अ०—"चल बसी ! इतनी अचानक मौत !"

ब०—"मौत नहीं भइया ! उसने तो आप ही अपने को मार डाला।"

बशीर ने सलूके की जेब में से एक लिफाफा निकाल कर अजीत के हाथ में रख दिया और कहा—"इसी चिट्ठी में अपनी पूरी दुख कथा लिख गयी है, इसी को पढ़ लीजिए।"

यह कह कर वह रोने लगा।

अजीत सम्पूर्ण रहस्य को जानने के लिए इतना उत्कण्ठित था कि उसे पूरी चिट्ठी पढ़ डालने में अधिक देर नहीं लगी। पत्र पढ़ते पढ़ते क्रोध के मारे उसकी आँखों से आग की चिन-गारियां निकलने लगीं। उसके होंठ काँपने लगे; मुख से कोई बात न निकली।

बशीर शिर नीचा किये बैठा रहा।

थोड़ी देर में अजीत ने पूछा—"तो अब क्या करोगे बशीर ! इस नर पिशाच ने तो तुम्हें कहीं का न छोड़ा। पाँच पाँच नर-राक्षसों का बलात्कार ! हरे ! हरे !"

बशीर—'क्या करूँगा भइया ? अब घर वापिस चला जाऊँगा; वहां भाइयों की ही गुलामी करूँगा तो अल्लाह दो रोटी दे ही देगा। मेरे देहात के आदमी बम्बई और कानपुर में नौकर हैं। उन्हीं की देखादेखी मुझे शहर में आकर नौकरी करने का शौक हुआ था। अपनी इस दूसरी शादी में मुझ पर कुछ कर्ज हो गया था। उसी के कारण नौकरी करने का विचार और भी पक्का हो गया था। सो कर्ज तो ज्योंका त्यों बना है, जिसके लिए वह सब किया वह भी साथ छोड़ कर चली गई। एक मन तो यह होता है कि इस मार्क साले का सिर काट लूं।"

अ०—"नहीं, नहीं, यह सब अभी मत सोचो। पुलीस में तो अभी इत्तला न की होगी ?"

ब०—"इत्तिला देने से क्या होगा भइया ? मेरे घर की लच्छिमी मिल थोड़े ही जायगी । इतनी सुशील और मिलना मुश्किल है। या अल्लाह !"

अ०—"अरे भाई, इत्तिला न दोगे तो कौन जाने किस झंझट में फँसना पड़े। साफ़ बात अच्छी है। इसके सिवाय सरकार मार्फ़ पर मुक़द्दमा चलावेगी।"

बाबू साहब जाग चुके थे। जङ्गाली ने चिलम पर आग और तम्बाकू रख कर फर्शी का नैचा बाबू साहब के हाथ में दे दिया था और वे बिस्तर पर बैठे-बैठे हुक्का गुड़गुड़ाने लगे थे।

जङ्गाली बाहर निकला तो अजीत ने उससे पूछा-क्यों रे, बाबू सोते हैं या जागते ।

जङ्गाली से उत्तर पाने पर अजीत ने बशीर से कहा—"इस घटना की सूचना बाबू जी को भी दे दो, देखो वे क्या कहते हैं।"

अजीत ने चिट्ठी भी बशीर को दे दो।

बशीर उठा और बँगले के सामने के बरामदे में बाबू साहब के पास पहुँचा और सलाम करके जमीन पर बैठ गया।

बाबू साहब ने गुड़गुड़ाना बंद करके पूछा—"बशीर अहमद कहो क्या हाल है ? काम चला जाता है न ?"

बशीर ने कहा—"हुजूर मैं तो चौपट हो गया। कहीं का न रह गया।"

यह कहते कहते उसकी आँखें फिर भरभरा आयीं।

बाबूसाहब ने पूछा—"क्यों, खैरियत तो है ?"

बा०—"घरवाली अफीम खाकर मर गई हुजूर। ऐसी लायक घरवाली अब कहां मिलेगी।"

बाबू०—"आखिर बात क्या है ? उसे तुमने मारा-पीटा था क्या ? कोई कारण भी तो होना चाहिए। क्रोधी और कुछ जल्दबाज तो तुम जरूर ही हो।"

ब०—"सरकार, अगर मेरी मार से वह मरी होती तो उसके मरने के बाद मैं आप भी जिन्दा न रहता। हैज़ा, प्लेग, या और किसी बीमारी से मरी होती तो सन्तोष कर लेता। हुज़ूर, उसे तो हमारे मालिक के अत्याचार ने मार डाला है।

बाबू—"तुम्हारा मतलब मार्क साहब से है क्या ?"

ब०—"हां सरकार।"

बाबू—"उन्होंने क्या किया ?"

ब०—"हुज़ूर, जो किया सो इसी चिट्ठी में पढ़ लीजिए।"

यह कह कर उसने चिट्ठी बाबूसाहब के पास बिस्तर में धीरे से फेंक दी।

पूरी चिट्ठी पढ़ चुकने के बाद बाबूसाहब ने कहा—"मार्क साहब से मुझे ऐसी उम्मीद नहीं थी। क्या यह सच है ?"

ब०—"बाबूसाहब, अभी शादी का पूरा कर्ज चुकाना पड़ा ही है। मैं ऐसा जानता तो काहे को शहर में नौकरी करने आता।"

बा—"अजी शहर में नौकरी लोग करते ही हैं, ऐसी घटनाएं तो कभी कभी हो जाती हैं।" यह कह कर उन्होंने चिट्ठी को बशीर अहमद की गोद में फेंक दिया।

ब०—"तो सरकार जैसा हुकुम दें वैसा करूं, भइया जी पूछ रहे थे कि थाने में इत्तिला की या नहीं। आप मालिक हैं।"

बाबू—"सुनो बशीर, मैं झगड़ा-फसाद पसन्द नहीं करता।

अब तो तुम्हारी औरत मर ही गयी है, उसे तो तुम पा सकते ही नहीं। ऐसी दशा में मामला बढ़ाने से कोई लाभ नहीं है। बच्चा जी ने अभी दुनिया नहीं देखी है। उनकी बातें ऐसी ही होती हैं। बड़े आदमियों से रार बढ़ाना ठीक नहीं। बढ़ाओगे तो पचास ढंग से तुम्हें हैरान करेंगे, तुम्हारी जान ही के पीछे पड़ जाँयगें। जाओ, कामकाज के लिए दस-पाँच रुपयों की आवश्यकता हो तो मुझसे ले जाना। और वहां नौकरी करने की तबीयत न हो तो बतलाना, अब तो एक जगह मेरे यहां भी खाली है।"

यह कह कर बाबू साहब उठे और पाखाने चल दिये, जाते जाते भी कहते गये—"देखो झंझट मत बढ़ाना, इसमें कोई लाभ नहीं है।"

बशीर अहमद उठ कर अजीत के पास चला गया। अजीत अभी दातौन ही कर रहा था। उसने उत्कण्ठित होकर पूछा—क्यों, क्या कहा? बशीर ने उत्तर दिया—"भइया जबरदस्त का ठेंगा सिर पर। बड़े आदमियों को गरीबों के साथ दया-मया नहीं हो सकती। उनका तो कहना है—ईश्वर को ऐसा ही मंजूर था, जाओ, किसी तरह अपना दुख भूल जाने की कोशिश करो, तुम संतोष करोगे तो मार्क की इस करनी का बदला ईश्वर स्वयं उससे ले लेगा। भला, ऐसे कहीं बोध होता है भइया!

यह कह कर वह चौतरे पर उसी जगह बैठ गया। जहां पहले बैठा था।

अजीत के मुँह से निकल गया—"बड़ी कठिन बात है।"

बशीर यह न समझ सका कि इस वाक्य का सिलसिला कहां है, क्योंकि उसकी समस्या में कठिनाई का अंश कम, दुख और

परिताप की बात अधिक थी। उसने कहा—"क्यों भइया, इसमें कठिन बात क्या है ? मैं तो जानता हूं कि थाने में इत्तिला देने से क्या होगा। घोष साहब पुलिस को मिला कर अपना काम बना लेंगे, और उलटे मुझे धाँध देंगे। अँगरेजी राज में तो रुपया सच को झूठ और झूठ को सच बनाता है। यदि ऐसा ही होगा तो मैं स्वयं देख लूँगा।"

अ०—"तुम जो कह रहे हो उसे सुन कर मैं बहुत खुश हूं। बहुत सी बातें ऐसी हैं जिनमें अपराधी को अपने हाथ से दण्ड देकर ही हमें संतोष होता है; स्त्री का अपमान उन्हीं में से एक है। मेरा यह सिद्धान्त है कि छोटे-बड़े, अमीर और गरीब सभी एक बात में बराबर हैं, और वह है पुरुषत्व। सम्राट् को भी ऐसा अधिकार नहीं है कि वह प्रजा के पुरुषत्व को अपमानित करे। इसमें तो यदि कोई चूकता है तो मैं उसको संदेह की दृष्टि से देखता हूं। और, कठिनाई की जो बात मैंने तुमसे कही उसका सम्बन्ध तुमसे नहीं है, मुझसे है मैं इस चिन्ता में हूं कि पिता जी के विचित्र विचारों के साथ मेरे विचारों का मेल कैसे खायेगा। खैर। अब अधिक देर न करो, थाने में इत्तिला कर देने के बाद बातचीत करना।"

बशीर अहमद 'अच्छा' कह कर और सलाम करके ज्योंही कर्नलगञ्ज के थाने की ओर चलने को हुआ त्यों ही अजीत को एकाएक उस पत्र की याद आयी जो उन्होंने मिस घोष के पास भेजने के लिए रात को लिखा था। बशीर को दो मिनट के लिए रुक जाने को कह कर उन्होंने ट्रङ्क में से, जल्दी से, वह पत्र निकाल कर बशीर को दे दिया जो उन्होंने पहले लिखा था। बशीर चला गया।

अजीत कुछ सोचने लगा।

[१९]

शौच, स्नान, पूजा-पाठ आदि से निवृत्त होकर बाबूसाहब ने थोड़ा गरम दूध पिया और जानकी महरिन के द्वारा लक्ष्मी को अपनी बैठक में बुला भेजा। जब वे आ गयीं तो उनसे उन्होंने कहा—"कल विन्ध्याचल जाने के सम्बन्ध में क्या निश्चय हुआ।"

ल०—"एक तो तुम्हारी तबियत अच्छी नहीं है, फिर अभी थोड़ी देर हुई, बच्चा ने कह दिया कि मेरी इच्छा जाने की नहीं है। ऐसी दशा में वहां जाने का विचार तो रुक गया।"

बाबू०—"खैर, यह तो अच्छा ही हुआ। अब तुम से एक बात कहनी है।"

लक्ष्मी—"क्या ?"

बाबू०—"बात यह है कि कल्ह रात को मेरी रामायण की पोथी में एक कापी मिली जिसमें प्रतिभा के नाम लिखे हुए कमलाशङ्कर के बहुत से पत्र मिले। उन पत्रों को पढ़ने से यह स्पष्ट हो गया कि कमलाशङ्कर ने इस लड़की को अपने बश में कर लिया है, यहां तक कि उसे ब्याह करने पर भी सहमत कर लिया है। उस दिन बच्चा ने इस सम्बन्ध की जो बात छेड़ी थी, सो उसकी जड़ में यही रहस्य मालूम होता है। कमलाशङ्कर ने बड़ा धोखा दिया। मैंने तो तुमसे कह दिया था कि सयानी लड़की के साथ अब इसका हेल-मेल रहने देना ठीक नहीं, लेकिन तुमने एक न सुनी। घर के मामलों में तुमको सावधानी रखनी चाहिए। मैं एक दो बार कह देने के सिवा और क्या कर सकता हूं।"

ल०—"तुम मुझको ही दोषी बनाते हो। परन्तु मैं क्या

करूं ? इतना हेल-मेल रहने पर भी, देख लो, जो कुछ हुआ है सब पत्रों द्वारा। मैंने तो पहले ही प्रतिभा को पढ़ाने का विरोध किया था। तुम्हीं ने कहा—नहीं; मेमों से बातचीत करने भर को तो अङ्गरेजी पढ़ा ही देनी चाहिए। सो अङ्गरेजी पढ़ाने का फल ले लो। मेरे पिता कम धनवान नहीं थे, चाहते तो मेरे लिए चार छः मास्टर रख देते। परन्तु, वे अङ्गरेजी शिक्षा के विरोधी थे। खैर, अब बताओ कि क्या करना चाहिए ?"

बाबू०—"कहना यही है कि तुम आज अपनी सखी से भेंट कर आओ और सब बातें समझा कर उनसे कह दो कि कमल के ब्याह का प्रबन्ध शीघ्र ही कर डालें। इधर ब्याह के लिए तुम भी आवश्यक सामान आदि एकत्र करना शुरू कर दो। मैं प्रतिभा के विवाह का प्रबन्ध अब बहुत शीघ्र करूँगा।"

'अच्छा' कह कर लक्ष्मी भीतर चली गयीं।

इसी समय पं० हरिहर सुकुल आ गये। चपरासी के द्वारा उन्होंने सूचना भेजी और उसके बाद बैठक में प्रवेश किया। बाबूसाहब ने प्रणाम किया और आदर प्रदर्शित करते हुए पलंग के पास पड़ी एक आराम कुर्सी पर बैठने के लिए संकेत किया।

पण्डितजी ने आसन लेते ही साफा उतार कर कुर्सी की भुजा पर रख दिया और बाबू साहब की ओर मुँह करके इस प्रकार बातचीत का सिलसिला छेड़ा—"मैंने एक अत्यन्त चिन्ता-जनक बात सुनी है; उसी के सम्बन्ध में आपसे पूछने और, यदि वह सच हो तो, उसके लिए आप क्या प्रबन्ध कर रहे हैं, यह जानने के लिए ही मैं आया हूं। कमलाशङ्कर"

सुकुल जी का वाक्य पूरा होने के पहले ही बाबूसाहब ने उत्तर दिया—"पण्डितजी, अब आप से कोई बात छिपाना

व्यर्थ है। कमलाशङ्कर ने मुझे बड़ा भारी धोखा दिया है। भला इसे ऐसा करना उचित था? मैं इसे अपना ही लड़का समझता था।"

पं०—"जो हुआ सो हुआ। अब क्या करना चाहिए सो बताइए।"

बाबू साहब ने हँस कर कहा—"पण्डितजी, उसमें बिगड़ा ही क्या है, कमलाशङ्कर घर जा ही रहा है। हां, दोनों के विवाहों में अब जल्दी करना आवश्यक है। कमल की मां को जरा आप भी समझा दीजिएगा। आज शाम को मैं बाबू रामलखन सिंह के यहां जाऊँगा; आपको भी चलना होगा।"

पं०—"बहुत अच्छा, मैं अवश्य चलूँगा। कल ही विन्ध्य-क्षेत्र की यात्रा करने का विचार है। काशी में दो दिन ठहर कर कमलाशङ्कर का विवाह यथासंभव शीघ्रही तय कर डालेंगे। इधर आप प्रतिभा के विवाह में जल्दी कर डालें तो सब कठिनाई समाप्त हो जाय।'

बाबूसाहब ने कुछ देर चुप रह कर कहा—"आपसे किसने यह बात कही?"

पण्डितजी ने उत्तर दिया—"मुझे श्यामलाल ने बताया।"

बा०—"यह श्यामलाल बड़ा बेशऊर आदमी है। आपसे कहा सो तो कोई चिन्ता की बात नहीं। मुझे भय है, इसने कहीं औरों से भी न यह कह दिया हो। पण्डितजी, ऐसी बातें बहुत अधिक फैलती हैं। ये लोग किसी की प्रतिष्ठा का तो खयाल ही नहीं रखते, क्या कहा जाय।"

पं—"श्यामलाल में एक दोष है, उसमें गम्भीरता नहीं है। अभी कल मुझे बाबू रामलखन ने बुलवाया था। वहाँ गया तो यही चर्चा छिड़ी थी।"

बाबूसाहब की भँवें तन गयीं, उन्होंने कहा—"यह तो बहुत बुरा हुआ। क्या कहूं, इन छोकड़ों को संसार का थोड़ा सा भी अनुभव तो नहीं है। इन्हें यह तो मालूम ही नहीं कि किस समय, किससे और कैसी बातचीत करनी चाहिए। मुझे इसका बड़ा दुःख है; उससे भेंट हो तो उसे जरा समझा दीजिएगा।"

पं०—"थोड़ी देर हुई, बा० राधिकाकान्त मेरे पास आये थे। मार्क साहब मुझसे कुछ बातचीत करना चाहते थे, इसलिए, उनके कहने पर मैं उनके साथ-साथ कारखाने तक गया था। रास्ते में उन्होंने भी मुझसे पूछा था।"

बा०—"उन्होंने क्या कहा था?"

पं०—"पहले तो प्रतिभा और बा० रामलखनसिंह के व्याह की चर्चा छेड़ी, फिर धीरे धीरे कमलाशङ्कर के प्रेम की वार्त्ता भी सुनायी। मैं तो दङ्ग रह गया। जरा सी बात, वह कितना फैलायी जा रही है; मेरी समझ में राधिकाकान्त को सारी बातें मिस घोष से मालूम हुई होंगी, और स्वयं प्रतिभा ने अपने हृदय के सम्पूर्ण भाव अपनी उस सखी पर प्रकट किये होंगे।"

"पंडित जी आप तो अपने ही आदमी हैं। आप से कोई बात छिपाना व्यर्थ है। जब लड़की ही नालायक निकली तो मुँह पर लाली कैसे रह सकती है? अभी तक मैंने समझा था कि अजीत ही मेरी नाक काटने पर तैयार है, लेकिन अब देखता हूं कि प्रतिभा ने भी वही रास्ता पकड़ा। इस लड़की से मुझे ऐसे आचरण की आशा नहीं थी। मेरा हृदय दुःख और लज्जा की अग्नि में दग्ध हो रहा है। यह सब क्या जाने किन पापों का फल है! पंडित जी, प्रतिभा को तो इसी मिस घोष ने बहकाया है। खैर, ईश्वर की इच्छा! हाँ, मिस्टर मार्क ने आपको क्यों बुलाया था?"

पं०—"बशीर अहमद की स्त्री ने आत्म-हत्या करली, यह समाचार शायद आप को मिला हो । उस बेचारी अबला के सतीत्व पर इस नराधम ने अत्यन्त निन्दनीय आक्रमण किया था । शायद आज सबेरे बशीर ने थाने में इत्तिला दे दी है और स्त्री के हाथ की एक चिट्ठी पेश कर दी है । इसी मामले में मार्क साहब मेरी कुछ सहायता चाहता था ।"

बा०—"उसने रिपोर्ट कर ही दी । वह भी एक नम्बर का बेशऊर है । खैर, अब तो मामला तूल पकड़ेगा ही । मार्क साहब आप से क्या सहायता चाहता था ?"

पं०—"वह तो बड़ा धूर्त्त है न, बाबू साहब । ऐसा बेईमान, दुष्ट, और कुटिल मनुष्य तो मैंने अपने पैंतीस वर्ष के जीवन में कहीं नहीं देखा । वह नर-पिशाच अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को सब प्रकार से सताता है, उनके गाढ़े पसीने की कमाई से मालामाल बनता है, और उन्हीं का धर्म भी नष्ट करता है । जब बाबू राधिकाकान्त मुझे उसके पास ले चलने के लिए आये तभी मैं चौकन्ना हो गया था । मैंने सोचा—क्या आज भगवती के पूजा-पाठ में कुछ त्रुटि होगई जो राक्षस के यहां से बुलावा आया है । लेकिन साँच को आँच क्या ? देवी का स्मरण करता हुआ मैं मार्क के कारखाने में पहुँच गया । वहां उसकी बातें सुनकर तो मैं दङ्ग रह गया । दुरात्माओं का दुस्साहस किस हद तक जा सकता है, यह देख कर मैं अचरज में पड़ गया । आज्ञा हो तो कहूं ।"

बा०—"पूरा हाल जानने के लिए मैं बहुत उत्कण्ठित हूं । कहते चलिए ।"

पं० जी—"उसने कहा कि बशीर अहमद की स्त्री वास्तव में मरी है ज्वर के कारण । बशीर की अनुपस्थिति में, उसकी

स्त्री के प्रार्थना करने पर जहाँ तक सम्भव था उसे औषधि आदि द्वारा सहायता पहुँचायी गयी। इस उपकार के लिए मुझे धन्यवाद देना तो दूर रहा, उलटे बाबू अजीतसिंह और उनके साथियों ने जाली पत्र बना कर मुझे फँसाने की चेष्टा की है। एक पत्र उसने ऐसा दिखाया जिसमें बशीर की स्त्री ने बाबू अजीत-सिंह के प्रति अपने उद्गार प्रकट किये थे। यह सब दिखा कर उसने मुझे अपने पक्ष में गवाही देने के लिए उत्साहित किया और अधिक वेतन की नौकरी देने का लालच दिया। मैंने उसे तुरन्त फटकारा। ऐसी फटकार शायद अपने जीवन में मैंने किसी को न सुनायी होगी।"

बा०—"आपने क्या कहा?"

पं० जी—"मैंने कहा, मार्क साहब! आप यह क्या और किससे कह रहे हैं? अजीत बाबू ने एक बार मुझे पोप और पाखण्डी कह दिया; मुझे कुछ अनाप-शनाप सुना दिया तो क्या उससे आप यह समझ गये कि मैं उनके विरुद्ध गवाही देने जाऊँगा। यदि आप वास्तव में संकट में हों, और उस संकट के निवारण में मेरी कुछ भी उपयोगिता हो तो इस सेवा-यज्ञ में मैं अपने शरीर और प्राणों की आहुति कर देने को तैयार हूं, लेकिन रुपयों में बिकने और आप की बातों में आकर जहां आप पर कोई अत्याचार नहीं किया गया है वहां वैसा समझने के लिए जिस बेईमानी और मूर्खता की आवश्यकता होती है, वह मुझमें यथेच्छ मात्रा में नहीं है। मैंने कहा, आप मुझे कोरा लोलुप जाति का ब्राह्मण न समझें। रोटी के लिए मैं धर्म नहीं गँवा सकता। इन हड्डियों में भारतवर्ष के त्यागी ऋषियों का थोड़ा बहुत रक्त तो है ही, हम कितने ही नालायक क्यों न हो जायं।"

बा०—"क्या उसने कालेज की नौकरी भी छोड़ने को कहा था ?"

पं०—"नहीं, यह कहा था कि इस सहायता के कारण यदि आप की नौकरी पर कोई आँच आवे तो मैं उससे अधिक वेतन की नौकरी देने को तैयार हूं।"

बा०—"यहां तक ! वाह मि० मार्क, और वाह मिस्टर घोष ! मुझे यह सब नहीं मालूम था। पण्डित जी, अभी दो तीन दिन हुए मार्क आया था। बच्चा की बहुत कुछ शिकायत कर गया था। मैंने सब सच जान लिया था। आपने तो आज मेरे बहुत बड़े भ्रम का निवारण कर दिया।"

पं०—"बाबू साहब ! अजीत बाबू को फँसाने के लिए मार्क बहुत विकट षड्यन्त्र करेगा।"

बा०—"पण्डित जी, मार्क को मैं ऐसा नहीं जानता था। उसने अपना कारबार इतनी सुदक्षता के साथ सँभाल लिया है कि उसकी प्रबन्ध-बुद्धि और व्यापार-कौशल की प्रशंसा करनी ही पड़ती है। उसकी चरित्र-हीनता की बात कभी कभी मैंने सुनी थी अवश्य, परन्तु मुझे इसका विश्वास कभी नहीं हुआ। इसके विपरीत बच्चा जी के आचरण पर मुझे सन्देह भी हो गया था। इस सम्बन्ध में आप की बातें सुन कर मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है। रही मार्क के षड्यन्त्र की बात, सो आप से कहे देता हूं कि यदि वह ऐसा करता है तो मेरी शक्तियों का उसे पता नहीं है। ऐसे ऐसे क्या जाने कितने दुष्टों का मैं ध्वंस कर चुका हूं, और मजे की बात यह कि जो कुछ किया सो सब खूबसूरती और सहूलियत के साथ; साँप मरा और लाठी भी नहीं टूटी; किसी को यह पता नहीं लग सका कि भीतर ही भीतर सारी कार्रवाई मेरी है। देखिए बच्चा जी के

विचार कुछ सुधर तो रहे हैं। पंडित जी, मैं यह सोच रहा हूं कि इस मामले में मार्क ने मुझसे किसी प्रकार की सहायता लेने का प्रयत्न क्यों नहीं किया। मिस्टर घोष तक ने मुझे स्मरण नहीं किया।"

पं० जी—"बाबूसाहब, मैं आपको पूरी परिस्थिति ही समझा दूं। मिस्टर मार्क असली बातों के सम्बन्ध में घोष साहब को बिलकुल अंधकार में रखता है। घोष साहब का इस समय ध्यान ईसामसीह की याद और ईसाई मत के प्रचरार्थ प्रयत्न करने की ओर है। मार्क-जैसे कूटनीतिज्ञ के के लिए यह थोड़ा भी कठिन नहीं है कि वह घोष साहब को दूसरे किसी की सत्य बातों की ओर से बहरा और अन्धा बना दे। घोष साहब तो ग्रामोफोन की तरह मार्क के मत के अनुकूल ही बातें करते हैं; मर्क के विरुद्ध कोई भी बात सुनने के लिए वे तैयार नहीं हैं; उन्हें तो उस पर बड़ा घमंड है।"

बा०—"पंडित जी, दोष के साथ साथ गुण भी हों तो दोष ढक जाते हैं। कम से कम यह तो मानना ही पड़ेगा कि मिस्टर घोष बड़े भाग्यवान् हैं। बुढ़ापे में उन्हें ईश्वर-भजन और धर्म्म-प्रचार करने का मौका तो मिल गया। मिस्टर घोष उम्र में मुझ से दो चार साल छोटे ही होंगे और फिर भी लड़के के प्रबन्ध-पटु होने के कारण मुझसे अधिक सुख, अवकाश, और विश्रम उन्हें प्राप्त है। देखिए न, झंझटों के कारण कभी-कभी मेरे पूजा-पाट में भी विघ्न पड़ने लगता है।"

पं०—"बाबू साहब! आप क्या कहते हैं! भला म्लेच्छ से आप अपनी तुलना करते हैं। आपके द्वार पर गौ-ब्राह्मणों को आश्रय मिलता है, और वह राक्षस इन दोनों का रक्त चूसता है। मिस्टर घोष का स्वभाव निस्सन्देह अच्छा है, परन्तु क्या

केवल इतने से ही वह आपके सूर्य्यवंशीय रक्त की बराबरी कर सकता है? महाराज, बच्चा को आप क्या समझते हैं? मेरा कई अंशों में उनसे मतभेद है, परन्तु मैं जानता हूं कि वे जो कुछ करते हैं, या कहते हैं, वह सब केवल देश के उपकार की दृष्टि से। मार्क और बच्चा की तुलना पेटधन्धों की कसौटी पर मत कीजिए। बाबूसाहब! बच्चा में चक्रवर्त्ती के लक्षण हैं; उनकी तेजस्विनी वाणी का प्रभाव मैंने प्राय: सभाओं में देखा है; उनकी गर्ज्जना बड़े से बड़े विरोधियों की बोलती बन्द कर देती है। इसी इलाहाबाद शहर में अजीत बाबू का जो मान है वह पच्चीस वर्ष के थोड़े वय में बहुत ही कम लोगों ने पाया होगा।"

अजीत की प्रशंस पंडित जी से सुनकर बाबूसाहब की छाती फूल गयी। उन्होंने हलकी हँसी के साथ कहा—"पंडित जी, मैं तो जानता हूं, इस लड़के का स्वभाव ही कुछ निराला है। इसके चित्त में जो बात जम जाय, जिसके लिए यह हठ कर बैठे उसकी ओर से इसका ध्यान हटाना कठिन है। आप देख लीजिएगा—यदि यह कभी इन झगड़ों-झमेलों को छोड़ेगा तो ऐसा छोड़ेगा कि घर के बाहर भी बहुत कम निकलेगा, विचित्र तो वह अवश्य है।"

जंजाली ने आकर कहा—"सरकार, भोजन तैयार है।"

पंडित जी ने कुर्सी से कुछ उठते हुए कहा, "तो अब आप भोजन करिए। मैं भी चलता हूं। सध्या को कै बजे आ जाऊँगा?"

बाबूसाहब ने उत्तर में कहा—"मैं छः बजे तैयार रहूँगा।"

इसके बाद बाबूसाहब ने प्रणाम किया और पण्डित जी प्रेमपूर्व्वक आशीर्वाद देकर बोर्डिङ्ग में चले आये। बाबूसाहब

भोजन करने चले गये। आँगन वाले बरामदे में उनके पहुँचते-पहुँचते एक छोटी सी घटना का आरम्भ और अन्त उनकी आँखों के सामने ही एक मिनट में हो गया। शांता ने खेल ही खेल में अपने साथी मूलचन्द को धक्का देकर पक्की फर्श पर गिरा दिया और आप ही रोना भी शुरू कर दिया। इसी समय पद्मा झपट कर आयी और मूलचन्द को डाट कर तथा दोष का सारा भार उसी पर डाल कर शान्ता को गोद में लेने लगी। एक हलकी मुसकराहट बाबूसाहब के होठों पर आ गयी। कुछ सोचते हुए वे रसोई घर में चले गये।

[२०]

थाने पर पहुँच कर बशीर ने उस दुर्घटना का पूरा वृत्तान्त लिखा दिया। लेकिन लिखने की यह कार्यवाही समाप्त होते-होते दस बजे से अधिक समय हो गया, क्योंकि उसे थोड़ी देर तक मुंशी के आने की इन्तजारी भी करनी पड़ी थी। इसके बाद अजीत की चिट्ठी मिस घोष के पास पहुँचा कर वह अपनी कोठरी में चला गया।

बेचारी मिस घोष अजीत के उत्तर की प्रतीक्षा करते करते व्याकुल हो उठी थी; तरह तरह की भावनाएं उसके चित्त को मथ रही थीं। कभी सोचती, कहीं चपरासी ने पत्र देने में तो नहीं गलती की ? फिर तुरन्त ही इस संभावना के विरुद्ध अनेक प्रमाण संग्रह करके आशंका से पिंड छुड़ाती। कभी पूछती, क्या अजीत बाबू मेरे उस पत्र को पढ़ कर नाराज हुए होंगे ? नाराज होने की बात लिखी तो अवश्य ही गयी है। यदि उनके हृदय में प्रेम का अभाव हो और वे समालोचक बन कर उसे पढ़ें तो निस्सन्देह वे उस पत्र को अपने पथ में विघ्न-कारी ही समझेंगे ? किन्तु क्या अजीत बाबू का हृदय प्रेम से

सर्वथा शून्य है ? नहीं, मैं उन्हें लड़कपन से ही जानती हूं; न वे प्रेम-शून्य हैं, और न सौन्दर्य-रसिकता की उनमें कमी है। राजनैतिक जीवन में पड़ कर ही उन्होंने अपने हृदय के उस स्वभाव को मन्द पड़ जाने दिया है जिसकी प्रवृत्ति यौवन और सौन्दर्य्य के उपभोग की ओर होती है। और इस परिस्थिति को भी उत्पन्न करने का उत्तरदायित्व किस पर है ? क्या मैंने ही उन्हें देश-सेवा और समाज-सेवा की ओर आकर्षित नहीं किया ? हाय इस अपूर्व प्रतिभाशाली युवक को सोलहो आने अपनी मुट्ठी में रखने के लिए मैंने कितने प्रयत्न किये और प्राय:सभी प्रयत्नों में मुझे असफल ही होना पड़ा! मैं यह कब जानती थी कि पद्मा से अजीत बाबू को अल्पाधिक मात्रा में विरत बनाने का मेरा यह प्रयास उनको ऐसी दिशा में ले जायगा जहां मैं भी छूट जाऊँगी ? परन्तु इसमें मेरा भी क्या अपराध है ? यह सब तो अजीत बाबू की उस प्रतिभा का ही दोष है जिसके कारण वे किसी भी क्षेत्र में साधारण स्थिति से संतोष नहीं कर सकते। और इस प्रतिभा को भी क्या दोषी ठहराऊँ ? इसी प्रतिभा के कारण ही, इसी असाधारण क्षमता के कारण ही तो मैं अजीत बाबू को प्यार करती हूं।

मिस घोष अपने पढ़ने के कमरे में आराम कुर्सी में पड़ी हुई इन्हीं भावों में डूबी हुई थी जब बशीर अहमद, अजीत बाबू का पत्र उसे देकर, बातचीत के लिए तनिक भी खड़ा रहे बिना, चला गया। लिफाफे पर ही एक ओर लिखा था 'अजीत' जिससे मिस घोष ने समझ लिया कि अजीत बाबू ही ने कृपा की है। उत्कण्ठा के मारे मिस घोष का हृदय काबू के बाहर होता जा रहा था; हाथ काँपने लगे थे और वह जितनी ही जल्दी के साथ उसे खोलना चाहती थी उतनी ही देरी वे उसकी इच्छा-पूर्ति में लगा रहे थे। अस्तु।

पत्र पढ़ने के बाद मिस घोष की विचित्र दशा हो गयी। उसने अजीत से इतनी निष्ठुरता की आशंका नहीं की थी जितनी इस पत्र में उसे दिखायी पड़ रही थी। प्रेम के उत्तर में, आत्म-समर्पण के बदले में, ज्ञान का उपदेश, त्याग की शिक्षा और दार्शनिक भाषा में प्रेम की मीमांसा। क्या यही उचित है? क्या प्रेम की प्यासी नारी की प्रेम-याचना का यही उत्तर हो सकता है? क्या इसी ज्ञान-निरूपण के लिए मैंने अजीत बाबू को वह पत्र लिखा था जिसमें नारीजनोचित अपने सम्पूर्ण स्वाभिमान को चकनाचूर हो जाने दिया था? क्या यह मेरा अपमान नहीं है? क्या इस व्यवहार से यह नहीं सिद्ध होता कि अजीत बाबू मुझे मिट्टी और धूल से भी हीन समझते हैं। तो फिर अब मैं क्या करूं?

मिस घोष की बेचैनी का कोई पार नहीं था। वह कभी एक विचार की ओर झुकती और कभी दूसरे की ओर। उसके चित्त की इसी अव्यवस्थित दशा के समय चपरासी ने आकर कहा—"आपको छोटे साहब बुला रहे हैं।" मिस घोष घबरायी। अजीत बाबू ने दुर्भाग्य से बशीर को ही मेरे पास पत्र पहुँचाने के लिए चुना। संभव है, छोटे साहब ने देखा और किसी तरह का संदेह किया हो—इसी असमंजस में पड़ी हुई वह मार्क के कमरे में पहुँच गयी।

मिस्टर मार्क ने कहा—"मिस घोष! बैठ जाओ, तुमसे कुछ आवश्यक बातें करनी हैं।"

मिस घोष सशङ्क हो गयी। सामने ही एक कुर्सी पर बैठ कर उसने सम्पूर्ण श्रवण-शक्ति को मिस्टर मार्क के होठों से निकलने वाले शब्दों की ओर प्रेरित कर दिया।

मा०—"तुम्हें यह तो मालूम ही है कि हमारे कारखाने में

बहुत बड़ी हड़ताल होते होते रोक दी गयी है, सो भी यह मेस्टर घोष की बुद्धिमानी से सम्भव हो सका।"

मिस घोष—"हां, यह तो मैं जानती ही हूं।"

मिस्टर मार्क आगे क्या कहेंगे, उस सम्बन्ध में मिस घोष का तर्क-वितर्क और उत्कण्ठा-भाव और भी प्रखर हो गया।

मार्क—"इस हड़ताल कीं जड़ में क्या है, इसे भी तुम जानतो हो ?"

मिस घोष ने उत्तर दिया—"शायद आप का खयाल यह है कि अजीब बाबू मजदूरों को भड़काया करते हैं।"

"सो तो है ही, लेकिन मूल कारण और भी गहराई में है"—मिस्टर मार्क ने कहा,

मिस घोष ने तुरन्त ही कहा—'सो क्या ?'

मा०—"बात यह है कि अजीत बहुत ही दुश्चरित्र मनुष्य है।"

मिस घोष बहुत अधिक अधीर हो गयी। वह कुछ भी बोल नहीं सकी।

मिस्टर मार्क ने अपनी बातों के सिलसिले में कहा—"अजीत का बशीर अहमद की स्त्री के साथ अनुचित सम्बन्ध था। अन्य मजदूरों की स्त्रियों के साथ भी उसका ऐसा ही सम्बन्ध होगा।"

मिस घोष एक चिन्ता से तो मुक्त हुई। लेकिन अजीत के दुराचार का समाचार उसके लिए बिलकुल ही नया था। इस समाचार का उसके जीवन से इतना घनिष्ट सम्बन्ध भी था कि वह उससे तटस्थ नहीं रह सकती थी और न प्रबल प्रमाणों के अभाव में उस पर विश्वास ही कर सकती थी। उसने

पूछा—"आपको यह कैसे मालूम हुआ? आपको केवल संदेह है, या कुछ प्रमाण भी मिला है?"

मिस्टर मार्क ने दृढ़ता के साथ कहा—"प्रमाण मिला है; अफवाहों पर तो मैं स्वयं विश्वास नहीं करता था; मैं तुम्हें बशीर की औरत और अजीत बाबू के बीच गुप्त रूप से चलने वाले पत्र-व्यवहार का कुछ पता दे सकता हूं। एक दिन अजीत बाबू के पास रात को पत्र रवाना हो रहा था कि एकाएक मुझे इसका कुछ पता चला और मैंने तुरन्त ही पत्र ले जाने वाली औरत को गिरफ्तार किया। मैं तुम्हें वह पत्र दिखा सकता हूं।"

यह कह कर मिस्टर मार्क उठे और आलमारी का ताला खोल कर उन्होंने वही पत्र मिस घोष के सामने रख दिया, जिसे उन्होंने गत रात्रि में बशीर अहमद की स्त्री से जबरदस्ती लिखवाया था।

मिस घोष ने शुरू से लेकर अन्त तक पत्र को प्रायः एकही साँस में पढ़ डाला। क्रोध के मारे उसकी आँखें लाल हो गयीं। यदि अजीत बाबू वहीं कहीं दिखायी पड़ते तो वह उस पत्र को, जिसे उन्होंने उसके पास भेजा था, और इस पत्र को उनके सामने रख कर उसके काले मुँह को और भी काला कर देती। उसने मन ही मन कहा—"धिक्कार है मुझे, जो मजदूरिनों के पीछे घूमने वाले एक दुराचारी युवक के प्रेम में पागल होकर मैं अपने आप को नीचे गिराती हूं। आह! मैं कितने बड़े भ्रम में पड़ी रही!"

मिस्टर मार्क ने पूछा—"क्या सोच रही हो मिस घोष?"

मिस घोष ने स्वयं को सँभालते हुए कहा—"यही सोच रही हूं कि यह अभागा व्यर्थ ही बहुत विपत्ति का आवा-

हन कर रहा है, क्योंकि हमें तो अपने कारखाने की रक्षा करनी ही होगी।"

मा०—"हां, मिस घोष, मैंने अजीत को दण्ड देने का तो पक्का निश्चय कर लिया है। मुझे दुःख केवल बाबू जगजीवन-सिंह के लिए है; वह एक भला आदमी है। पर किया क्या जाय? मैंने तुम्हें इस समय इसलिए बुलाया है कि तुम अजीत के स्वभाव से परिचित हो जाओ, क्योंकि कभी कभी तुम भी उसके प्रति सहानुभूति दिखाया करती हो। और एक बड़ी विचित्र बात हुई है, उसे भी सुनाऊं?"

मिस घोष ने उत्कण्ठापूर्वक कहा—"सो क्या?"

"खबर है कि बशीर अहमद की स्त्री आज मर गयी है"—मार्क ने मुसकराते हुए उत्तर दिया।

"आत्म-हत्या! यह क्यों? अजीत बाबू को पाकर भी अभागिनी क्यों दुखी रह गयी?"—मिस घोष ने बहुत अधिक आश्चर्य और जिज्ञासा का भाव प्रकट करते हुए कहा।

मिस्टर मार्क ने गम्भीरता धारण करके कहा—तो जान पड़ता है कि तुमने इस समाचार की सत्यता पर विश्वास कर लिया! किन्तु यह संसार बड़ा विचित्र है मिस घोष! भोली भाली सीधी-सादी औरतें अजीत ऐसे क्रान्तिकारी युवकों के प्रेम-पाश में पड़ कर जैसा फल पा सकती हैं ठीक वैसा ही इस अभागिनी रजिया ने पाया है। रजिया खूबसूरत थी, यह तो तुम जानती हो। ऐसी दशा में अजीत के दोस्तों ने भी उसे अपने जाल में फँसाना चाहा। श्यामलाल का जैसा चालचलन है, वह सभी लोगों को मालूम है, लेकिन किसी को स्वप्न में भी इसका पता नहीं कि अजीत बाबू रजिया से श्यामलाल की पैशाचिक कामना की

पूर्ति कराना चाहते थे। रजिया बीमार तो थी ही, इन लोगों के राक्षसी काण्ड के कारण स्वर्ग लोक को सिधार गयी। इसके बाद अजीत और श्यामलाल ने एक कल्पित पत्र की रचना की है, जिसे मूर्ख बशीर अहमद द्वारा थाने में पेश करवा दिया है।

"उस पत्र में क्या है"—मिस घोष ने पूछा।

मिस्टर मार्क ने कहा—"उसमें सम्पूर्ण घटना का रूप बदल दिया गया है—मैंने बलात्कार किया और रजिया ने आत्महत्या की! तारीफ की बात यह कि जन्म के गधे बशीर अहमद ने इस पर विश्वास कर लिया! कहा भी है, 'जादू वह जो सर पर चढ़ के बोले।' खैर। इसकी कोई चिन्ता नहीं। मैं अजीत ऐसे लउँडों को चरा देने की शक्ति रखता हूं।"

मिस घोष ने कहा—"तो इस तोहमत से बचने के लिए आपने क्या उपाय सोचा है?"

मिस्टर मार्क ने उत्तर दिया—"उपाय तो मैंने बहुत अच्छी सोचा था। पं० हरिहर सुकुल को बुलवाया था और उसे अपनी ओर फोड़ लेने की बड़ी कोशिश की थी, लेकिन वह एक नम्बर का उस्ताद है; उसने पीठ पर हाथ नहीं रखने दिया। उलटा उसकी बातों से साफ प्रगट हो गया कि हर हालत में वह अजीत ही का साथ देगा। उसको मैंने अच्छी तरह जाँच लिया। उससे मेरा कोई काम नहीं निकलने का। व्यर्थ हीं तुम और बाबू राधिकाकान्त दोनों उसकी तारीफों के पुल बाँधा करती हो। फिर भी, एक रास्ता है।"

मि० घो०—"क्या?"

मिस्टर मार्क ने कहा—"बाबू जगजीवन सिंह से मुझे सहायता मिल सकेगी। मिस्टर रामलखन सिंह और डाक्टर

किशन लाल दोनों पर उनका बड़ा प्रभाव है, वे जो चाहें सो उनसे करा सकते हैं। लेकिन बाबूसाहब के पास तुम्हें और श्रीमती घोष को ही जाना पड़ेगा; मेरे जाने से तो उल्टा काम बिगड़ जाने का डर है।"

'मैं चली जाऊँगी', कह कर मिस घोष कुछ और कहना चाहती थीं कि एकाएक चपरासी ने पुलीस दरोगा के आने की सूचना मिस्टर मार्क को दी।

मिस घोष को साथ लिये हुए मिस्टर मार्क उस कमरे में पहुँचे जिसमें दारोगा साहब छः सात कांस्टेबिलों के साथ बैठे थे। मिस्टर मार्क ने बड़े तपाक से हाथ मिलाया।

"बशीर अहमद तो आपकी मिल में काम करता है न ?"—दारोगा ने पूछा।

कुर्सी पर बैठते हुए मिस्टर मार्क ने उत्तर दिया, 'हां'।

दा०—"मैं उसके क्वाटर पर चलना चाहता हूं।"

मिस्टर मार्क, दारोगा, कांस्टेबुल, मिस घोष और, समाचार मिलने पर, घोष-पत्नी श्रीमती मेरी सब के सब घटनास्थल की ओर गये। लाश को जाँच के लिए अस्पताल में पहुँचाने की आज्ञा देने के बाद दारोगा साहब ने मिस्टर मार्क का बयान लिया और अन्त में कहा कि आप अपने को गिरफ्तार समझिए।"

मिस्टर मार्क ने कहा—"यह औरत रजिया तो कई दिनों से बीमार थी और उसे स्वाभाविक मौत मिली है। ऐसी दशा में उसकी लाश को अस्पताल में जाँच के लिए भेजने का क्या मतलब है ?"

दारोगा ने उत्तर दिया—"मिस्टर मार्क ! क्या अभी तक आपको यह मालूम नहीं है कि उसने आत्म-हत्या की है और उसके लिए आपको भयंकर रूप से अपराधी बनाया है ?"

"झूठ! बिलकुल झूठ!! जाल!!!"—मिस्टर मार्क ने चिल्ला कर कहा। इस समय उनका चेहरा क्रोध से तमतमा आया था।

दारोगा ने कहा—"खैर इसकी सफाई देने का आपको काफी मौका मिलेगा। फिलहाल तो आप अपने को पुलीस की हिरासत में समझिए।"

यह कहने के बाद दारोगा ने दो अच्छे से इक्के लाने की आज्ञा एक कांस्टेबिल को दी।

मिस घोष और श्रीमती मेरी को इस समय अजीत पर बड़ा क्रोध आ रहा था।

इक्कों के आ जाने पर दारोगा, कांस्टेबिल और मिस्टर मार्क थाने की ओर रवाना हो गये। मिस घोष और श्रीमती मेरी बँगले की ओर लौट आयीं। श्रीमती मेरी मिस्टर घोष के कमरे में जाकर बातें करने लगीं। मिस घोष अपने कमरे में चली गयी। वहां आराम कुर्सी में वह इस तरह पड़ गयी जैसे उसके शरीर में दम ही न हो। अजीत को उसने कितना ऊँचा समझा था। उसके लिए अजीत वैसा ही था जैसा चकोर के लिए आकाश-विहारी चन्द्रमा। अजीत के दार्शनिक उत्तर ने उसे रुष्ट अवश्य ही बनाया था, किन्तु वह परिस्थिति इतनी दयनीय और शोचनीय नहीं थी जितनी इस समय की थी। नीच स्त्रियों से सम्बन्ध रखनेवाला एक युवक भले घराने की सुन्दरी और सुशिक्षिता बाला के प्रेम-निमन्त्रण को जूतों से ठुकरा दे! कितनी लज्जाजनक बात है!!

मिस घोष का अपमानित हृदय इस अप्रतिष्ठा का प्रतीकार करने के लिए व्याकुल हो उठा। उसी समय उसने प्रतिज्ञा की कि अजीत का सर्वनाश करना ही आज से मेरे जीवन का उद्देश्य होगा।

मिस घोष अपने इन प्रतिहिंसात्मक भावों में इतनी तल्लीन हो रही थी कि अचानक श्रीमती मेरी के आने से वह बेहद चौंक कर खड़ी हो गयी।

'इतनी चौंकती क्यों हो, मिस ?'—मुसकराते हुए श्रीमती मेरी ने कहा।

मि० घोष—"सोच रही हूं, करना क्या चाहिए।"

"करना क्या चाहिए ? इसकी चिन्ता तुम करती हो ? मैंने मिस्टर घोष को सब बातें बता दी हैं। वे तो सुनते ही बोल उठे कि यह सब अजोत की कारस्तानी है; जब उसने देखा कि किसी तरह हड़ताल रुक गयी तो मार्क को फँसाने के लिए यह जाल रचा है। खैर, मैं मोटर तैयार करवा रही हूं। सबसे पहले कलेक्टर से मिल आना चाहती हूं।"

मि० घो०—"हाँ, उनसे तो जरूर मिल लीजिए। मिस्टर मार्क ने बाबूसाहब के द्वारा मिस्टर रामलखन सिंह और डाक्टर किशनलाल से भी सहायता लेने के सम्बन्ध में मुझसे कहा था। क्या मैं भी चलूं ?"

मेरी—"जरूर ! कुछ खाने पीने की चीजें भी तो लेते चलें। चपरासी को अभी चौक भेज दिया है।"

[२१]

भोजन करने के बाद बाबूसाहब चारपाई पर लेटे। कुली ने पंखे की डोर हाथ में ली। जंजाली पान के बीड़े लाया और उन्हें बाबूसाहब के हाथ में देने के बाद पैर दाबने लगा। पान के बीड़े चबाते हुए एकाएक बाबूसाहब ने कहा—"जरा बच्चा को तो बुला ला।"

जंजाली ने जाकर अजीत को सूचना दी। वे आरामकुर्सी

में बैठे हुए कुछ सोच रहे थे। तुरन्त बाबूसाहब के कमरे की ओर चल पड़े। देखते ही बाबूसाहब ने पूछा—"क्यों भोजन कर लिया कि नहीं?"

"भोजन तो मैंने तभी कर लिया था जब आप पं० हरिहर सुकुल से बातचीत कर रहे थे"—अजीत ने उत्तर दिया।

बाबूसा०—"यह देखो न बशीर अहमद की वेशऊरी। उसने थाने में रिपोर्ट कर ही दी। मैंने उसे कितना समझाया था कि अब उपद्रव से कोई लाभ नहीं है, तेरी औरत तो मिलने से रही, तू और भी दलदल में फँस जायगा। लेकिन उसने नहीं माना। खैर वह जाने उसका काम जाने, जैसा करेगा वैसा फल पावेगा। हां पंडित जी एक बात कह रहे थे, उसे तुम भी जान लो तो अच्छा है; मार्क तुम्हें किसी कुचक्र में फँसाना चाहता है। इसकी चिन्ता तो तुम लेशमात्र न करो; मैं मार्क से निपट लूँगा। लेकिन इतना तो तुम जरूर ही करो कि आगे से किसी उलझन में मत पड़ो।" आज शाम को बा० राललखन सिंह के यहाँ जाना चाहता हूँ, मैं तो चाहता हूँ कि तुम भी साथ साथ चले चलो, तुम्हें देख कर उन्हें बहुत इतमीनान हो जायगा। सुकुल जी भी चलेंगे।"

अजीत इस समय न साफ इनकार करना चाहता था और न इस जाल में फँसना चाहता था। उसने कोमल शब्दों में कहा—"बाबू जी, पहले मालूम नहीं था, आज तो मुझे आवश्यक काम है।"

बाबूसाहब ने कहा—"खैर, नहीं चल सकते तो कोई हर्ज नहीं, लेकिन मैं तुमसे बारबार कहता हूँ कि बशीर अहमद वाले मामले में अब तुम अपने को न फँसाना। जाओ आराम

यह कह कर बाबूसाहब ने करवट ली। अजीत बाबू अस्थिर-चित्त होकर अपने कमरे में लौटे। इस समय मार्क के ऊपर उन्हें इतना क्रोध आ रहा था कि यदि वह यहाँ कहीं मिल जाता तो शायद आज उनके हाथों मार भी खा जाता। मार्क को परास्त करने के लिए क्या करना चाहिए?—इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने के लिए उन्होंने अपने मस्तिष्क की समस्त शक्तियों को नियोजित कर दिया।

थोड़ी देर के बाद अजीत ने भगवान चपरासी को बुलाया और उससे यह कह कर कि बाबू जी पूछें तो कह देना कि एक मित्र के यहां गये हैं; नंगे सिर, बदन पर कुरता तथा पैरों में स्लीपर पहने हुए कड़ी धूप की कुछ भी परवा न करते हुए वे बाहर निकल पड़े। मार्ग में उन्होंने एक कार्यक्रम स्थिर कर लिया—एक सभा की जानी चाहिए जिसमें मार्क साहब के अत्याचारों और रजिया की आत्म-हत्या के रहस्यों से जनता को परिचित कराने का उद्योग हो। तुरन्त ही उनके सामने सभापति का प्रश्न उपस्थित हुआ। उन्होंने सोचा, सुकुल जी को नगर के बहुत से लोग जानते हैं और उनकी सेवापरायणता तथा सत्य-भक्ति के कायल है। यदि सुकुल जी एक बार ललकार कर मार्क के दुराचारों की निन्दा कर दें तो यह असम्भव है कि लोकमत मार्क के प्रतिकूल न हो जाय। लेकिन सुकुल जी को सभापति बनाने के सम्बन्ध में तुरन्त ही दो कठिनाइयाँ उनके सम्मुख खड़ी हो गयीं—एक तो यह कि जिसे पाखंडी और पोप कहता आया हूँ उसी के पास सहायता के लिए जाना अनुचित है; दूसरे सुकुल जी अगले दिन ही कमलाशंकर के साथ विंध्याचल को जा रहे हैं। इन दोनों कठिनाइयों के सामने अजीत ने सिर झुका दिया। नगर के

किसी अन्य प्रतिष्ठित सज्जन के सम्बन्ध में वे सोचने लगे।

× × ×

अजीत के जाने के थोड़ी देर बाद बाबूसाहब को नींद आ गयी; जगे तो घड़ी में पाँच बज चुके थे। उठ कर हाथ मुँह धो ही चुके थे कि किसी मोटर के आने की आवाज कान में पड़ी। शीघ्र ही मिस घोष और श्रीमती मेरी कमरे की ओर आती दिखायी पड़ीं।

इधर बहुत दिनों से बाबूसाहब ने श्रीमती मेरी को न देखा था। बहुत प्रसन्न होकर हाथ मिलाने के लिए आगे बढ़े और बोले—"आपने इस कड़ी धूप में क्यों कष्ट किया, आपके बाहर निकलने के योग्य यह समय तो नहीं है। कुशल तो है ?"

"कुशल कहाँ है ?"—हाथ मिला चुकने के बाद श्रीमती मेरी ने एक कुर्सी में बैठते हुए कहा। मार्क तो आज गिरफ्तार हो गया।"

"गिरफ्तार हो गया ?"—चारपाई पर बैठने के साथ ही साथ बहुत अधिक चिन्ता का भाव व्यक्त करने की चेष्टा करते हुए बाबूसाहब ने कहा। "जी, हां, अजीत बाबू की इच्छा पूरी हो गयी"—श्रीमती मेरी ने तुरन्त ही उत्तर दिया।

मेरी ने समझा था कि अजीत बाबू से बाबू साहब स्वयं नाराज हैं। उसके व्यवहारों से नित्य ही खीझते रहते हैं इसलिए उसकी शिकायत करने से वे अप्रसन्न न होंगे। किन्तु शीघ्र ही श्रीमती जी को यह प्रगट हुए बिना नहीं रहा कि उनकी इस बात का बाबूसाहब पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। अतएव अपनी बात सम्हालने के लिए उन्होंने फिर कहा—"मिस्टर घोष ने कहा है कि मार्क को संकट से आप ही बचा सकते हैं।"

बाबू साहब अजीत के अपराधों की गुरुता से स्वयं दबे जा रहे थे। इस भार से कुछ मुक्त होने के उद्देश्य से बोले—"श्रीमती घोष, मेरे सहयोग से यदि मार्क किसी कष्ट से बच सकते हैं तो मैं सिर के बल चलने को तैयार हूं। हां आपको यह भी बता देना चाहता हूँ कि मैं बच्चा को मिस्टर मार्क के अधिक निकट लाने के लिए भी प्रयत्न कर रहा हूँ। पुरानी बीमारियों का प्रभाव तो नष्ट करना बिलकुल असंभव है। लेकिन मुझे विश्वास है कि भविष्य में बच्चा के सम्बन्ध में नई शिकायतें नहीं खड़ी होंगी।

श्रीमती मेरी के पास अजीत की निन्दा करने के लिए बहुत कुछ सामग्री थी। किन्तु उन्हें अपना काम नहीं बिगाड़ना था। इसलिए, उन्होंने मुसकराकर कहा—"तो आपको मिस्टर रामलखन सिंह और डाक्टर किशनलाल के यहां चलना होगा।"

एकाएक बाबूसाहब ने भगवान चपरासी को आज्ञा दी कि वह बच्चा जी को बुला लावे। इसके बाद श्रीमती मेरी की ओर मुख करके बोले—"मैं चलने के लिए तैयार हूँ। जहाँ कहिए वहाँ चलूँ। मिस्टर रामलखन सिंह और डाक्टर किशनलाल दोनो ही अपने हैं, जो कह दूंगा वे टाल नहीं सकते। जरा धूप थोड़ी और नरम पड़ जाय तो मैं चल कर मार्क की जमानत भी कर दूँगा।"

यह कह कर बाबूसाहब ने सोचा कि बच्चा पर कोई तूफान न खड़ा करने के लिए मैंने काफी घूस दे दी।

मिस घोष अपनी कुर्सी छोड़ कर प्रतिभा के कमरे की ओर चली गयी।

श्रीमती मेरी ने मुसकरा कर कहा—"जान पड़ता है, आप

यह सोच रहे हैं कि लू और धूप से मेरे जैसी स्त्रियों को कोई विशेष शौक होता है। मैं स्वयं अभी थोड़ो देर तक प्रतिभा, पद्मा, और ठकुराइन साहबा से बातें करूँगी।"

श्रीमतो मेरी जनानखाने की ओर चली गयीं। इसके बाद भगवान ने लौट कर कहा—"सरकार बच्चाजी कहीं गये हैं।"

बाबू साहब ने तकिये का सहारा लेकर लेटते हुए उदासीन भाव से कहा—'अच्छा।'

× × ×

धीरे धीरे छः बजे और पं० हरिहर सुकुल आ गये। उन्हें देख कर बाबू साहब उठ बैठे। श्रीमती मेरी भी संयोग से इसी समय के लगभग आ गयीं। सुकुलजी को मि० मार्क की गिरफ्तारी की सूचना मिल गयी थी। इसलिए श्रीमती मेरी को वहां देख कर उन्हें कोई आश्चर्य नहीं हुआ।

मेरी ने सुकुलजी का अभिवादन किया, और सुकुलजी ने उचित आदर के साथ प्रणाम किया। मातृमूर्ति के सामने उनका मस्तक यों भी सदा नत रहता था। बाबूसाहब पास के एक छोटे कमरे में जाकर कपड़े बदल आये।

मिस घोष इसी समय आकर श्रीमती मेरी से बोली—'मैं प्रतिभा से कुछ बातें कर रही हूं, आपके साथ मेरे जाने की आवश्यकता तो नहीं है?"

मेरी ने तुरन्त ही कहा, "कुछ नहीं। लेकिन तुम बाबू राधिकाकान्त के यहां जाकर उनसे कह देना कि आठ बजे के लगभग बँगले पर जरूर आवें।"

"अच्छा", कह कर मिस घोष प्रतिभा के कमरे में चली गयी।

बाबूसाहब शीघ्र ही साहबी ठाट में निकल आये और तीनों व्यक्ति मोटर में बैठ कर मिस्टर रामलखन के यहां चले।

[२२]

शाम के छः बजने पर एक पालकी गाड़ी कटरे के चौरस्ते पर एक मकान के सामने आकर खड़ी हो गयी। उसमें से तीन महिलाएं निकल पड़ीं। ये लक्ष्मी, पद्मा और जानकी महरिन थीं। पद्मा की गोद में उसकी नन्हीं बालिका शान्ता थी।

कमलाशंकर इसी मकान के ऊपर के कमरे में शाम की सैर के लिए कपड़े पहन रहा था। उसने वहीं से गाड़ी को खड़ी होते देख कर समझ लिया कि अजीत के घर की स्त्रियां हैं। सम्भव है, प्रतिभा भी आयी हो, यह सोच कर उसका कलेजा बाँसों उछलने लगा। झटपट पोशाक ठीक करके वह नीचे उतरा, किन्तु प्रतिभा को न आयी देख कर अपने नैराश्य-भाव को दबाता हुआ बोला—"अम्मा, आज तो बहुत दिनों के बाद मेरे घर आयी हो, कुछ खाने को भी लायी हो?"

लक्ष्मी ने मुस्कराकर कमलाशङ्कर की मां से कहा—"देखती हो अन्नपूर्णा बहिन, तुम्हारा लड़का बड़ा चटोरा है। यह तो मेरे जैसी चटोरी मां के पाले पड़ा होता तो अच्छा होता। इसे लहसुन और प्याज से परहेज करने वाली तुम्हारी सी मां मिली और मुझे लड़का और लड़की दोनों सादे स्वभाव के मिले। उनके मारे मुझे और बाबू जी दोनों को बड़ी अड़चनें पड़ती हैं। पं० हरिहर सुकुल से तो मछली खाने ही के सम्बन्ध में अजीत से एक बहुत बड़ी बहस हो गयी थी, उसमें

मैंने सुना था, कमल ने भी मछली खाने के पक्ष में अपनी राय दी थी।"

कमलाशङ्कर ने मुसकरा कर अपनी मां की ओर देखते हुए कहा—"अम्मा, मैं सुकुल जी की केवल यही एक बात पसन्द करता हूं। सच कहता हूं अम्मा, मछली की आँख के पास का हिस्सा दिमाग के लिए बहुत लाभकारी है।"

अन्न०—"चुप रह, जब देखो तब यही कहा करता है। जिस दिमाग को ठीक करने के लिए किसी की हत्या करनी पड़े वह भी कोई दिमाग है। संसार में इतने साधु-संत हो गये, क्या उन सब के दिमाग नहीं था, एक तू ही दिमाग वाला पैदा हुआ है? लक्ष्मी बहिन, अच्छा तो हो, आओ हम लोग लड़कों को अदल-बदल लें।"

लक्ष्मी को बोलने का अवसर न देकर कमलाशङ्कर ने कहा—"अम्मा, पहले के सब ऋषि-महर्षि मांस खाते थे।"

अन्नपूर्णा ने बात काट कर कहा—"ले दो-चार नारंगियां लेनी हों तो ले, नहीं तो जहाँ जाता है, जा।"

कमलाशङ्कर ने अब कुछ और बातचीत न बढ़ा कर टोकरी में से दो नारंगियां और एक सेब निकाल लिये। आज का पद्मा का ठाट निराला था। रेशमी साड़ी, रेशमी जैकेट, उम्दा शू और मोजे सोने से शरीर की सहज अनुपम शोभा को दुगुनी कर रहे थे। कमलाशङ्कर ने देखा कि मनोहरता की दौड़ में पद्मा प्रतिभा से बहुत पिछड़ी हुई नहीं है। हां, यदि प्रतिभा में लज्जा, संकोच, और सरलता की प्रचुरता है तो पद्मा में थोड़ी बहुत ढिठाई है, मुग्ध करने की प्रयत्नशीलता है; यदि प्रतिभा लापरवाह कली है, तो पद्मा भ्रमर-गुञ्जार की अपेक्षा करने वाली रसिका माधवी लता है; दोनों में अनूठापन है।

कमलाशङ्कर पद्मा की ओर एक स्निग्ध दृष्टि-निक्षेप करता हुआ साइकिल लेकर बाहर की ओर घूमने को चल दिया।

कमलाशङ्कर थोड़ी दूर गया था, इतने ही में मिस घोष सामने से साइकिल पर आती हुई दिखाई पड़ी। पास आकर वह मुसकराती हुई साइकिल पर से उतर पड़ी। 'गुड ईवनिंग मिस घोष' कहता हुआ कमलाशङ्कर भी साइकिल पर से उतर पड़ा। मिस घोष ने भी गुड ईवनिंग कहा। दोनों सड़क से कुछ अलग खड़े होकर इस प्रकार बातचीत करने लगे:—

कमलाशङ्कर—"मिस घोष! आज तो आप बहुत ही खूबसूरत दिखायी पड़ रही हैं।"

मिस घोष ने मधुर मुसकराहट और सरल नेत्र-कटाक्ष के साथ कहा—"क्या सचमुच? मैं तो आपका विश्वास नहीं करती, प्रतिभा न जाने कैसे करती है।"

कम०—"बस जो कुछ कमी थी उसे आपकी अभी की मुसकराहट ने पूरा कर दिया। आप मेरा विश्वास क्यों करेंगी? बाबू राधिकाकान्त तो विश्वास करने के लिए मौजूद हैं ही। उनको तो आपने खूब पढ़ाया; नेकटाई लगाना भी सिखा दिया; मास्टर हो तो आपकी तरह, जिसे पढ़ावे उसका पूरा चोला बदल दे। कुछ कविता करना भी उन्हें सिखाया या केवल कोट पैण्ट ही पहना कर छोड़ दिया?"

मिस घोष—"आपकी तो सारी बातें पहेली की सी होती हैं। मैं उन्हें कविता सिखाऊँगी या स्वयं उनसे सीखूँगी? जान पड़ता है प्रतिभा ने आपको कविता करना सिखा दिया है, क्योंकि अब आपकी सौंदर्य-रसिकता बहुत बढ़ी हुई मालूम होती है। आपकी बातों में भी कुछ विशेष सरसता आ गयी

है। प्रतिभा का एक संदेश लेकर आप ही के यहाँ तो जा रही थी।"

क०—"तो उस सन्देश को सुनने के लिए घर चला चलूं या यहीं सुना दोगी?"

मिस घोष—"कल आप घर चले जाने वाले हैं। आपका विरह उसे बहुत अखर रहा है।"

मिस घोष के अधरों पर एक हलकी मुसकराहट की रेखा खिँच गई।

क०—"तो मैं भी तो वहीं जा रहा हूं।"

मिस घोष—"चलिए, राधिका बाबू को श्रीमती घोष का संदेश देकर मैं अभी आती हूं।"

यह कह कर मिस घोष साइकिल पर चढ़ कर चल दी। कमलाशङ्कर भी साइकिल हाथ में लिये लिये प्रतिभा के बँगले की ओर बढ़ा। रास्ते में वह यही सोचता चला जाता था कि सौन्दर्य कितने रूपों में स्वयं को प्रकट करता है। प्रतिभा की सरलता में, लज्जाशीलता में, गम्भीरता में, मौनता में एक अनूठा मिठास है; पद्मा के प्यासे नेत्रों की धृष्टता में एक और ही रस है; और मिस घोष की चपलता, परिहासप्रियता, और भारतीयता के रंग में डुबोकर योरोपीय फैशनों को ग्रहण करने की विदग्धता का तो अलग ही एक निराला स्वाद है। इन विचारों में डूबा हुआ कमला-शङ्कर क्रमशः बँगले के पास आ गया। इसी समय जंजाली बाहर आता हुआ दिखायी पड़ा। कमलाशङ्कर की जान में जान आयी। उसने उससे पूछा—"क्यों रे, बाबू जी क्या कर रहे हैं?"

जंजाली ने उत्तर दिया—"आज तो भइया जी तनिक छुट्टी मिली है, न बाबूजी हैं, न बच्चा बाबू हैं। मिल वाले ईसाई बाबू की मेम साहब आयी थीं; उन्हीं के साथ बाबू जी और पं०

हरिहर सुकुल मोटर में बैठ कर अभी अभी घूमने गये हैं और बच्चा बाबू दोपहर से ही क्या जाने कहां हैं। बबुई को छोड़ कर अम्मा आदि तो आप ही के यहां गयी हैं।"

कमलाशङ्कर का कलेजा उछलने लगा। उसने मन ही मन कहा—हे भगवन्! ऐसे सुन्दर समय में क्या तुम मेरी चिर-कालीन अभिलाषा की पूर्ति करोगे? क्या प्रियतमा के बिम्बा-फलोपम अरुण अधरों का मधु-पान करने का साहस मुझे दोगे?

कमलाशङ्कर ने सोचा—संयोग तो देखो; कितनी अनुकूल परिस्थिति है! चाई और उस्ताद जंजाली कर्नलगञ्ज की ओर चला ही गया है। रहा भगवान चपरासी—सो वह सीधा-सादा भक्त आदमी प्रेमियों की दाव पेच की बातों को क्या जाने? पलटूदास और कबीरदास की दो एक भजनों की चर्चा उससे कर लेने पर प्रतिभा के कमरे की ओर चला जाऊँगा तो उसे तनिक भी संदेह नहीं होगा। फिर उस बेचारे को अभी हम लोगों के प्रेम की बात का ही क्या पता? कमलाशङ्कर का मस्तिष्क इन विचारों में मग्न था, उधर उसके पैर धीरे-धीरे उसे बँगले की बरसाती के पास ले आये। भगवान उस समय रैदास की एक भजन पढ़ रहा था। उसे कमलाशङ्कर के आने की आहट नहीं मिली। कमलाशङ्कर ने मुसकरा कर कहा—"भग-वान क्या पढ़ रहे हो?" एकाएक भगवान का ध्यान भङ्ग हो गया। उसने कुछ लज्जित होकर प्रणाम किया और नम्रता से पूछा—"हुजूर, आप कब आ गये? भला देखिए तो मैं ऐसा बेखबर हो गया कि आपका आना मुझे मालूम नहीं हुआ। भइया जी! अपनी भाग को सराहता हूं कि ऐसा दयालु मालिक पाया। बाबू साहब मेरी बेखबरी पर बहुत तरह देते हैं; कभी

रही थी और जंजाली तथा जानकी महरिन के ऊपर मन ही मन कुड़मुड़ा रही थी।

प्रतिभा अपने कमरे में चली गयी। कमलाशङ्कर ने महराजिन से कहा—"महराजिन! भूख लगी है, दो एक रोटी दोगी? आऊं?"

महराजिन ने बहुत अधिक परिश्रमी होने का भाव दिखाने की चेष्टा करते हुए कहा—"भइया, रोटी की क्या कमी है। बैठ जाओ बात की बात में तैयार किये देती हूं। क्या कहूं, जानकी महरिन जरा काम से चली गयी तो जंजाली से यह तक न हो सका कि आटा तो गूँध देता। और कोई बात नहीं, अकेली ही सब काम करती हूं तो देर हो जाती है।"

कमलाशङ्कर ने कहा—"अरे आध घण्टे में तो दोगी, तब तक मैं यहां बैठा हूं।"

यह कह कर वह प्रतिभा के कमरे में चला गया।

प्रतिभा एक सोफे पर बैठी थी। कमलाशंकर पास की एक कुर्सी पर बैठ गया।

प्रतिभा ने उदासी के साथ कहा—"कमला बाबू, मेरा तो सर्वनाश हो गया। पिता जी ने आप के समस्त पत्रों को देख लिया। भाभी को न जाने क्यों मुझसे बैर है। मेरी असावधानी से उन्होंने लाभ उठा लिया।"

क०—"तो प्रतिभा, इसमें घबराने की क्या बात है? हत्या और प्रेम कहीं छिपाने से छिप सके हैं? कब तक अम्मा और बाबू जी को यह बात न मालूम होती? जब एक न एक दिन इस संकट का सामना करना ही पड़ता तब समझलो आज ही वह दिन है। तुम तो बहुत अधिक निराश जान पड़ती हो।"

प्र०—"हाँ, मैं निराश ही हूं। कई दिनों से मुझे भयंकर स्वप्न

दीख रहे हैं। आज रात को मेरा मस्तिष्क अत्यन्त उत्तेजित और हृदय बहुत पीड़ित था। कोई बारह बजे मुझे नींद आयी। स्वप्न में देखा कि मैंने इस घर में आग लगा दी है, जिसमें पिता जी और भइया जी जल कर राख हो गये, और मैं स्वयं अधजली तड़पती हुई पड़ी हूं। मेरी समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूँ।"

यह कह कर उसने अपनी सजल आँखें भूमि पर गड़ा दीं।

क०—"प्रतिभा तुम आवश्यकता से अधिक निराशा-वादिनी हो। मैं तो इस आशा से आया था कि तुम्हें एक आनन्द-समाचार सुना कर प्रसन्न करूँगा। सो तुम्हारी उदासी ने तो मेरे उल्लास-भाव को ऐसा दबा दिया कि अब कुछ कहने-सुनने का मेरा साहस ही नहीं होता।"

प्रतिभा ने दृष्टि उठाकर पूछा—"वह कौन सा आनन्द समाचार?" उसके चेहरे पर ऐसा भाव छा गया जैसे डूबते हुए को तिनके का सहारा मिलने की आशा हो गयी हो।

क०—"तुम्हारे भइया हम लोगों के विवाह में पूरी सहायता देने को तैयार हैं।"

प्रतिभा ने कमलाशङ्कर की ओर से अपनी दृष्टि को हटाते हुए निराश भाव से उत्तर दिया—"यह तो मुझे मालूम है। आज ग्यारह बजे के लगभग उन्होंने मुझे एक पत्र भिजवा दिया था, जिसमें विश्वास दिलाया है कि रामलखन सिंह के साथ मेरा ब्याह न होने पावेगा। कल रात को आप की और उनकी जो-जो बात चीत हुई थी वह सब भी लिख दी है। यह लीजिए पत्र देख ही न लीजिए।"

यह कह कर प्रतिभा ने अपनी जैकेट के जेब में से एक पत्र निकाल कर कमलाशङ्कर के हाथ मे रख दिया।

कमलाशङ्कर ध्यान से पढ़ने लगा। प्रतिभा उसके मुख-चन्द्र की ओर चकोरी की तरह निहारने लगी। शायद वह मन ही मन कह रही थी—"कमलाशङ्कर! तुम मेरे स्वजातीय क्यों न हुए? और यदि नहीं हुए तो इतना मनोहर रूप और मधुर स्वभाव तुम्हें क्यों मिला जो तुम्हें देखे बिना मुझे क्षण भर को कल नहीं पड़ती।"

कमलाशङ्कर ने पत्र पढ़कर सिर उठाया और कहा—"प्रतिभा! इतना प्रोत्साहन-पूर्ण पत्र पाकर भी तुम दुखी हो, यह किसका दोष है?"

प्रतिभा ने तुरन्त ही उत्तर दिया—"मेरे हृदय का। यों तो मैं कल्ह से ही अधमरी सी हो रही हूं, किन्तु इस पत्र को पाने के बाद से तो मेरा कलेजा और भी काँप रहा है। भइया को पत्र भेजते समय यदि मुझे इतनी भयंकर सम्भावनाओं की आशङ्का हो सकती तो मैं वह पत्र कदापि न लिखती। मिस घोष की बात मैंने व्यर्थ मानी। मेरी लगायी हुई इस आग में आप भी व्यर्थ ही झुलस उठेंगे। आप की माता मुझे पुत्र-वधू के रूप में कब स्वीकार कर सकती हैं। मुझे तो जान पड़ता है कि दो कुटुम्बों को भस्म कर डालने का अपराध मेरे ऊपर लग कर रहेगा।"

प्रतिभा की आँखों से आँसू ढलक कर कपोलों पर आ गये। थोड़ी देर रुक कर वह बोली—"कमला बाबू! क्या आप मेरी एक बात मान लेंगे?"

कमलाशंकर ने सशंक होकर कहा—"प्रतिभा! यह क्या कहती हो? आज तक जब से मेरा तुम्हारा परिचय हुआ है,

ऐसा तो कोई अवसर नहीं आया जब मैंने तुम्हारी किसी इच्छा का विरोध किया हो। मुझे तुम्हारे इस प्रश्न के कारण कुछ भय हो रहा है।"

इस समय कमरे में अँधेरा हो रहा था। कमलाशङ्कर ने मोमबत्ती जला कर प्रकाश कर दिया।

प्रतिभा ने कहा—"मैं चाहती हूं कि आप अपना बनारस वाला विवाह कर डालें, और मुझ अभागिनी को सदा के लिए भूल जायं। मुझे आप साँपिन से कम न जानिए। जो मुझे प्यार करके पालेगा मैं उसी को डसूँगी; उसी का सर्वनाश करूँगी। ऐसी दशा में आप का मुझे त्याग देना ही अच्छा है। मेरा और आपका मिलना ईश्वर को ही स्वीकार नहीं है। यदि ऐसा होता तो हम दोनों भिन्न भिन्न जातियों में न उत्पन्न होते।"

प्रतिभा यह कहती जाती थी, उधर आँसुओं की लड़ी नेत्रों, कपोलों और वक्षस्थल तीनों में अटूट सम्बन्ध स्थापित कर रही थी।

कमलाशंकर के लिए यह असह्य हो गया। उसने प्रतिभा के निकट जाकर अपने रेशमी रूमाल से उसके आँसू पोंछ दिये। सहानुभूति दिखाने के साथ ही साथ वासना की आज्ञा पालन करने का भी अच्छा अवसर मिल गया। रूमाल के अतिरिक्त कमलाशंकर के हाथों की कोमल उँगलियों का भी प्रतिभा के कपोलों से स्पर्श हो गया। वेदनाओं और पीड़ाओं को थपकियां देकर सुलाने वाला एक उन्मत्तकारी भाव प्रतिभा के हृदय में पैठ गया; उसके शरीर के रोंगटे खड़े हो गये। कमलाशंकर की रसना ने मानो स्वर्गीय मधु की एक बूँद का आस्वादन कर लिया।

दरवाजे की ओर जाकर उसने देखा कि अभी महराजिन

बटलोही में दाल डाल चुकी है और तरकारी छौंकने जा रही है। वह आकर प्रतिभा के बगल में ही बैठ गया। लोग चिन्ताओं को भुलाने के लिए, वेदनाओं से छुटकारा पाने के लिए नशे का सेवन करने लगते हैं। जब उद्विग्न प्रतिभा को कमलाशङ्कर ने नशे की पहली खूराक दी, तब उसने कोई आपत्ति नहीं की; यही नहीं, उसने उसमें शान्तिदायिनी मधुरता का अनुभव किया था और यद्यपि दूसरी खूराक के लिए स्पष्ट और क्रियाशील आग्रह नहीं था, तथापि उसके स्वीकृत होने की आशा थी।

प्रतिभा अन्यमनस्क सी होकर चुपचाप बैठी हुई थी। उसे यह भी पता नहीं था कि कब उसके सिर पर से कपड़ा सरक गया। मनोहर केशों की कमनीयता को देख कर कमलाशङ्कर का हृदय बेकाबू हो गया। उसने अलकों की एक पंक्ति को अपने हाथों में लेकर उसे चूम लिया। प्रतिभा को इसका कुछ पता न था। कमलाशङ्कर इस समय जीवन के अलौकिक आनन्द का अनुभव कर रहा था।

कमलाशङ्कर की दृष्टि कभी प्रतिभा के गोरे गोरे गालों पर जाती; कभी सुग्गे की सी नाक में लटकती हुई बुलाक की अनुपमता पर ही वह अपने आपको वार देता; कभी अधरों की अरुणिमा और कभी सुराहीदार अनमोल गरदन की सुघरता उसे मोल ले लेती थी। हरे, हलके, पतले रेशम की जाकेट और चौड़े किनार वाली रेशमी साड़ी, सोने के कंकणों और एक एक चूड़ियों से सुभूषित कलाइयां, स्लीपरों में पड़े हुए फूल से भी कोमल चरण—जहाँ कहीं उसकी आँख जाती थी उसे विवश करने वाली सामग्री ही दिखायी पड़ती थी।

कमलाशङ्कर ने सोचा—देखो तो हिन्दू-समाज के बन्धनों

को ! हिंदुओं के कठोर नियन्त्रण ने कामदेव की इस सेनानेत्री को भी कितना त्रस्त कर रखा है !! जिसकी एक मुसकराहट देवताओं को भी विवश कर सकती है, जिसका एक नयनवाण सम्राटों को परास्त कर सकता है, उसी को जाति के नियमों ने कस कर कितना बेकस बना डाला है !!!

कमलाशङ्कर का मस्तिष्क इन विचारों में मग्न था, इधर उसके हाथों की उँगलियां प्रतिभा के कोमल करों की उँगलियों के साथ प्रेम-सम्बन्ध स्थापित कर रही थीं। उसके लिए यह कम अचरज की बात नहीं थी। प्रतिभा से उसका चार वर्षों का परिचय था और इधर प्रायः एक वर्ष से दोनों में स्नेह था। यह सब होते हुए भी उसे आज का सा सौभाग्य कभी नहीं प्राप्त हुआ था। प्रतिभा की सबल विचार-धारा और धार्मिक प्रवृत्तियां उसके स्वभाव की प्रधान अंगरूपा थीं। ईसाई मेम द्वारा अल्प अंगरेजी शिक्षा और मिस घोष आदि का उच्छृंखलतापूर्ण सम्पर्क भी उसके इन सहज गुणों को अधिक क्षति नहीं पहुँचा सका था। अपने अनुराग-रत्न को वह हृदय की इतनो अन्धकारमयी गुफा में छिपा कर रखती थी कि कभी कभी तो कमलाशङ्कर को तीखी निराशा का अनुभव करना पड़ता था। इस विचार प्रेरित प्रयत्न के अतिरिक्त प्रतिभा की प्रकृति में एक ऐसी सुकुमारता थी, लज्जा-संकोच की ऐसी विशेषता थी कि प्रणय की अग्नि में स्वयं जलती-भुनती रहने पर भी वह अपने प्रेमी को एक परिमित घेरे के बाहर जाने का साहस नहीं करने देती थी। कमलाङ्कर प्रतिभा की इस विचित्रता से हैरान था। यदि उसके वश की बात होती तो सम्भवतः वह अपनी तपस्या को ही छोड़ बैठता। परन्तु, लाचारी थी। प्रतिभा के प्रफुल्ल हास-विकसित अरुण कपोलों

और मद्-भरी आँखों का प्रभाव उसे क्षण भर के लिए भी मुक्त नहीं होने देता था।

आश्चर्य-मिश्रित आनन्द के साथ-साथ कमलाशङ्कर के हृदय में एक पश्चात्ताप-भाव का भी उदय हो रहा था। वर्तमान समय की सफलता ही उसके इस अनुताप का कारण हो रही थी। वह सोच रहा था—मैंने इतने दिन प्रतीक्षा में ही काट दिये! मुझसे अधिक भीरु कौन होगा? यदि मैंने थोड़ा साहस से काम लिया होता तो संभव है, मेरी आराध्य देवी ने बहुत पहले ही मेरी पिपासा का शमन कर दिया होता।

परन्तु, वास्तव में बात ऐसी नहीं थी जैसी कि कमला-शङ्कर समझ रहा था। किसी दूसरे समय में भी प्रतिभा इतनी ही परवश हो सकती, और कमलाशङ्कर को केवल साहस ही करने की आवश्यकता होती, यह समझना कमलाशङ्कर की भूल थी। प्रतिभा बड़ी संयमवाली युवती थी। वह कमला-शङ्कर को प्यार करती थी, परन्तु कुल-कलङ्किनी कहलाने को तैयार नहीं थी और अपने आचरण के प्रत्येक अंश की आप ही बड़ी कठोर आलोचिका थी। वह अपने नम्र सेवाशील स्वभाव, मधुरभाषिता, और अनुपम सौंदर्य के कारण पिता, माता, भाई और नौकर-चाकर आदि सभी की स्नेहपात्री थी; विशेष करके पिता की तो वह जीवन-सर्वस्व थी। अजीत से निराश बाबूसाहब अपने प्रेममय हृदय की पीड़ा को उसी के व्यवहारों द्वारा भुला पाते थे। स्वार्थ त्याग करके अपने पूज्य पिता, माता, और भाई आदि को प्रसन्न करना उसने लड़कपन से ही सीखा था। ऐसी दशा में अपनी तनिक सी उच्छृंखलता द्वारा, अल्प स्वार्थ के कारण, सत्य पथ से विचलित होने वाली कुमारिका वह नहीं थी। और,

हाथ से खोये हुए अवसर के लिए कमलाशङ्कर का इस समय का पछताना व्यर्थ ही था।

सच पूछिए तो आज की परिस्थिति ही निष्करुण और कठोर थी। इतनी निष्ठुर पीड़ा, दारुण वेदना ने प्रतिभा के फूल जैसे कोमल हृदय को कभी नहीं मसला था। भाभी का विश्वासघात, पिता का रोष, माता की अपमान-पूर्ण फटकार, भाई के ऊपर आनेवाले झंझटों की आशङ्का, फिर जिसके कारण यह सब हुआ उसका अर्थात् कमलाशङ्कर का वियोग—इन सबने मिल कर प्रतिभा को विक्षिप्त सा कर दिया था। इस कठोर परिस्थिति का प्रसार यहीं तक न था। उसने एक न एक काम में सदैव उलझी रहनेवाली प्रतिभा को अन्यमनस्क बना डाला। आज इच्छा रहते हुए भी वह रसोई घर में महराजिन की कुछ सहायता नहीं कर सकी। हारमोनियम बजाने में भी उसकी तबियत नहीं लगी। कविता ग्रन्थों ने भी ऊबे हुए चित्त को विश्राम नहीं दिया। मिस घोष भी आयी तो जल्दी मचाती हुई आयी और तनिक देर बैठ कर चली गयी। लज्जा और संकोच के कारण वह अम्मा और भाभी के साथ कमलाशङ्कर के घर नहीं जा सकी। उसे कभी अकेली न छोड़ने वाली लक्ष्मी ने भी उससे आज साथ चलने को नहीं पूछा। प्रतिभा को घर में अकेली छोड़ कर बाबू साहब बाहर जाने को तैयार नहीं थे, परन्तु घोष-पत्नी श्रीमती मेरी के आग्रह के कारण और यह देख कर कि मिस घोष प्रतिभा के साथ रहेगी, वे चले गये। इसी निर्दय परिस्थिति ने प्रतिभा को आत्म-विस्मृत और कमलाशङ्कर को परिस्थिति मनोरथ होने का अवसर दिया।

प्रायः बीस-पच्चीस मिनटों तक कमलाशङ्कर कभी प्रतिभा की अलकों को हाथ में लेकर उनकी सुगन्धि में अपार उन्माद

का अनुभव करते, कभी कलाई को हाथ में रखकर चूड़ियों और कंकणोंकी शोभा को अनिमेष निहारते और कभी कर्णफूलों को हाथ से छूकर उन पर हृदय की चोरी करने का अपराध लगा कर मन ही मन उलाहना देते रहे। वे जितने आनन्द-मग्न थे उतने ही सशङ्क भी थे; कहीं बाबू साहब न आ जायँ; कहीं अम्मा आदि न चली आवें; कहीं अजीत बाबू न पहुँच जायँ। उनकी दशा उस मनुष्य की सी थी जो पहाड़ की उद्दिष्ट चोटी पर पहुँच कर ऐसी जगह पैर रखने को स्थान पाता है, जहाँ से प्रत्येक क्षण फिसलने का भय लगा रहता है और अपनी इसी दुविधा के कारण सफलता का पूरा आनन्द भी नहीं उठा सकता।

प्रतिभा के अधरों तक अपनी पहुँच करने के लिए कमलाशङ्कर ने यथेष्ट प्रतीक्षा कर ली थी। परन्तु, रह रह कर उसका साहस हाथ से जाता रहता था। वह अपने ही आप से पूछता था—आज प्रतिभा में इतना परिवर्तन क्यों है? प्रतिभा की एक ओर भूमि पर गड़ी हुई खुली आंखों और रह रह कर वक्ष-स्थल को उभार देने वाले, दीर्घ निश्वासों से उसे उसके सचेत होने का निश्चय भी होता था; यही अवस्था उसे कुछ प्रोत्साहन दे दिया करती थी।

महाराजिन ने दाल, भात और तरकारी तैयार कर ली थी। इसलिए तवे को चूल्हे पर गरम होने के लिए रख कर वह उत्साह के साथ प्रतिभा के कमरे में आयी; परन्तु, यहाँ का दृश्य देख कर अवाक् हो गयी। प्रतिभा कमलाशङ्कर के बाहु पाश में बद्ध थी और कमलाशङ्कर के होंठ प्रतिभा के कपोलों पर थे। महराजिन इतनी तेजी से उलटे पाँव वापिस चली गयी कि कमलाशङ्कर को उसका आना मालूम ही नहीं हुआ। लेकिन,

प्रतिभा ने उसे आते और जाते दोनों बार देख लिया। वह एकाएक अपने को कमलाशङ्कर के बाहु-बन्धन से मुक्त करती हुई धीमें स्वरों में बोली—"कमला बाबू, मैं क्या कर बैठी! मुझ अभागिनी के कारण आप भी अयश भाजन हो गये। दई-मारी महराजिन अब अम्मा, भाभी, जानकी और जंजाली से इतनी लगी-लिपटी बातें कहेगी कि घर में मेरा रहना भी कठिन हो जायगा। जल्दी कीजिए, जाइये। कहीं पिता और अम्मा या भइया न आ जायँ। आह! मेरी सी अभागिनी कौन होगी!"

कमलाशङ्कर से कुछ उत्तर देते न बना। आनन्द और विषाद का इतना निकट सम्बन्ध देख कर वह चकित-स्तम्भित रह गया। जो घटना घट गयी, उसकी भयङ्करता का चित्र उसकी आँखों के सामने खिंच गया और थोड़ी देर तक वह यही न सोच सका कि अब क्या करूँ। न रहते बनता था, और न जाते बनता था। कमलाशङ्कर को किंकर्त्तव्यविमूढ़ देख कर प्रतिभा ने फिर कहा—"कमल बाबू, मेरा कहना मानिए, अब आप जल्दी चले जाइए, मुझे अपना परवा नहीं है। मुझे डर इस बात का है कि कहीं आप पर न आँच आये। जाइए, जाइए, चले जाइये। शरीर से आप भले ही मुझसे दूर हो जायँ परन्तु हृदय तो आप ही के साथ रहेगा।"

कमलाशङ्कर ने कहा—"अच्छा प्रतिभा, जाता हूँ। मेरा अपराध क्षमा करना। देखो भूल मत जाना।"

प्रतिभा ने घबराई हुई आवाज में कहा—"कमला बाबू, क्षमा करने वाली मैं कौन हूँ। अच्छा, क्षमा ही चाहते हैं तो लीजिए, मैंने आप को क्षमा किया। जाइए, अब जल्दी जाइए।"

कमलाशङ्कर ने अपने वेस्टकोट की जेब में से कार्ड के

आकार की अपनी एक फ़ोटो निकाल कर प्रतिभा के जाकेट की जेब में डाल दिया और चुपके से कमरे के बाहर प्रस्थान किया। भगवान चपरासी लालटेन की रोशनी में अभी रैदास की भजनें पढ़ने में ही लगा था। उससे कुछ बातचीत किये बिना ही कमलाशङ्कर साइकिल का लैम्प जला कर उस पर बैठ गया और कटरे की ओर चल दिया।

[२३]

जब मिस घोष कमलाशङ्कर को प्रतिभा का संदेशा देकर राधिकाकान्त के पास गयी तब वे उसके यहां आने को तैयार ही हो रहे थे। लेकिन जब उन्हें मालूम हुआ कि श्रीमती घोष देर से लौटेंगी और मिस घोष आज पढ़ लिख नहीं सकती तब वे दोनों बातचीत करते हुए कम्पनी बाग में चले गये और घंटे भर तक वहाँ वायु-सेवन करने के उपरान्त बँगले पर आये। श्रीमती घोष राधिका कान्त की बहुत अधिक प्रतिक्षा के बाद आयीं तो वे थक तो गयी ही थीं अपने काम में सफल हो जाने से इतनी अधिक प्रसन्नत थी कि सबेरे मिस्टर मार्क के छूट जाने का समाचार देने के अतिरिक्त उन्होंने उनसे विशेष कुछ बातचीत नहीं की।

सबेरे मिस्टर मार्क के छूट जाने पर यह तय पाया कि यथा-सम्भव शीघ्रही एक दावत दी जाय जिसमें बड़े बड़े सरकारी पदाधिकारी तो शरीक ही किये जायँ, कारखाने के कर्मचारी भी शामिल हों। इस दावत के प्रबन्ध का उत्तरदायित्व बाबू राधिकाकान्त पर विशेष रूप से डाला गया।

× × ×

लगभग दोपहरी में अजीत बाबू अपने बैठक में आराम कुर्सी

पर बैठे हुए एक पत्र लिख रहे थे। दरवाजे पर चिक पड़ी थी। बशीर अहमद ने उसे धीरे से उठा कर झुक कर सलाम करते हुए कमरे के भीतर प्रवेश किया। अजीत के ध्यान देने की कुछ प्रतीक्षा न करके वह एक ओर को फर्श पर बैठ गया।

पत्र का वाक्य समाप्त होते ही अजीत ने कलम और कागज बगल ही में रखी हुई एक छोटी मेज पर रख दिया और पीठ को कुर्सी में गिरा कर कहा—"कहो बशीर, क्या हाल-चाल है ?"

ब०—"भइया, रुपये की मां पहाड़ पर चढ़ती है। मुझ गरीब आदमी का पक्ष लेकर कौन झंझट में पड़े। सच बात कहने में कौन मेवा रखा है जो रुपये की हानि भी सहें और मार भी खायं।"

अजीत ने दांत पीस कर कहा—"ये बेईमान यह भी नहीं सोचते कि इनका भी यही हाल हो सकता है। ये लोग आपस में एका कर ही नहीं सकते। इस समय यदि सब लोग आपस में मिल जाते और तुम्हारे मामले को मजबूत बनाते तो बदमाश मार्क की नाक में दम हो जाता।"

ब०—"भइया, हिन्दुस्तान बिगड़ा किस बात से ? हम लोग तो आपस ही में एक दूसरे का गला काटते हैं। जो हो, न मुझे इस बात का मलाल है कि डाक्टर साहब इतनी ऊँची तनख्वाह पाते हैं और रिशवत लेकर झूठी रपट लिखते हैं, और न इसी बात का रंज है कि जिन्हें मैं अपना सच्चा मालिक समझता था वे भी मेरा साथ नहीं दे रहे हैं। मैं तो रुपये की महिमा को जानता हूं। रुपया सच को झूठ और झूठ को सच बना सकता है, इसका तो मैं सदा से कायल हूं। भइया, सच कहता हूं, एक आप ही को मैंने देवता पाया। बड़े आद-

मियों में एक आप ही को देखा जो गरीब की पुकार सुनते हैं, दुखिया के आँसू देख कर दुखी होते हैं।"

अ०—बशीर ! मुझे इस बात का बहुत रंज है कि बाबू जी ने तुम्हारा कुछ ख्याल न करके सच बात को जानते हुए भी मार्क का पक्षपात किया। इसके लिए मैं पिता जी से यथेष्ट प्रायश्चित कराऊँगा। बाबू जी समझते होंगे कि मुझे कुछ हाल ही नहीं मालूम; यह नहीं जानते कि मेरे जासूस इस शहर की घटनाओं की रत्ती रत्ती भर खबर की सूचना देते रहते हैं। मुझे श्यामलाल जी से सब बातें मालूम हो गयी थीं। बाबू जी आये बड़ी देर में, नहीं तो कल मेरी और उनकी कहा-सुनी हुए बिना न रहती।"

ब०—"नहीं भइया। इसके लिए आप बाबूसाहब को तकलीफ मत दीजियेगा। मैं तो उन्हें जानता हूं, वे देवता हैं; मेरे ऊपर तो सदा से दया करते आये हैं। कहां मैं छोटा सा आदमी, शाक-भाजी बेचने वाला, और कहाँ वे इतने बड़े बुजुर्ग ! फिर भी बड़ी दया करते हैं; भइया मैं तो यही जानता हूं कि इस जालिम मार्क को अल्लाह जरूर सजा देगा।"

अ०—"अच्छा, बशीर, अब तुम कहां और क्या काम करोगे?"

ब०—"नौकरी देने को तो बाबूजी ने ही कहा है। रियासत में एक जगह खाली हो गयी है। पर, भइया, मेरा तो दिल टूट गया। इतनी जिल्लत उठा कर पापी पेट के लिए कब तक चारों ओर फिरूं ? अब तो जी यही चाहता है कि जिसने मेरी इज्जत ली है उसे अपने ही हाथों नरक की आग में जलने के लिए ढकेल दूं। अंगरेजी राजकी बड़ी बड़ाई सुनी थी, उसका

इंसाफ देख लिया। अब अपने ही आप पापी को उसके पाप की सज़ा दे दूं।"

बशीर अहमद की आँखों में दृढ़ता थी और इस दृढ़ता के साथ साथ शान्ति, जैसे उसने अपनी सभी कठिनाइयों को हल कर लिया हो।

अ०—"बशीर! इस सम्बन्ध में तुम्हें जो कुछ करना हो तुम्हीं अच्छी तरह सोच लो। फिर आगे यह मत कहना कि अजीत बाबू ने मेरे उन्माद और पागलपन के समय मुझे समझा बुझा कर बुरा काम करने से रोका। इसकी सारी जिम्मेदारी तुम अपने ही ऊपर समझो। अपनी ओर से मैं यही कह सकता हूँ कि यदि किसी ने मेरी स्त्री का इसी प्रकार अपमान किया होता, मैं तुम्हारी ही तरह असहाय होता, और बड़े आदमियों ने इस तरह न्याय का गला घोंटा होता तो तुम जो करने जा रहे हो वही मैं भी करता।

इसी समय जंजाली ग्यारह बजे की डाक देकर चला गया। चिट्ठियाँ पढ़ लेने के बाद अजीत ने 'स्वाधीन जीवन' पढ़ना शुरू किया। यह पं० सदाशिव मिश्र का दैनिक पत्र था। पहले ही पृष्ठ पर पण्डितजी के जेल से छूट कर आने के समाचार के साथ साथ सम्पादकीय हर्षोद्गार प्रकट किये गये थे। सभाओं के स्वागत-सम्बन्धी प्रस्तावों, मिश्र जी के जय जय कारों, तथा सभी प्रकार के लोगों की स्तुति से पूर्ण विवरण को पढ़ कर अजीत सिंह का मन उत्साह से भर आया। उसने सोचा—कौन कह सकता है कि देश की वर्तमान दशा में वेदान्त का पाठ करना, माला जपना सर्वोत्तम है? काशी में सन्यासियों और वैरागियों की कमी नहीं है, उन सब के होते हुए भी वहाँ के अधिकांश निवासियों ने उस मनुष्य को सर्वोच्च आदर दिया

जो पूजा पाठ के नाम से चिढ़ता है, जो सन्यासियों को देश के लिए भार-स्वरूप समझता है और जो ईश्वर के अस्तित्व तक को अस्वीकार करता है। इसका क्या रहस्य है? सच बात यह है कि इस समय देश के सामने सब से बड़ी समस्या उसके स्वतन्त्र होने की है। कठिनाइयों की अधिकता के कारण यह काम हाथ में लेना म्याऊँ का ठौर पकड़ने के समान है। चालाक लोग इस संकट की आँच से बचे रह कर भी समाज में सर्वोच्च सम्मान पाने के लिए प्रयत्न करते हैं, और अध्यात्म और मोक्ष की दुहाई देकर मूर्खों की आँख में धूल झोंकते और अपना उल्लू सीधा करते हैं।

अजीत सिंह इन्हीं विचारों में ऐसे मग्न हुए कि उन्हें सामने बशीर अहमद के बैठे होने की भी सुधि न रही। उनके हृदय ने उछल कर कहा—मैं भी शीघ्र ही एक निर्भीक समाचार-पत्र निकालूँगा और अपनी सेवाओं से अपने देशबन्धुओं को प्रसन्न कर दूँगा। उनकी कल्पना-दृष्टि के सामने वह दृश्य भी सुस्पष्ट रूप से अङ्कित हो गया जब असीम निर्भयता का परिचय देकर वह कैदी होंगे और उनके मुक्त होने पर सहस्रों मनुष्य उनके दर्शनों के लिए उत्कण्ठित होकर दौड़े आयेंगे तथा कहीं भ्रमण करने के लिए निकलने पर विद्यार्थीगण उनकी गाड़ी खींचने के लिए हठपूर्ण अधीरता प्रदर्शित करेंगे; उस समय राधिकाकान्त को मालूम होकर रहेगा कि देश-सेवा किसे कहते हैं; मिस घोष पर भी इसका प्रभाव पड़े बिना न रहेगा।

इसी समय एक हलकी आंधी के झँकोरे की तरह उनके मन में मिस घोष से कोई उत्तर न पाने की चिन्ताजनक स्मृति उदित हुई और थोड़ी देर के लिए उन्हें अस्थिर बना कर न जाने

किधर को चली गयी। फिर वर्तमान विषय के सम्बन्ध में मन ही मन कुछ निश्चय करके वे कल्पना-लोक से उतरे। सब से पहला काम उन्होंने यह किया कि जिस चिट्ठी को लिख रहे थे उसे फाड़ डाला। फिर बशीर अहमद से कहा—"हां, तो बशीर सब बातों को समझ लो; क्योंकि तुम जो कुछ करोगे उस का बदला तुम्हें अवश्य मिलेगा।"

ब०—"भइया, मैंने सब सोच-समझ लिया। अब जिन्दगी में मुझे कुछ लज्जत नहीं मालूम होती। जब लज्जत थी तब गुलामी भी पसन्द थी, जब लज्जत ही नहीं रही तब जीने की भी इच्छा नहीं होती। बस अब तो कलेजे में—"

इसी समय श्यामलाल आ गया और अजीत के हाथ में एक शानदार लिफाफा देकर बोला—"लीजिए, यह मिस्टर घोष का निमन्त्रण-पत्र है। आज मिस्टर घोष के यहां दावत है।"

"कैसी दावत ?" अजीत ने पूछा

श्यामलाल कुछ कहना चाहता था, लेकिन बशीर को देख कर बात टालते हुए बोला—यह सब मुझे कुछ नहीं मालूम रास्ते में राधिकाकान्त ने मुझे दो निमन्त्रण-पत्र, एक बाबूसाहब के लिए और एक आप के लिए दिये थे। बाबू साहब को तो दे आया, आप भी अपना सम्हाल लीजिए। फिर मिलूँगा, अभी भोजन नहीं किया है।"

यह कह कर श्यामलाल अजीत के उत्तर का अथवा ठहरने के लिए अजीत को आग्रह करने का कोई अवसर दिये बिना ही चला गया।

निमन्त्रण-पत्र ने थोड़ी देर तक अजीत को बहुत अधिक क्षुब्ध बना रक्खा।

अजीत की चिन्ताशील मुद्रा ने ज्यों ही कुछ सरलता का स्वरूप पकड़ा त्यों ही बशीर उठ खड़ा हुआ और बोला—"भइया अब जाता हूं, अभी बहुत काम करना है। साँझ को फिर आपका दर्शन करने आऊँगा।"

बशीर की स्थिरता के भीतर अपार शोक के अस्तित्व का अनुभव करके अजीत बाबू को रोमांच हो आया। बशीर ने उनके पैर छूकर सलाम किया और जरा सा चिक उठा कर कमरे के बाहर प्रस्थान किया।

अजीत ने पुनः पत्र लिखना शुरू किया।

पत्र लिख कर, किवाड़ बन्द करके वे चारपाई पर लेटे और लेटे-लेटे 'स्वाधीन जीवन' के अन्य लेख पढ़ने लगे। थोड़ी देर में उन्हें नींद आ गयी। कोई साढ़े तीन बजे वह जागे तो मुँह-हाथ धोकर एक बार फिर सोचने लगे कि यह पत्र बाबू जी को दे दूँ या नहीं। किन्तु अब उन्होंने अधिक विलम्ब नहीं लगाया। उनके हृदय के भीतर से न जाने कौन बोल उठा—सम्बन्धियों को प्रसन्न करने के लिए अन्तरात्मा का हनन नहीं किया जा सकता। यह पत्र तो अब भेज ही दो। इस आदेश ने अजीत को पूर्ण रूप से दृढ़ कर दिया। उन्होंने एक कुर्त्ता पहना, सिर पर दुपलिया टोपी रक्खी, देशी जूता पैरों में डाला और जंजाली को बुलाकर वह चिट्ठी बाबूसाहब को दे देने की ताकीद की। इसके बाद वह साइकिल पर बैठ गंगाजी की ओर चल दिये।

मार्ग में अजीत बाबू चिट्ठी के परिणामों पर विचार करते चले। पिता जी ने मेरे सम्बन्ध में अभी जो आशाएँ बाँध रखी हैं वे सब इस पत्र के मिलने पर टूट जायँगी। विचार के लिए जब से मैंने तीन दिन का समय माँगा था तथा जैसी मृदुता से मैंने उनसे बातचीत की थी तब से और उससे

उनके हृदय में बहुत उत्साह का संचार हो गया था। उनको प्राय: निश्चय हो गया है कि अब मैं रास्ते पर आ जाऊँगा। बाबूजी की मानसिक अवस्था उस विद्यार्थी की सी है जो परीक्षा में अपने उत्तर के सही वा गलत होने का पता नहीं लगाता, बस यह सोच बैठता है कि मैं पास अवश्य हो जाऊँगा। पं० हरिहर सुकुल की सामुद्रिक-विद्या ने भी उनको इस विचार-धारा के साथ प्रवाहित होने में सहायता की है। उनकी यह आशा उनके अनेक व्यवहारों और शब्दों से प्रकट हो जाया करती है। और तब ऐसा जान पड़ने लगता है जैसे मेरे मस्तिष्क पर छापा मारकर वे उसे अपने वशीभूत करने की चेष्टा कर रहे हैं। आज यह पत्र लिख देने के बाद मेरा अन्तःकरण स्वतंत्र वातावरण में श्वास लेने के सुख का अनुभव कर रहा है।

ऊँट किस करवट बैठेगा, बड़ी देर तक अजीत बाबू यही सोचते रहे।

[२४]

जब तक कमलाशङ्कर बङ्गले के बाहर नहीं चला गया तब तक प्रतिभा का कलेजा धक् धक् ही करता रहा। बिजली जला देने के बाद वह चारपाई पर पड़ रही। इस समय उसकी दशा उस चोर की सी हो रही थी जो किसी के सामने मुँह नहीं दिखाना चाहता। आज उसके सामने एक गम्भीर प्रश्न खड़ा हो गया था—कमला बाबू से प्रेम-सम्बन्ध रखना सचमुच ही अनुचित है, या मुझमें नैतिक साहस की कमी है जो मैं इस तरह छिप छिप कर अपनी मानसिक प्रवृत्तियों की संतुष्टि कर रही हूं? बहुत देर तक मीमांसा करते रहने पर भी उसे कमला बाबू के साथ प्रेम करने में कहीं दोष नहीं दिखायी पड़ा। जो इतना सुन्दर है, इतना हृदयवान है, इतना तीव्र बुद्धि-सम्पन्न पुरुष है उसे

न चाहना तो असंभव ही है। हां, यदि नव-विकसित गुलाब प्रसून का प्रफुल्ल वर्ण देख कर मैं मोहित होती हूं, यदि सेमल और कचनार के विचित्र फूलों से लदे हुये तरु को मैं घण्टों अपलक निहारती रह जाती हूं, यदि गंभीर नील रंग से रंजित गरदन और चमकीले पंखों वाले मोर की अपार सुन्दरता देख कर मैं सुध बुध खो देती हूं, कदम्ब के सुरभित पुष्पों और आम्र के बौरों पर गुञ्जार करती हुई मधुकर-माला पर यदि मैं अपने आप को निछावर कर देती हूं, यदि सुधाकर के सुधावर्षी मुख की माधुरी मुझे अपनी अनुचरी बना लेती है तो समझ में नहीं आता कि मैं कमला बाबू को क्यों न प्यार करूं? क्या केवल इसलिए कि वे मनुष्य हैं, मैं प्रकृति के नियमों के विरुद्ध चल कर उनसे अकारण ही घृणा करने लगूं? नहीं, उन्हें प्यार करने का मुझे पूरा अधिकार है, और यदि मैं इसे खुल्लमखुल्ला नहीं करती तो यह मुझमें नैतिक साहस की कमी है। तो फिर इस नैतिक साहस ही को प्राप्त करने की चेष्टा क्यों न करूं? अच्छा तो बाबू जी को जो यह प्रणयकाण्ड रुचिकर नहीं है सो उसके लिए भविष्य में क्या करना होगा? नदी के बेगशील प्रवाह की प्रगति में जब कगारे बाधक हो जाते हैं तब वह उनका ध्वंस कर देने के लिए विवश हो जाती है। इसी तरह क्या मेरे प्रकृत प्रेम को भी पिता जी की इच्छाओं की अवहेलना करनी ही पड़ेगी?

परिस्थितियों से विवश हो जाने पर, विशेष कर उस अवस्था में जब किसी ओर से अपना दोष दिखायी नहीं देता, मनुष्य के हृदय में एक विचित्र साहस का संचार हो जाता है। प्रतिभा के हृदय में भी ऐसे ही साहस का उदय हुआ। किंतु वह साहस इतना बलशाली तो न था कि उसे अस्वभाविक रूप से सर्वथा चिन्ता-मुक्त बना दे। उसने अधिक से अधिक उसे इतना

स्थान दिया जितने में दैनिक सामाजिक जीवन में मिलने वाली निन्दा रूपही क्लान्ति से पीड़ित हृदय-खग के विश्राम करने के लिए वह-एकान्त अलक्षित गुहा के किसी अन्धकारमय भाग में संतोष के आलोक से आलोकित एक छोटा सा घोंसला बना सके। इस क्षीण आन्तरिक समाधान ने उसके विचलित मस्तिष्क को एकाग्र होकर अपनी शक्तियां संगठित करने का अवसर दिया और वह सोचने लगी कि किस प्रकार बिगड़ी हुई स्थिति सम्हाली जा सकती है। महराजिन को भाभी प्राय: झिड़कती रहती हैं, मैं ही उसे थोड़ा-बहुत सहारा दिये रहती हूँ, नहीं तो वह कब की यहां से विदा हो गयी होती। ऐसी दशा में उसे मेरी सहायता तो करनी ही चाहिए, अभी आज ही दोपहर को शान्ता ने मूलचन्द को धक्का देकर गिरा दिया था और भाभी ने भी उलटा उसे डाट-फटकार ही बतायी थी। उस समय मैंने ही मूल-चन्द को बहलाया था और मेरे व्यवहार को देख कर महराजिन ने मुझे कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से देखा था। यह सब तो ठीक है, किंतु फिर भी इस निगोड़ी का स्वभाव बड़ा विचित्र है। इसकी भलाई मैं करती हूँ, लेकिन वह भली बनना चाहती है भाभी की निगाह में; इसकी यह प्रवृत्ति यदि मेरे वर्तमान रहस्य का भण्डाफोड़ भाभी के सामने करने के लिए उत्साहित करे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। हलकी तबियत की है, इसलिए नौकरों-चाकरों से भी बिना कहे मानेगी नहीं। ऐसी दशा में इसे अभी बुला कर समझा दूँ तो क्या हर्ज है?—इस विचार-श्रेणी ने प्रतिभा के सामने एक कार्यक्रम उपस्थित कर दिया जिसकी सफलता और असफलता के सम्बन्ध में तर्क—वितर्क करती रह कर उसने अपने चित्त को थोड़ी देर तक पर्याप्त रूप से निमग्न रक्खा।

शीघ्र ही असमंजस का अन्त हो गया और प्रतिभा ने

महराजिन को आवाज दी। वह आवाज अपनी पूरी शक्ति के साथ मानो उसी का उपहास कर बैठा और उसका विरोध करने में असमर्थ होकर वह संकोच और लज्जा से दब सी गयी। जिस आन्तरिक समाधान ने उसे इतना ढीठ बना दिया था, उपहास की इस अक्रान्तकारिणी कल्पना ने उसकी नींव ही हिला दी। तुरन्त ही उसने सोचा कि शायद महराजिन ने मेरी आवाज सुनी हो और यदि सुनी भी हो तो वह न आवे तो बड़ा अच्छा। लेकिन उसका यह सोचना व्यर्थ था। महराजिन ने उसकी आवाज सुनी भी और यथा सम्भव शीघ्र ही वह प्रतिभा के सामने उपस्थित भी होकर बोल उठी—"क्यों बुलाया बच्ची?" प्रतिभा ने जा कुछ उससे कहने का निश्चय किया था वह इस समय इस तरह विलीन हो गया जैसे घनघोर घटाओं में सूर्य कीरणें। किंतु महराजिन बिलकुल अनाड़ी नहीं थी; उसकी चालीस वर्ष की उम्र घास छीलने में नहीं कटी थी, वह प्रतिभा का पूरा मतलब समझ गयी; यों कहना चाहिए कि जितना ही अधिक प्रतिभा समझाने में असमर्थ थी उतनी ही अधिक स्पष्टता से उसने समझा। वह बोली—"बीबी, तुम क्या समझती हो, मैं पागल थोड़े ही हूँ, क्या मैं नहीं जानती कि तुम मेरा और मेरे बच्चे का कितना हित करती हो। मेरी ओर से तुम निसाखातिर रहो।"

इसी समय जंजाली ने महराजिन को पुकारा और उसके बोलने पर सूचना दी कि बच्चा बाबू आ गए हैं, जल्दी खाना परोसो।

महराजिन रसोई घर में चली गयी।

प्रतिभा का जी धकधक करने लगा। कहीं भगवान चपरासी ही से बातों बातों में भइया न जान लें कि कमला बाबू

आये थे ! कहीं वे मुझसे कोई अटपटी बात न पूछ बैठें ! इस समय प्रतिभा का सारा आत्म-विश्वास न जाने कहाँ, सूर्योदय कालीन कुहरे की भांति, विलीन हो गया था।

अजीत के भोजन करने बैठते-बैठते लक्ष्मी, पद्मा और जानकी महरिन भी आ गयीं। प्रतिभा के धड़कते हुए दिल ने कहा—कहीं इन लोगों को कमला बाबू के यहां आने का हाल मालूम न हो गया हो।

शीघ्र ही लक्ष्मीदेवी ने उसके कमरे में प्रवेश करके हँसते हुए कहा—"क्यों री, तुझे इस कमरे में बंद रहने के लिए किसने कहा है ? चल मुँडेली छत पर चलें।"

इन शब्दों में वह प्यार और वह दुलार तो था ही जो प्रतिभा ने लड़कपन से ही अपनो मां से प्राप्त किया था, किन्तु आज तो उसमें निर्मल नीर की वह शीतलता थी जो प्यास से सूखे हुए होठोंवाले बटोही की सारी थकावट खींच लेती है। वह चुपचाप मां के पीछे पीछे मन्त्र-मुग्ध सी छत पर चली गयी।

× × ×

भोजन करने के बाद अजीत छत के दूसरे हिस्से में, जो पद्मा के अधिकार में रहता था, इस उद्देश्य से चला गया कि पद्मा की वर्तमान मानसिक स्थिति का कुछ ज्ञान प्राप्त करे। इस समय उसका वह नशा कुछ उतर गया था जिसके वशीभूत होकर मिस घोष के पास भेजने के लिए उसने प्रेम-सिक्त पत्र लिखा था और अपनी समझ में उसके पास रवाना भी कर दिया था।

अजोत ने पद्मा से खड़े खड़े पूछा—"क्यों तुम्हारा दिमाग़ अब तो ठीक है ?"

पद्मा ने शान्ता को चारपाई पर सुलाते हुए उत्तर दिया, 'तुम अपना दिमाग़ ठीक कर लो, मेरा तो ठीक ही है।'

अ०—"मेरे दिमाग़ में तुमने क्या ऐब पाया ?"

प०—"जाने दो इन बातों में क्या रक्खा है, मुझ पर जैसी बीत रही है मैं ही जानती हूँ। तमाम दुनिया का दुःख दूर करने का तो तुमने ठेका ले लिया है, बैर है तो मुझसे और इस लड़की से। ख़ैर, जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो, मुझे कुछ कहना-सुनना नहीं। आज तो तुम्हारी मेम साहब फिर आई थीं।"

अजीत ने चौंक कर पूछा, "मेरी कौन मेम साहब ?"

इस प्रश्न का उत्तर मिलने के पहले ही अजीत ताड़ गया कि हो न हो मिस घोष आयी हो। किन्तु अनजान सा बन कर उसने पद्मा के उत्तर की प्रतीक्षा की।

पद्मा ने कहा—"मिस घोष, जो तुम्हारी और तुम्हारी दुलारी बहिन दोनों की प्यारी सखी हैं।"

"तो उसका आना तो कोई नयी बात नहीं है। तुम्हारा ध्यान इधर विशेष रूप से क्यों आकर्षित हुआ ?"—अजीत ने कहा—

"इसलिए कि उसी ने तुमको भी बहकाया और बबुई को भी बहकाया। और पता नहीं, अभी वह क्या क्या करेगी !"

अजीत इस समय बहस नहीं करना चाहता था। वह चुपचाप सीढ़ियों पर उतर कर बाहर चला आया और चारपाई पर लेट गया। बीच बीच में उसने जंजाली से कई बार बाबू साहब के आने के बारे में पूछा। अधिक देर होने पर वह सो गया।

[२५]

बाबूसाहब के साथ प० हरिहर सुकुल बड़े विलम्ब से लौटे। उन्हें बोर्डिङ्ग के फाटक पर उतार कर बाबूसाहब ने कहा— "चलिए, निश्चिन्त होकर सोइए, मैं चार बजे ताँगा भेज दूँगा।"

जिस समय सुकुल जी संध्या को बाबूसाहब के यहां गए थे उस समय उन्हें यह ख़याल न था कि साढ़े दस बजे रात को छुटकारा होगा। कुशल यही थी कि उन्होंने भोजन बना कर बच्चों को खिला पिला दिया था।

सवेरे गाड़ी का समय होने के कुछ पहले ही सुकुल जी, उनके लड़के, कमलाशंकर, फूलबाला को गोद में लिए हुए अन्नपूर्णा तेवी तथा कमलाशंकर का नौकर सम्पति—ये सब स्टेशन पर पहुँच गये। थोड़ी देर में पश्चिम की ओर से महा विकराल रेल-दानवी गर्जन करती हुई आ गयी और सहस्रों नर-नारियों को उदरस्थ-सी कर के फक् फक् धूम्र-निष्कासन के व्याज काली कलूटी मेम की तरह सिगार-सा पीती हुई कलकत्ता-गामिनी हो गयी। इलाहाबाद से विन्ध्याचल के रास्ते में थोड़े से स्टेशन पड़ते हैं, सो यह अल्प काल ब्रजेश और प्रफुल्ल के उल्लासों को तथा फूलबाला का मनोहर हँसना, उछलना, रोना आदि देखने ही में व्यतीत हो गया। गंगा स्नान और दर्शन आदि से निबट कर सब लोग दोपहर की गाड़ी से काशी के लिए रवाना हो गये। खिड़की के बाहर दृष्टि डालने पर विन्ध्याचल की श्रेणी अपूर्व आनन्ददायिनी थी, कहीं ऊँची, कहीं नीची, कहीं अपूर्व सौन्दर्य-द्वारा मुग्धकारिणी और कहीं विचित्र आश्चर्य्योत्पादिनी। स्वभावतः विन्ध्यगिरि की पौराणिक कथ का प्रसंग भी छिड़ पड़ा और पं० हरिहर सुकुल ने उसे उत्साह·

पूर्वक अन्नपूर्णा देवी को सुनाया; बीच बीच में कमलाशंकर ने कथा की सत्यता के प्रति अविश्वाससूचक दो चार शब्द कह कह कर इस वर्णन की रोचकता को और भी सरस बना दिया। मुगलसराय में दूसरी गाड़ी के लिए थोड़ी प्रतीक्षा करने के बाद सब लोग काशी स्टेशन पहुँचे और वहां से घोड़ा गाड़ी में बैठ कर पं० सदाशिव मिश्र के घर की ओर चले।

गोधुलिया से दशाश्वमेध की ओर जाने वाली सड़क पर पं० सदाशिव मिश्र का प्रसाद-कल्प भवन था। लगभग साढ़े चार बजे सुकुल जी इस भवन के अतिथि हो गए। मिश्र जी ने बड़े आदर के साथ सब का स्वागत किया।

संध्या समय मिश्र जी के अनेक मित्र इकट्ठे हो गये। उनकी मंडली में बैठे कमलाशंकर को अभी थोड़ी ही देर हुई थी कि सम्पति ने आकर कमलाशंकर से कहा—'भइया, आपको अम्मा बुला रही हैं।' कमलाशंकर तुरन्त ही उठ कर चला। सम्पति बाजार की ओर गया।

कमलाशंकर को ठहरने के लिए कोठे पर एक कमरा मिला था। वह बेधड़क उसी कमरे की ओर चला जा रहा था। एकाएक, उसके पावों में जंजीर सी पड़ गयी। दीवाल में लगे हुए विशाल शीशे के सामने बैठी हुई एक लड़की लम्बे लम्बे बालों को छिटका कर उनमें कंघी कर रही थी। किवाड़ उसने अवश्य ही बन्द कर लिए थे, लेकिन खिड़की असावधानी से खुली ही रह गयी थी। पास ही केशरंजन तैल की शीशी और चँगेरी में दो तीन गुलाब के फूल रक्खे हुए थे। कमलाशंकर की प्रकृति ही में रूप की अनन्त प्यास निहित थी। यदि यह छवि की मूर्ति सी सलोनी कुमारिका गुलाब के फूल की तरह सौ सौ काँटों से घिरी होती तो भी कमलाशंकर

मधुकर-वृत्ति का अवलम्बन किये बिना न रहता, किन्तु यहां तो यह नव विकसित कमलिनी की तरह वह सहज ही सुलभ हो रही थी। अलकों से घिरा हुआ दर्पण में प्रतिबिम्बित मुख जैसे सृष्टि के सम्पूर्ण लावण्य का आगार हो रहा था। कमलाशंकर को लोक-लाज की सुधि जब इस समय रह गयी हो तब तो वह बाधाओं की चिन्ता से चौंके! बड़ी देर तक खड़े रह कर वह अनिमेष लोचनों से इस अपूर्व दृश्य का रस-पान करता रहा। अन्नपूर्णा देवी ने कमलाशंकर के आने में अकारण देर होती देख अपने कमरे के बाहर आकर जो दृष्टि डाली तो अपने दुलारे पुत्र की यह चोरी देख कर मुसकराती हुई वापस चली गयीं। लेकिन जाते जाते भी 'चंचला' नाम जोर से पुकार एक करामात कर ही गयीं। यह आवाज चंचला के कान में ज्यों पड़ी त्यों वह चौंक कर उठी और सामने ही अपने नवागन्तुक मेहमान को इस मुग्धता के साथ अपने रूप की चाह में रत देखकर होठों पर अनार के दाने ऐसे दाँतों की दमक से बिजली को बेहोश बनाने वाली एक लहर सी लहराते हुए उसने बिजली ही की तेज़ी से खिड़की बन्द कर ली।

इस घटना के बाद कमलाशंकर सीढ़ियों पर खट खट चढ़ कर उस कमरे में चला गया जहां अन्नपूर्णा देवी चंचला की मां कमला देवी के साथ हँस हँस कर कुछ बातें कर रही थीं। कमलाशंकर को बैठे थोड़ी ही देर हुई थी कि चंचला भी कुछ सकुचती हुई, कुछ झेंपती हुई आ गयी। यों तो उसके शरीर से छटा इस तरह लिपट गयी थी कि छिन भर के लिए भी छूटने का नाम नहीं लेना चाहती थी, किन्तु फिर भी स्नान करने तथा घने काले बालों में गुलाब का एक फूल गूँथ लेने से तो

शोभा की ऐसी अधिकता हो गयी थी जैसे एक पर एक रख दिया गया हो।

कमला देवी के पास ही चंचला सिकुड़ कर बैठ गयी।

अन्नपूर्णा देवी ने कमलाशंकर की ओर मुँह करके कहा—"क्यों कमल, चंचला से तो तेरा परिचय नहीं है न ?"

क०—"केवल इतना जानता हूं कि इनका नाम चंचला है।"

चंचला के लाल गालों पर और भी लाली दौड़ गयी।

अन्नपूर्णा ने कहा—"फूलबाला की मां के नाना और चंचला के बाबा चचेरे साढ़ू थे। अर्थात फूलबाला चंचला को अपनी मौसी कह सकती है।"

चंचला ने लज्जा से—जिसमें आन्तरिक उल्लास के भाव छिपाये नहीं छिपते थे—अपना शिर नीचा कर लिया। इसे कमलाशंकर ने चंचला का आत्म-समर्पण समझा।

अन्नपूर्णा ने फिर कहा—"अब तुम लोग एक दूसरे के प्रति अपरिचितों का सा व्यवहार मत करो, तुम एक दूसरे के बहुत निकट हो।"

मां की इस बातचीत का सारा रहस्य कमलाशंकर की समझ में आ गया।

अन्नपूर्णा देवी यह नहीं चाहती थीं कि कमलाशंकर इस परिचय को ही अपने बुलाये जाने का उद्देश्य समझे। इसलिए उन्होंने तुरन्त ही गम्भीर भाव धारण करके कहा—"हम लोग गंगाजी में नौका पर सैर करने चलेंगी। तुझे कपड़े वगैरह बदलना या स्नान करना हो तो कर ले। तब तक चाँदनी भी छिटिक जायगी।"

'बहुत अच्छा' कह कर कमलाशंकर वहां से उठा और अपने ट्रङ्क में से धोती निकालने लगा।

[२६]

पाँच बजे बाबू साहब मिस्टर घोष की दावत में जाने की तैयारी करने लगे। वे अपने साथ अजीत को भी ले जाना चाहते थे। कमिश्नर, कलेक्टर सभी इस दावत में शरीक होने वाले थे। ऐसी दशा में एक ही स्थान पर अजीत का परिचय करा देना उनके लिए बहुत सुविधा की बात थी। उन्होंने जंजाली को आज्ञा दी—'जा बच्चा को बुला तो ला।' जंजाली को तो अजीत के चले जाने की बात मालूम थी, उसने तुरन्त ही कहा—"हुजूर, वे तो कहीं घूमने गये हैं।" बाबू साहब ने डाट कर कहा—'अबे जा कमरे में देख तो आ, वहीं से बैठे बैठे जवाब देता है, शायद आ हो गये हों।" जंजाली को बाबूसाहब के मिजाज की पूरी जानकारी थी, उनके सामने सिकुड़ कर आधे हो जाने, नम्रता को साकार मूर्ति बन जाने की कला उसे मालूम थी। तुरन्त ही यह अभिनय करने के बाद वह अजीत के कमरे तक जाकर लौट आया। अजीत की चिट्ठी बाबूसाहब को दे देने का उसने यही ठीक अवसर समझा। उसके हाथ से पत्र पाकर बाबू साहब आशंका के साथ उसे पढ़ने में प्रवृत्त हुए। उसमें अजीत ने इस प्रकार लिखा था:—

'श्रद्धेय बाबू जी;

मैंने तीन दिन में अपने निश्चय की सूचना आपको देने का वादा किया था। वह समय आज आ गया है। मुझे इस बात का बहुत दुःख है कि मैं आपकी आज्ञाओं का पालन करने में असमर्थ हूं। अपने वर्तमान पथ का त्याग करने पर मैं सर्वथा सत्वहीन हो जाऊँगा; किसी काम का नहीं रह जाऊँगा। न तो मैं प्रतिभा के विवाह ही में आपको सहायता दे सकता हूं और न अपने सार्वजनिक जीवन को त्याग सकता हूं;

बी० ए० में फिर नाम लिखा कर पढ़ना तो बहुत दूर की बात है। बशीर अहमद के मामले में आपने जो कुछ किया है, उससे मुझे बहुत दुःख हुआ है।

आपका पुत्र
अजीत सिंह

इस पत्रको पढ़ कर बाबूसाहब के पैर-तले से जमीन ही खिसक गयी। वे निःसत्व और बेदम से हो गये। मिस्टर घोष की दावत में शरीक होने का सारा हौसला पस्त हो गया। दावत में जाने की कौन कहे, इतनी सी हिम्मत नहीं रह गयी कि पलँग से उतर कर खड़े रह सकें। बड़ी देर तक बेबसी की हालत में पड़े रहे। फिर सोचा कि यदि मैं दावत में भी न जाऊँगा तो अनर्थ हुए बिना नहीं रहेगा। अतएव, अपने को बहुत सम्हाल कर, कलेजे में चुभे हुए दुःख के बाण को किसी तरह निकाल कर तथा घाव पर समझ-बूझ की मरहम-पट्टी करके उन्होंने मिस्टर घोष के बँगले पर जाने का निश्चय किया।

× × ×

धीरे-धीरे सन्ध्या के छः बजने का समय आया। मिस्टर घोष के बँगले पर डाक्टर किशनलाल आई० एम० एस, बाबू जगजीवन सिंह तथा अन्य अनेक महानुभाव और महिलाएँ उपस्थित थी। मिस्टर घोष की ओर से मित्रां और शुभचिन्तकों को दावत दी जा रही थी। मिस्टर मार्क, मिस घोष, रामलाल राधिकाकांत आदि बड़ी तत्परता के साथ प्रबन्ध कर रहे थे। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी मित्रों के लिए यथोचित प्रबन्ध था। कलक्टर साहब और रामलखन सिंह अभी तक नहीं आ सके थे, उन्हीं की प्रतीक्षा की जा रही थी। जान पड़ता था, इस दावत को सफल बनाने के लिए ही इन्द्र महाराज ने ठण्डी हवा के साथ आकाश में बादलों को भी भेज दिया था।

बाबूसाहब को कुछ उदास और चिन्तित देख कर घोष-पत्नी उनकी बगल में जाकर बैठ गयी और उनकी ग्लान मुखाकृति को प्रफुल्ल बनाने का उद्योग करने लगीं।

बातों बातों में श्रीमती घोष ने कहा—"बाबूसाहब अजीत बाबू नहीं आये। क्या आप ने उनसे आने को नहीं कहा ?"

बा०—"कहूँ किससे ? उससे भेंट भी तो हो। मुझसे बात-चीत तक तो करता नहीं। कुछ कहना होता है तो नौकर के हाथ चिट्ठी भेज देता है। मैंने तो यह समझ लिया कि वह मेरा लड़का नहीं है, मेरा शत्रु है। उसकी तो चर्चा होने से भी मुझे दुःख होता है।"

घोष-पत्नी ने मन ही मन सन्तोष का अनुभव करते हुए कहा—"सचमुच, आप के पुत्र होने लायक तो वे नहीं हैं। भला बशीर अहमद की स्त्री से उनका इतना घनिष्ट प्रेम होना उचित था ? कहां आप का इतना ऊँचा कुल और कहाँ कुँजड़े की औरत !"

बा०—"वह सब कुछ कर सकता है। उसे ऊँच-नीच का तो खयाल ही नहीं है। कितना समझाया कि बेटा अपनी हर-कतें छोड़ दे, तुम्हारे कारखाने के बारे में भी उसे कितनी ताकीद की, पर सब कुछ व्यर्थ हुआ। अब वह इस बात पर बिगड़ा है कि मैंने बशीर अहमद का पक्ष क्यों नहीं ग्रहण किया। इस बिगड़े-दिमाग की समझ में यह तो आ ही नहीं सकता कि एक कुँजड़े की इज्जत और मिस्टर घोष की इज्जत में बहुत अन्तर है।"

घोष-प०—"वे ऐसा क्यों न करें बाबूसाहब ? इसी तरह तो वे मजदूरों में लोकप्रिय बनेंगे और उनकी औरतों से छिपे-छिपे छेड़खानी करने का अवसर पावेंगे।"

बा०—"किसी तरह प्रतिभा की शादी हो जाती, फिर मैं निश्चिन्त हो जाता।"

घोष-प०—"देखिए, आप लोगों में यही झंझट है। हमारे यहाँ तो विवाह का प्रायः पूरा काम युवक-युवती ही कर डालती हैं। हमारे मिस्टर मार्क और मिस घोष को देखिए। मार्क की उम्र तो पैंतीस वर्ष से कम न होगी, और फिर भी बेचारा अभी शादी नहीं कर सका। आपका लड़का होता तो शायद आप नित्य दो आंसू बहा लिया करते। लेकिन हम लोग निश्चिन्त हैं। आपकी प्रतिभा से तो मिस घोष दो-तीन वर्ष बड़ी ही होगी। प्रतिभा का शायद अठारहवां साल हो। लेकिन मिस घोष के विवाह की हमें कोई चिन्ता नहीं। इसी कारण तो मेरा विचार है कि हिन्दू समाज बहुत पिछड़ा हुआ है। लेकिन बाबू साहब, प्रतिभा के सम्बन्ध में मैंने कुछ और भी सुना है। कमलाशङ्कर,........"

बाबूसाहब ने बात काट कर कहा—"तुमसे यह बात किसने कही?"

घोष-पत्नी ने उत्तर दिया—"प्रतिभा की सखी ने ही मुझसे बताया। यदि यह बात हमारे समाज में हुई होती तो प्रतिभा और कमलाशङ्कर के जीवन को दुःखमय बनाने की कोई बात न की जाती।"

बाबूसाहब चोट खाकर झुंझलाते हुए बोले "सुनो, बात-बात में अपने समाज की प्रशंसा मत करो। तुम्हारे समाज में यदि कोई बात बढ़िया है तो यही कि मन-चले लोगों की तबियत बहलाने की यथेष्ट सामग्री उसमें है, तितलियों की तरह सजकर सब के मन को मोहनेवाली औरतों की बहुतायत है। यदि तुम्हारे समाज की किसी स्त्री ने मुझसे विवाह करना चाहा होता और

इस समय की परिपक्व बुद्धि मेरे युवक मस्तिष्क में होती तो मैं कभी न स्वीकार करता। इसका कारण केवल यही है कि तुम लोग सचमुच मनोरंजन की सामग्री हो। कष्ट के दिनों में, गृहस्थी में, तुमसे विशेष सहायता नहीं मिल सकती। जरा सी कोई बात हो जायगी, झट तलाक देने को आमादा हो जाओगी। दिल तो तुम लोग लुटाती फिरती हो, एक दिन किसी को दिया तो दूसरे दिन और किसी की बारी आयी। मेरे यहाँ की पार्टियों में इलाहाबाद के किस अंगरेज या ईसाई अफसर की मेम नहीं आती थी। मैं जिस किसी को चाहता था उसे डाली लगा कर, या शिकार-पार्टी आदि में साथ ले जाकर अपने वश में कर लेता था। जवानी के दिनों में मैंने भी बहुत सा समय उनके साथ नष्ट किया है, लेकिन सच कहने के लिए क्षमा करना, इधर कुछ दिनों से पाश्चात्य महिला-समाज के प्रति मेरे हृदय में तिरस्कार ही का भाव उत्पन्न हो रहा है और जिस तरह ईसाई मिशनरी लोग धन और नारी का प्रलोभन देकर हिन्दू बच्चों और युवकों को बहकाते हैं उस पर तो उन्हीं को लज्जा आनी चाहिए। मिस्टर घोष से तो किसी दिन मेरी गहरी लड़ाई होगी। बुढ़ापे के दिनों में हिन्दुओं को हड़प जाने की उनकी इच्छा बढ़ती जा रही है। उनकी आँख हमारे मास्टर राधिकाकान्त पर लगी है। मिस घोष के विवाह को वे इसी उद्देश्य-सिद्धि में सहायक बनाना चाहते हैं। क्या यह ईसाई-समाज की संकीर्णता नहीं है? क्या इस सम्बन्ध में हिन्दू-समाज अधिक पवित्र और उदार नहीं है? और फिर भी तुम मेरे सामने ईसाई समाज की प्रशंसा के गीत गाती हो।"

घोष-पत्नी को बाबूसाहब से ऐसा व्याख्यान सुनने की आशा नहीं थी। उन्होंने सोचा था कि संभवतः वे भी हिन्दू

समाज ही की निन्दा करेंगे। यदि बात किसी और ढंग से साथ ही और किसी समय चलायी गयी होती तो शायद बाबूसाहब ईसाई समाज की इतनी तीव्र आलोचना भी न करते। परन्तु एक तो अजीत के पत्र के कारण बाबूसाहब को मार्मिक पीड़ा हो रही थी, दूसरे घोष-पत्नी ने ईसाई समाज की अनावश्यक प्रशंसा हिन्दू समाज ऐसे अशिक्षित समाज में बाबूसाहब के बने रहने की ओर व्यंगपूर्ण संकेत करके उनके व्यक्तित्व को आहत भी कर दिया था!

किन्तु घोष-पत्नी बाबूसाहब के बदले हुए रुख के कारणों की ओर ध्यान नहीं दे सकीं। उन्होंने क्षुब्ध भाव से कहा, "बाबूसाहब, आज आप कैसी बातें कर रहे हैं! क्या आप को वह दिन भूल गया जब आप हमीं पाश्चात्य महिलाओं की मण्डली में बैठ कर हिन्दू समाज को कोसते थे, हिन्दू स्त्रियों की घूँघट बाजी और झेंप की निन्दा किया करते थे। उन दिनों तो आपने हम लोगों में से किसी से न कहा कि तुम्हारे साथ मनोरञ्जन करने के लिए मैं तुम्हें फुसला रहा हूँ। इस समय आपको चाहे जैसा मालूम हो रहा हो, पर उन दिनों ईसाई अथवा योरोपियन महिलाओं की तनिक सी अनुकूल भावभंगी पर आप निछावर होते थे। जो हो, बुढ़ापे में आप जवानी की गलतियों के लिए प्रायश्चित किये डाल रहे हैं, सो अच्छा ही कर रहे हैं। इस प्रायश्चित से सबसे अधिक आनन्द तो ठकुराइन साहबा को ही होगा, क्योंकि उनका दिन भर का भटका हुआ प्रेमी साँझ को उनके पास पहुँच गया है। रहीं हम लोग, सो अपने भाग्य को रोएँ कि हमारा एक बहुत सच्चा प्रेमी हाथ से निकल गया। हिन्दुस्तानियों की शायद यही विशेषता है।"

घोष-पत्नी के इस कथन का बाबू साहब पर बहुत प्रभाव पड़ा। जीवन के जिन थोड़े से अवसरों पर असंयत शब्द उनके मुख से निकल सके थे उनमें से एक अवसर यह भी था। उनकी मृदुभाषिता लोक-प्रसिद्ध थी और प्रायः महात्माओं की प्रियवादिता के निकट पहुँचती थी; यह बात और है कि उनके इस गुण का उद्गम किसी न किसी विकट स्वार्थ की सिद्धि के लिए होता था। घोष-पत्नी तो आज उनके नवीन विचारों का परिचय पाकर चकित थीं।

बाबूसाहब ने अपनी गलती को सुधारने का प्रयत्न करते हुए हलकी हँसी के साथ कहा—श्रीमती घोष, अब मैं सत्तावन वर्ष का तजरबेकार बूढ़ा हुआ, बहुत जमाना देख चुका। मैं स्वीकार करता हूँ कि अपनी जुवानी के दिनों में स्त्रियों की स्वतन्त्रता का मैं बड़ा प्रेमी था, अपनी घरवाली को भी ईसाई महिलाओं की भाँति स्वतन्त्र बनाना चाहता था और जब वह किसी तरह नहीं मानती थी तो खीझ कर उसकी निन्दा करता था, अपने समाज को भी पानी पी-पी कर कोसता था। यह सब सच होने पर भी और यह घोषित करते हुए भी कि तुम्हारे प्रति मेरे हृदय में अब भी उतना ही प्रेम है, जितना तब था, अपनी आज कल की राय को मैं प्रकट कर रहा हूँ कि हिन्दू विवाह-पद्धति, जिसमें वर-कन्या का विवाह माता-पिताओं की सम्मति पर निर्भर है, अन्य समाजों की विवाह-पद्धतियों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमानी का सूचक है; उसमें कहीं अधिक शान्ति, स्थिरता और सुख है। पाश्चात्य महिलाओं को हिन्दू स्त्रियों से पति-भक्ति का पाठ पढ़ना चाहिए।

घोष-पत्नी का चेहरा तमतमा आया, परन्तु कुछ न कह कर वह अन्यत्र चली गयीं।

इस बीच दावत की तैयारी समाप्त हो गयी थी और अब तरह तरह की चीजें तश्तरियों में सजा सजा कर रखी जाने लगीं। मिस्टर मार्क के सुप्रबन्ध से इस क्रिया में भी बहुत देर नहीं लगी। बाबू रामलखन सिंह तथा अन्य कई पदाधिकारियों के साथ कलेक्टर साहब भी आ गये। और अब बादलों के डर से सब मेहमानों ने भोग लगाना भी शुरू कर दिया।

बाबूसाहब फलों की कतरियों को मुँह में जबरदस्ती डाल रहे थे; उनका चित्त वास्तव में समस्याओं से उद्विग्न था। दावत में उनका जी नहीं लग रहा था।

पौने आठ बजे के लगभग दावत का कार्य समाप्त हुआ।

कोई आठ बजे के लगभग बाबूसाहब अपने बँगले पर पहुचे। जंजाली से उनका सबसे पहला सवाल यही था—बच्चा आये या नहीं ? जंजाली ने उत्तर दिया—आये हैं। बाबू साहब ने कहा—'जा, मेरे पास भेज दे।'

थोड़ी देर में अजीत बाबू आ गये।

बाबूसाहब बरामदे में पलंग पर लेटे थे। सामने अजीत को खड़े देखकर बोले—"क्यों तुमने क्या निश्चय किया ?"

अ०—"मैंने तो अपनी पूर्ण परिस्थिति पत्र में लिख कर आप को दे दी है।"

बा०—"उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन करने के लिए तुम तैयार नहीं हो ?"

बाबूसाहब के स्वर में कड़ाई थी।

अजीत ने दृढ़तापूर्व्वक उत्तर दिया—"नहीं।"

इस एक शब्द ने बाबूसाहब की आँखों के सामने अन्धकार ही अन्धकार उत्पन्न कर दिया। उन्होंने और कोई सहारा न

पाकर कहा—"केवल 'नहीं' कहने से काम नहीं चलेगा। इस 'नहीं' के परिणामों को भी भोगने के लिए तुम्हें तैयार होना चाहिए।"

अ०—"मैं जान बूझकर यह काम कर रहा हूँ। मैं सच्चाई और देशभक्ति के पथ का पथिक होना चाहता हूं, कितना ही अधिम कष्ट क्यों न उठाना पड़े।"

बाबूसाहब ने प्रभाव डालने की आशा से कहा—"जब तुम स्वतन्त्र हो और मेरी कोई बात नहीं मान सकते तो तुम्हें मेरे घर में रहने का क्या अधिकार है? जहाँ जी चाहे वहाँ जाकर रहो और अपनी कमाई से अपनी लड़की और बहू का पालन-पोषण करो।"

पिछले शब्दों को कहते समय बबूसाहब के स्वर में कुछ दुर्बलता आ गई थी; भावी अनर्थ की आशंका ने उसमें शिथिलता का सञ्चार कर दिया था।

अजीत ने गरज कर कहा—"धमकी आप मुझे क्या देते हैं? आपके बंगले में रहने के लिए, आप की रोटी खाने के लिए मैं आत्मा की हत्या नहीं कर सकता। यदि आप की यही इच्छा है कि मैं आपकी आँख के सामने न रहूँ तो लीजिए कल सबेरे तक मैं आप का महल खाली कर दूँगा। अब बेईमानी झूठ, छल, धूर्तता और चापलूसी की कमाई का भोग और पाखण्डमय पूजा-पाठ करके पाप-पङ्क का प्रक्षालन अनन्त काल तक करते रहिए। यदि यमराज का कोई दूत आवे तो उनकी एजण्टी करने के लिए दो-चार युगों का जीवन कमीशन में माँग लीजिएगा।"

यह कह कर अजीत बाबू उत्तेजना में भरे हुए फाटक की ओर चले और शीघ्र ही बंगले के बाहर हो गये। बाबूसाहब के मुंह

से एक शब्द भी न निकला। अजीत के दुराग्रहशील स्वभाव का खयाल करके उनका हृदय काँप उठा। क्रोध के स्थान में अनुताप से उनका हृदय पूरित हो गया। बड़ी देर से आकाश में काली घटाएं घिर रही थीं, अब वर्षा भी होने लगी। तड़ातड़ शब्द करती हुई बड़ी बड़ी बूंदें गिरने लगीं।

अजीत बाबू छाते के बिना ही चले गये थे। प्रिय पुत्र के कष्ट का खयाल करके बाबूसाहब का पितृहृदय रो उठा। उन्होंने जंजाली को बुलाया और छाता देकर कहा—"जा, दौड़ कर यह छाता बच्चा को दे आ। यह न कहना कि मैंने दिया है। पूछे तो अम्मा का नाम ही बताना और कहना कि चलिए, आप को अम्मा ने बुलाया है।"

जंजाली फुर्तीला नौकर था, उसे आज्ञा का पालन करने में देर नहीं लगी। परन्तु, लौट कर उसने बताया कि भइया ने किसी तरह वापिस आना या छाता लेना स्वीकार नहीं किया, यही कहा कि सबेरे शान्ता और शान्ता की मां को ले आने के लिए आऊँगा।

बाबूसाहब स्वयं छाता लगाकर फाटक तक चले गये थे। उन्हें एक क्षीण आशा थी कि सम्भव है, वह लौट आवे। परन्तु जंजाली की बातें सुन कर वे निराश हो गये और दुःख से भरे हुए आकर पलंग पर पड़ गये। रह रह कर अपने ही आप से पूछने लगे—आज मुझे हो क्या गया है? वहां दावत में श्रीमती मेरी से अंट-संट कह आया और यहाँ लड़के को दुतकार बैठा। वे यह जानने के लिए बड़े उत्कण्ठित थे कि मुझसे यह पागलपन का काम कैसे बन पड़ा। उनके मस्तिष्क ने शीघ्र ही इन प्रश्नों को हल करना चाहा। उसने कहा—जो कुछ हुआ वह अनुचित थोड़े ही है। श्रीमती मेरी ने हिन्दू-समाज पर दोषारोपण किया

था। उसका खण्डन न करने का अर्थ यह होता कि ऐसे पतित समाज को त्याग कर ईसामसीह की शरण में आ जाने का साहस और बुद्धि मुझ में नहीं है। मस्तिष्क के इन समाधानों का हृदय ने उत्तर दिया—जो हो, जिससे बहुत दिनों तक प्रेम का सम्बन्ध रहा है, जिसका अनुरोध अब भी मानना ही पड़ता है उसकी बातों का उत्तर कुछ कोमल शब्दों में, मार्मिक ढंग से दिया जा सकता था। अजीत के सम्बन्ध में भी बाबू साहब का मस्तिष्क हृदय के साथ इसी प्रकार विवाद करता रहा।

[२५]

मनुष्य जितने पाप कर सकता है उन सबमें विश्वासघात सब से अधिक निन्द्य है। मार्क ने बशीर अहमद को कारखाने के काम से अन्यत्र भेज कर उसकी स्त्री का सतीत्व जिस प्रकार नष्ट किया था और धनवानों ने मिल कर जिस तरह पूँजीपति का साथ दिया और गरीब बशीर अहमद का गला घोंटा था उससे उसके कलेजे में रह रह कर पीर उठती थी। वह स्वयं न विश्वासघात करना चाहता था और न धोखा देने की इच्छा रखता था, न वह इस कार्य में किसी और की सहायता की अपेक्षा करता था। उसने तो अपने आप ही, अपने ही हाथों, मार्क का काम तमाम कर देने का निश्चय कर लिया था।

मित्रों के चले जाने के बाद, जून के महीने में प्रयाग में रस का संचार करने वाली घटाओं का आकाश में जमघट देखते और ठण्ढी हवा का आनन्द लूटते हुए मिस्टर घोष, श्रीमती मेरी, मिस घोष, राधिकाकान्त और मिस्टर मार्क बड़ी देर तक ईसाई मत का गुण-गान करते रहे। जब बूँदें पड़ने लगीं तो सब लोग बरामदे में आये और ईसाई मत तथा हिन्दू मत की तुलना करने लगे।

मेरी०—"हिन्दू मत में छुआछूत का तो बेहद ढकोसला है। मजे की बात तो यह है कि चूहे खाने वाली बिल्ली तक । छुआ या जूठा तो खा लेंगे लेकिन मनुष्य का छुआ नहीं खायेंगे।"

मिस्टर घो०—"ईसामसीह ही की शरण में आने से हिंदुओं का उद्धार होगा। इसके बिना इनका अज्ञान मिटेगा नहीं। एक दो ऐब हों तो बताये जायं। बाल विवाह, विधवाएं, परदा, स्त्री-शिक्षा के प्रति उपेक्षा, भाग्य के भरोसे बैठे रह कर मक्खियां मारा करना, आपस में फूट आदि कितनी ही बातें तो हैं जिनके कारण हिन्दू-मात्र के पैर बँधे हुए हैं। वे आगे बढ़ ही नहीं सकते। उनके लिए तो; कल्याण का मार्ग यही है कि वे ईसामसीह की गोद में आवें। इसके बिना भारतवर्ष का उद्धार नहीं हो सकता।"

राधिकाकान्त—"आप जो कह रहे हैं सो मेरी समझ में नहीं आता। ईसामसीह की शरण में जाने का अर्थ यही तो है कि उनके सिद्धांतों के अनुसार चला जाय। उनका एक उपदेश यह है कि धन-संग्रह न करना चाहिए, क्योंकि धनवान के लिए स्वर्ग में जाना उतना ही कठिन है जितना सुई के छेद में से होकर ऊँट| का निकलना। लेकिन इसे कितने ईसाई मानते हैं? ईसाई मतानुयायी जर्मनी, इंग्लैण्ड, और अमरीका आदि देशों पर इस उपदेश ने कितना प्रभाव डाला है? स्वयं आप पर कितना प्रभाव पड़ा है, आपतो पादड़ी हैं।"

मिस्टर घोष—"मास्टर साहब, आप तो सभी धर्मों की आलोचना करके अन्त में वेदान्त के सुदृढ़ किले में सुरक्षित हो जायँगे। आप तो उस चील की तरह हैं जो किसी के शिर में चोंच मार कर आकाश में उड़ जाय। कृपा करके हिन्दू

समाज के प्रतिनिधि होकर बातचीत करिए तो मैं यह बता भी सकूं कि प्रभु ईसामसीह के चरणों में सिर नवाने से कितने लाभ हो सकते हैं ?"

रा०—"अच्छा, थोड़ी देर के लिए मैं अपने किले के बाहर ही आता हूं। अब बताइए।"

मिस्टर घोष—"क्या ईसा प्रभु की गोद में आने से विधवाओं का जीवन नहीं सुधर सकता ?"

रा०—"क्षमा कीजिएगा, विवाद चल पड़ने पर ही मुझे कुछ निवेदन करना पड़ रहा है। उनका जीवन सुधारने का क्या अर्थ है ? क्या यही कि विवाह हो जाय और दस-बीस प्रेमियों की मण्डली फूलों के प्रेमी भौंरों की तरह उनको घेरे रहे ?"

मार्क—"नहीं साहब, यही क्यों, गिरजाघर में जाकर प्रभु ईसा के उपदेश सुने और ईसाई धर्म के प्रचार में अपना जीवन बितावे। कहने का मतलब यह कि ईसाई मत ग्रहण करने से उस पर कोई वह अत्याचार न कर सकेगा जो हिन्दू समाज में होता है। यह तो सांसारिक सुख हुआ। और ईश्वर के बेटे की कृपा-पात्री बन कर वह ईश्वर के पास पहुँचेगी, यह आत्म का लाभ है।"

रा०—"यदि मेरे किसी शब्द के कारण किसी को कष्ट हो तो मेरी धृष्टता क्षमा कीजिएगा ! मैं पूछता हूं कि क्या गिरजाघर, जहां त्याग का आदर्श उपस्थित होना चाहिए, केवल युवकों और युवतियों के कटाक्ष-विनिमय और प्रणय-क्रीड़ा का स्थान नहीं है ?"

मार्क ने क्रोध का परिचय देते हुए कहा—"तो फिर आ के मन्दिरों और मठों में ही क्या होता है ? महन्तों औ

उनकी चेलिनियों की काम-लीला का हाल किसे नहीं मालूम है?"

घोष—"अजी, यह तो दुर्बलता से भरे हुए मनुष्यों की अवस्था ही है। दुखी, पापी मनुष्य को भूल से बचाने के लिए ही तो ईश्वर ने अपने प्यारे पुत्र को भेजा। फिर भी यदि अज्ञानी जन उसके उपदेशों से लाभ न उठावें तो किसका दोष है?'

राधि०—"पादरी साहब, आपका कहना बिलकुल ठीक है। न ईसाइयों की ही सब संस्थाएं निर्दोष हैं और न हिन्दुओं की ही। हिन्दुओं की संस्थाओं के विषय में तो एक बात यह भी कही जा सकती है कि वे ईसा और मुहम्मद आदि के उत्पन्न होने के हजारों वर्ष पहले की हैं। यों तो सभी क्षम्य हैं, परन्तु हिन्दुओं के सम्बन्ध में कोई विचार करते समय हमें उनकी सम्पूर्ण परिस्थिति को भी ध्यान में रखना चाहिये। जो हो, यह तो स्पष्ट है कि न कोई हिन्दू होने से निर्दोष हो सकता है और न ईसाई होने से। जिसे निर्दोष होने की आकांक्षा है उसे समस्त जातीय और साम्प्रदायिक पचड़ों से उसी प्रकार सम्बन्ध रखना पड़ेगा जैसे कमल-दल जल की बूँदों के साथ रखता है। इस पथ के पथिकों के लिए ईसामसीह, मुहम्मद, गौतम बुद्ध, श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण सभी गुरु-स्वरूप हैं और सब से शिक्षा-ग्रहण करने का वे प्रयत्न करते हैं।"

राधिकाकान्त का यह व्याख्यान समाप्त होते न होते अचानक पिस्तौल के दो फायर हुए। मार्क मिस्टर घोष की बगल में ही बैठे थे। राधिकाकान्त का कुछ उत्तर देने के लिए उन्होंने उनकी ओर मुँह फेरा ही था कि गोली उनकी कनपटी को छूती हुई मिस्टर घोष को जा लगी। गोली के तात्कालिक

प्रभाव से मिस्टर घोष कुर्सी पर से लड़खड़ा कर गिरे। दूसरी गोली के लगने के पहिले ज्यों ही चकित मार्क की दृष्टि मिस्टर घोष की ओर गई त्योंही वह उसकी पीठ में आ लगी और मार्क भी तिलमिला कर कुर्सी सहित भूमि पर गिरा। घोषपत्नी चीख मारती हुई कमरे के भीतर भग गयीं और मिस घोष डर के मारे थर थर काँपने लगी। राधिकाकान्त ने इधर-उधर देखा, कहीं कोई न दिखाई दिया। इसके बाद उन्होंने नौकरों को आवाज दी और उनकी सहायता से बेहोश मिस्टर घोष और पीड़ा से छटपटाते हुए मार्क को बिस्तर तक पहुँचाया। साइकिल लेकर एक नौकर भीगता हुआ डाक्टर को बुलाने के लिए दौड़ा। श्रीमती घोष ने बाबू जग-जीवन के यहाँ भी सूचना दे देने की हिदायत कर दी।

श्रीमती घोष ने साहस संग्रह करते हुए कहा—"मिस्टर राधिकाकान्त! इस घटना का क्या अर्थ हो सकता है?"

राधिकाकान्त ने उत्तर दिया—"श्रीमतीजी, अभी क्या कहा जा सकता है! तो भी, मेरा सन्देह बशीर अहमद ही पर जा रहा है। हो न हो यह उसी का काम है। परन्तु हम लोगों की लापरवाही तो देखिए। चौकीदार आदि ने भी उसे नहीं रोका।"

श्रीमती घो०—"मैं विलायत में सुना करती थी कि भारतीय बड़े सन्तोषी और क्षमाशील स्वभाव के होते हैं। परन्तु यह तो बात ही और पाती हूं। मिथ्या दोषारोपण में असफलता होने के बाद बशीर ऐसा भी करेगा, इसकी मुझे आशा नहीं थी। लेकिन कारखाने के कर्मचारियों में यदि कोई ऐसा कर सकता है तो वही।"

रा०—"श्रीमती जी, मिथ्या दोषारोपण किसे कहते हैं। आवश्य-

कता पड़ने पर अप्रिय सत्य कथन करने में संकोच करना भी मैं अनुचित समझता हूं। यद्यपि मिस्टर मार्क को बचाने के लिए मुझसे भी मिस्टर घोष ने जो कुछ करने को कहा उसे मैंने किया तथापि मुझे संदेह था और अब भी है कि उन्होंने बशीर अहमद की स्त्री के साथ बलात्कार किया। मैंने तो मिस्टर घोष को बारम्बार समझाया, परन्तु वे दूसरे की सुनते कब हैं? यदि बशीर को बुला कर मिस्टर घोष ने समझा दिया होता तो वह संतुष्ट हो जाता और यह घटना न घटती।"

डाक्टर किशनलाल और बाबू जगजीवन सिंह मोटर पर आ गये। दोनों ने इस परिताप-जनक घटना के लिए अत्यन्त खेद प्रकट किया। डाक्टर किशनलाल ने आहतों के घाव देखे और उसके लिए यथोचित उपचार किया। इसके बाद बाबू-साहब और डाक्टर किशनलाल दोनों घोष-पत्नी से सबेरे फिर आने को कहकर चले गये। मार्ग में डाक्टर किशनलाल ने कहा—"बाबूसाहब! मिस्टर घोष के बचने की आशा नहीं है। मार्क तो आठ-दस दिनों में चंगा हो जायगा।"

[२६]

कमलाशंकर की परेशानी का कोई पार न था! नौकाविहार के अनन्तर जब वह नाम मात्र का भोजन कर के चारपाई पर लेटा तब प्रतिभा और चंचला के सम्बन्ध में उसके हृदय में इतने तर्क-वितर्क उठे कि उसकी आँखों से जैसे नींद की अदावत हो गयी। कमलाशंकर ने अजीत से तो डींग मार कर कहा था कि मैं दुर्बल-हृदय नहीं हूं, किन्तु इस समय उसके चित्त की जो अवस्था हो रही थी वह अत्यन्त दयनीय थी। निस्संदेह उसके हृदय के किसी कोने से यह आवाज उठ

रही थी कि प्रतिभा को धोखा देना महा पाप है, किन्तु जब महापाप चंचला का रमणीय रूप धारण कर के आवे तब उसका आलिंगन करके हृदय शीतल क्यों न किया ?— कमलाशंकर के प्राय: सम्पूर्ण व्यक्तित्व ने अपनी समस्त शक्तियों को बटोर कर कहा। इस मानसिक उत्थान-पतन की क्रिया ने उसे इतना उलझाए रक्खा कि दो बजे के पहले उसे नींद नहीं आयी।

सबेरे कमलाशंकर सोकर उठा तो उसके सिर में दर्द था। कमरे में जाने पर अन्नपूर्णा देवी ने कहा—"तू यहां सोता ही रहेगा या आजमगढ़ चलने की तैयारी भी करेगा? इतनी बेफिकरी हो गयी है, जैसे कहीं जाना ही नहीं है! साढ़े सात बज गये।" यह बात समाप्त होते होते कमला देवी भी आ गयीं और पूरी बात उनके कान में नहीं पड़ी तो भी उसका आशय तो वे कुछ कुछ समझ ही गयीं। फिर भी तत्काल वे कुछ न बोलीं।

कमलाशंकर ने कहा—"अम्मा, रात ही से मेरे सिर में दर्द हो रहा है, नींद भी बड़ी देर को आयी। ऐसी दशा में आज जागने में भी देरी हो गयी। फिर भी सिर-दर्द तो नहीं हो गया। न जाने कैसी तबियत हो रही है।

कमला देवी ने अन्नपूर्णा को बोलने का अवसर न देकर कहा—तो इसमें संकोच की क्या बात है, बेटा यह तो तुम्हारा घर है। चंचला के कमरे में चले जाओ, वह तुम्हारे सिर की मालिश कर देगी।"

यह कह कर कमला देवी ने चञ्चला को आवाज दी। चञ्चला चञ्चल ज्योति की एक चलती-फिरती मूर्त्ति सी शीघ्र ही नीचे से कोठे पर आ गयी। फूलबाला उसकी गोद में थी।

"कमला शंकर को अपने कमरे में लिवा जाकर इनके सिर में तेल लगा दे, इनका सिर दुख रहा है।" —कमला देवी ने कहा।

चंचला ने बहुत ही हलकी मुस्कराहट के साथ फूल बाला को कमला देवी की गोद में देकर कमलाशंकर से कहा—चलिए।

इन तीन अक्षरों ने यदि कमलाशंकर पर जादू कर दिया और वह बेचारा चुपचाप चंचला के पीछे पीछे चला गया तो इसमें उसका क्या अपराध? औसत श्रेणी का मानव हृदय ऐसे प्रभावों से कब तक अपनी रक्षा कर सकता है?

कमलाशंकर चारपाई पर लेट गया और चंचला उसके सिरहाने एक छोटी सी गद्देदार तिपाई पर बैठ कर उसके बालों में थोड़ा सा केशरंजन तेल डालती हुई मीठे स्वरों में बोली—"जीजा, यह तुम्हें सिर दर्द कैसे हो गया? सिर दर्द ही है, या किसी के वियोग के कारण कुछ और?"

इस मधुर परिहास ने कमलाशंकर के हृदय में गुदगुदी उत्पन्न कर दी। उसकी सारी झिझक जाती रही। उसने उत्तर दिया—"जब से तुम्हें देखा है तभी से सिर में दर्द हो गया है चंचला!"

"यह खूब कहा! क्या मैं कोई बीमार हूँ जो मुझे देखते ही आप का सिर दुखने लगा। इस घर में इतने आदमी मुझे देखते हैं, किसी ने आज तक न कहा कि मेरे कारण कोई बीमार पड़ गया।"—एक मादक हँसी के साथ चंचला ने कहा। इस समय उसकी कोमल उँगलियाँ कमलाशंकर के बालों के साथ लिपट कर अपने मृदु और सरस आघात द्वारा उसके सिर को अपूर्व आनन्द प्रदान कर रही थीं। शिकायत थी केवल कमलाशंकर की आँखों को जो चंचला को इस समय देख नहीं सकती थीं।

कमलाशंकर ने कहा—"चंचला, क्या तुम्हारी उँगलियों में कोई जादू है? इन्होंने तो मेरे सिर को छूते ही सिर दर्द को विदा कर दिया।"

मुझे देखने से सिर-दर्द आता है और उँगलियों के छूने से चला जाता है।—यह कुछ मेरी समझ में नहीं आया जीजा! जो हो, कहो तो अब बन्द कर दूँ। तुम्हारा सिर-दर्द दूर तो हो ही गया।

यह कह कर चंचला ने सिर का दाबना बन्द करने का उपक्रम किया।

कमलाशंकर ने कहा—"चंचला तुम भी बड़ी भोली हो, सिर-दर्द कहीं इतनी जल्दी अच्छा हो जाया करता है। सच पूछो तो वह अभी तो बढ़ ही गया है।"

चंचला ने फिर बालों में पूरी तरह हाथ लगाते हुए कहा—"जीजा, तुम तो मेरे लिए पहेली होते जा रहे हो, तुम्हारी कौन बात सच समझूँ, कौन बात झूठ समझूँ? इलाहाबाद में यह सब तुमने किससे सीखा है? कालेज में क्या यही पढ़ाया जाता है?"

अन्नपूर्णा देवी ने तो उसी दिन आजमगढ़ जाने के लिए बड़ा हठ किया, किन्तु भीतर ही भीतर हरिहर सुकुल की कार्य-पटुता ने जो चाहा वही कराया। उनकी इच्छा थी कि कमला-शंकर और चंचला के स्नेह को थोड़ा और जड़ पकड़ लेने के लिए अवसर दिया जाय और फिर आजमगढ़ चल कर वरीक्षा आदि की बातें छेड़ी जायं। इसलिए श्रीमती कमला देवी और पं॰ सदाशिव मिश्र से उन्होंने अनुरोध किया कि आज मेहमानों को लेकर सारनाथ के भग्नावशेषों का दर्शन किया जाय।

अन्नपूर्णा देवी और कमलाशंकर भी कुछ बहुत अनिच्छापूर्वक इस प्रस्ताव पर सहमत नहीं हुए।

पांच बजे दो मोटरें तैयार हो गयीं। कई सुराहियां भर भर के रख ली गयीं। कई पंखे भी इकट्ठे कर लिये गये। एक मोटर पर अन्नपूर्णा देवी, कमला देवी, चंचला और कमलाशंकर बैठे; दूसरी पर पं० सदाशिव मिश्र, सुकुलजी और सम्पति कहार। शीघ्र ही मोटरें अभीष्ट स्थान की ओर चल पड़ीं।

जाते और आते दोनों बार चंचला ने कमलाशंकर से अजीत की चर्चा छेड़ दी। कमलाशंकर ने बड़ी ही लच्छेदार भाषा में अजीत की देशभक्ति आदि की प्रशंसा की। चंचला पर इसका भी खासा प्रभाव पड़ा; उसने कमलाशंकर को एक सुन्दर युवक ही नहीं, देश-भक्त और जाति-हितैषी भी समझा। मोटर में फूलबाला को दूध पिलाने आदि का काम उसने अपने ही हाथ में ले रखा था। यह छोटी सी बालिका यह भला क्या जानती थी कि वह इस समय मोटर में बैठे चार व्यक्तियों के हृदयों को अपूर्व प्रेम के सूत्र में बाँधने का कार्य कर रही है; यदि उसे कमला चुमकारती या नाना प्रकार से चंचला कभी कभी उसे रोने से चुप कराती तो यह स्नेह व्यापार विभिन्न रूप में अन्नपूर्णा देवी और कमलाशंकर के हृदय में प्रेम की गुदगुदी उत्पन्न कर देता था।

नौ बजे रात के लगभग सब लोग घर लौट आये।

[२७]

उस दिन की शोचनीय घटनाओं से प्रतिभा का चित्त बड़ा ही अशान्त हो गया। किन्तु जिस बात से उसे विशेष कष्ट था वह यह था कि उसे अपनी अशान्ति को कम करने के लिए

तनिक सा एकान्त भी नहीं मिलता था। यह नहीं कि बँगले में कहीं एकान्त स्थान था ही नहीं; बँगले के पिछवाड़े का बाग़ तो सदा से उसको विश्राम देता आया था। किन्तु कठिनाई तो यह थी कि पिता, माता, भाभो, भतोजी सभो को क्लेश में देख कर एकान्तवासिनी होने का उसे साहस भो नहीं होता था। पिता की बेचैनो और माता की दारुण चिन्ता ने उन्हें रात को बारह बजे से पहले नोंद भो नहीं आने दो। अतएव अन्य दिनों की अपेक्षा आज ही यह असुविधा भी सामने आयी। उनके सो जाने पर, राम राम करके उसने आकाश की ओर आंखें डालीं और ईश्वर से प्रार्थना की कि हे दयानिधान! मुझ अभागिनी के अपराधों के कारण मेरे परिवार का संहार न करो। इसके बाद चुपचाप वह अपने कमरे में चली गयी और वहां किवाड़ बन्द करके उसने निम्नलिखित पत्र लिख डाला:—

प्रिय कमला बाबू;

मैंने आप से जो कहा था वही बात सामने आ रही है। आज भैया, भाभी और शान्ता को लेकर कर्नलगंज में चले गये। बाबूजी को मैंने कभी रोते नहीं देखा था। सो आज वे भी आंखों से आंसू बहा रहे हैं। अम्मा कितना धीरज धरती हैं, यह आप जानते ही हैं, लेकिन आज उनके धीरज का बांध भी टूट गया है। हाय! मुझ अभागिन के कारण ही यह सब हो रहा है। नहीं समझ में आता कि मैं क्या करूं।

आप से मैंने यहाँ जो कहा था उसे न भूलिएगा। यदि आप का विवाह बनारस में हो जाय तो मैं बहुत प्रसन्न हूँगी। रही स्वयं मैं, सो मेरी चिन्ता आप न करें। मैं अपने परिवार की अशान्त अवस्था से बहुत ऊब गई हूँ और अब उसकी चिन्ता की

जड़ ही काट देना चाहती हूँ। मैंने निश्चय किया है कि मैं विवाह ही नहीं करूँगी। भइया को भी मैं इसी आशय का पत्र लिखने का विचार कर रही हूँ। हाँ, यदि बाबू जी इसी बात पर हठ करेंगे कि मैं रामलखन सिंह के साथ विवाह कर लूँ तो मैं उसमें भी किसी तरह का विरोध नहीं उपस्थित करूँगी, क्योंकि मुझसे रामलखन सिंह के किसी प्रकार का सुख प्राप्त करने के पहिले ही मेरे प्राण किसी और लोक के निवासी हो जायँगे।

यदि आप मुझे पत्र लिखना चाहें तो यहाँ के पते से तो किसी भी दशा में न लिखिएगा, हाँ, लिफाफे पर 'प्र' लिख कर पत्र मिस घोष के नाम भेज दीजिएगा तो उनसे मैं उसे पा जाऊँगी।

आप की
प्रतिभा

अगले दिन संध्या समय प्रतिभा अपने कमरे में पलङ्ग पर लेटी थी। उसी समय मिस घोष ने कमरे के भीतर प्रवेश किया। प्रतिभा उठ बैठी। मिस घोष एक कुर्सी पर बैठ गयी।

थोड़ी देर तक मौन रहने के बाद प्रतिभा बोली—"बहन, तुम्हें तो न मालूम होगा कि आज बाबू जी ने मेरे विवाह के लिए उसी जगह बातचीत पक्की कर ली। अभी बाबू रामलखन बाहर गये हैं, उनके आते ही दस-पन्द्रह दिनों में तिलक चढ़ जायगा। उसके बाद तो विवाह किसी तरह रुक ही नहीं सकेगा। बताओ अब क्या करूँ? मुझ अभागिनी के कारण ही भइया, भाभी और शान्ता पर भी विपत्ति आई।"

मिस घोष—"प्रतिभा! अब भी यह विवाह सम्पन्न हो सके तो यह तुम्हारे हृदय की दुर्बलता का ही परिणाम हो सकता है। तुममें इतना साहस क्यों नहीं है कि खुल्लमखुल्ला विरोध करो। जब तुम स्वयं कुछ हिम्मत दिखाओगी तो ईश्वर भी तुम्हारी

सहायता करेगा। हिन्दू स्त्रियों का दब्बूपन देख देख कर ही कभी कभी इच्छा होती है कि मैं ईसाई ही बनी रह कर अच्छी हूँ। जिस समाज में स्त्रियों को अपना साथी पसन्द करने की स्वतन्त्रता नहीं है, जिसमें प्राचीन कुरीतियों का साम्राज्य है उसमें पुनः प्रवेश करने की तो इच्छा नहीं होती।"

प्र०—"बहन तुम लड़कपन से ही ईसाई परिवार में ही लालित-पालित हुई हो, इसलिए मेरा दब्बूपन तुम्हारी समझ में नहीं आता। लेकिन सच बात यह है कि मेरे लिए वैसी धृष्टता करना जैसी तुम चाहती हो, मृत्यु-वेदना अनुभव करने के तुल्य है। मैं बहुत सरलता-पूर्वक आत्म हत्या कर सकती हूँ, परन्तु अपने पिता से विवाह के सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकती। मैं तुम्हें यह बतलाये देती हूँ कि यदि बाबूजी ने भैया के इतना विरोध करने पर भी ध्यान न दिया तो मैं इस विवाह के दिन तक जीती न रहूँगी यह न समझो कि मुझे मिट्टी का तेल शरीर पर छिड़क कर जलने की आवश्यकता होगी; दुख और चिन्ता आपसे आप मेरे शरीर को गला डालेंगे। भैया इतनी विपत्ति में पड़ेंगे और फिर भी मैं विवाह होने तक बची रहूँगी?"

मिस घोष—"जब ऐसा होने की आशंका है तब तुम सच्ची बात अभी कह देने में क्यों सङ्कोच करती हो? सम्भव है, प्रिय पुत्री की इस परिस्थिति पर विचार कर के बाबू जी आप ही आप अपना मत बदल दें। संसार को अपने अनुकूल बना कर सुख-भोग करने के स्थान में तुम असह्य वेदना का अनुभव करती हुई यहाँ से भाग जाना चाहती हो। क्या इसमें कोई बुद्धिमानी है? तुम्हारी जैसी शिक्षित स्त्रियों की यह दशा है तो औरों की क्या होगी! हाँ, अजीत बाबू के फिर लौट आने की कोई आशा भी है या अब वे अलग ही रहेंगे? मैंने मास्टर साहब से सुना है कि इस घटना में अधिक दोषी अजीत बाबू ही हैं।"

प्र०—"बहन ! पिता जी को दोषी कहने का साहस तो मैं नहीं कर सकती, लेकिन साथ ही भैया को भी अपराधी नहीं कह सकती। भैया ग़रीबां, असहायों का पक्ष लेते हैं तो पिता जी को न जाने क्यां अच्छा नहीं लगता। भगवान चपरासी को तो स्वयं पिता जी भी बहुत मानते हैं। लेकिन यदि भैया को उससे अधिक बातें करते देख पावें तो फिर उनकी तीक्ष्ण दृष्टि को देखो। भैया का हृदय दयामय है, वे ऊँच नीच को एक सा समझते हैं।"

मिस घोष—"नहीं प्रतिभा ! अजीत बाबू के विरुद्ध मैं एक बात कहूँगी। देखो, नाराज़ न होना। लोगों का कहना है कि छोटी जाति की अनेक स्त्रियों से उनका प्रेम है और उनमें से बशीर अहमद की स्त्री भी एक थी। उनकी इसी आदत के कारण उनका हमारे मिस्टर मार्क से विरोध रहता है, क्योंकि मार्क साहब उनकी हरकतों को पसन्द नहीं करते। इसी विरोध के कारण अजीत बाबू ने उलटा मार्क साहब को बदनाम करना शुरू कर दिया। यदि उनकी चलती तो कारख़ाने में हड़ताल हुई बैठी थी; परन्तु जब मिस्टर घोष ने खास खास मज़दूरों को बुला कर सप्रमाण समझा दिया कि न तो मार्क की दुश्चरित्रता की बात सत्य है और न वेतन बढ़ाये जाने के योग्य लाभ की वृद्धि हुई है, तब वे सब मान गये। बशीर की स्त्री तो मरी अपने रोग के कारण किन्तु उसे भी अजीत बाबू ने भाई साहब को बदनाम करने का एक साधन बना लिया। जब इसमें भी सफलता नहीं हुई तो उन्होंने मिस्टर घोष और मिस्टर मार्क के प्राण लेने का ही उद्योग कराया। ईश्वर जाने यह बातें कहाँ तक सच हैं। और ईश्वर ही जाने, बशीर अहमद की स्त्री से स्वयं इनका क्या सम्बन्ध था।"

प्र०—"बहन ! आज तुम यह क्या कह रही हो। कुछ

ही महीने पहले तुम जिसकी भूरि-भूरि प्रशंसा किया करती थीं; जिसकी सरलता, सच्चरित्रता और देश-भक्ति का बखान करते हुए तुम ऊबती नहीं थीं; जिसे तुम नर-रत्न बतलाया करती थीं उसी को इतना पतित और नीच-हृदय कहना चाहती हो—इस परिवर्तन का रहस्य मेरी समझ में नहीं आया। और मार्क साहब का तुम्हारे द्वारा यह समर्थन भी नवीन बात है। वे बिचारे बिलकुल दूध के धोये हैं, यह आज ही मुझे मालूम हुआ। बहन, उस मनुष्य का नाम तो बताना जिसने मेरे भाई पर नीच कलङ्क का आरोपण किया है और तुम्हें कम से कम इतना तो पक्ष में कर ही लिया है कि उसका मत तुम निस्संकोच भाव से मेरे सामने प्रकट कर रही हो।"

मिस घोष—"प्रतिभा, मैं किसका किसका नाम लूँ। कहने वाले एक हों तो नाम भी लूँ।

प्र०—"तो क्या तुम्हारा यह विश्वास है कि मेरे भैया दुश्चरित्र हैं और उन्होंने ही बशीर को उभाड़ कर मिस्टर घोष की हत्या भी कराई है?"

प्रतिभा की आँखें मिस घोष के चेहरे पर स्थिर हो गईं।

प्रतिभा की आँखों से अलग खिड़की की ओर अपनी दृष्टि को स्थिर करके दुःख और वेदना से उत्पन्न दृढ़ता के स्वर में मिस घोष ने कहा—"हाँ, प्रतिभा! मेरा यही विश्वास है। मेरे विश्वास को बना रहने दो, क्योंकि मनुष्य का परिवर्तन कब किस प्रकार होता है, यह कोई कह नहीं सकता और मैंने जो कुछ कहा है उसके विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं मिलता। आज यदि कोई इस बात को सिद्ध कर दे कि अजीत बाबू का सम्बन्ध बशीर अहमद की स्त्री से नहीं था तो बहन! मैं सच कहती हूँ, मेरे कलेजे पर से पहाड़ का सा

बोझ उतर जाय। तुम्हीं सोचो—यदि कमल बाबू तुम्हें निराश करके या जितना तुम उन्हें चाहती हो उतना तुम्हें न चाहकर किसी नीच जाति की स्त्री के पीछे-पीछे गुलाम बनकर फिरें तो क्या तुम्हारे हृदय को चोट न पहुँचेगी ? मैंने उनके पास भेजे जाने वाले बशीर अहमद की स्त्री के प्रेम-पत्रों को अपनी आँखों से देखा है, और उसके अक्षरों को आँखों का सारा धुँधलापन दूर करके पहचाना है। इसके अतिरिक्त मिस्टर घोष की मृत्यु से मेरा तो जीवन ही नष्ट हो गया। मेरे आनन्द के दिन गये। अब वह प्यार और स्वतन्त्रता मैं कहाँ पाऊँगी जो मिस्टर घोष ने मुझे प्रदान की थी।"

प्र०—"बहन ! यदि तुम या कोई यह कहे कि भैया स्वभाव के खरे हैं, मौक़ा पड़ने पर बड़े से बड़े आदमी को झिड़क दे सकते हैं, अपनी बात के हठी हैं, तब तो मैं मान लूँ। लेकिन यह बात मुझे तनिक भी जँचती ही नहीं कि वे किसी अनुचित उद्देश्य से नीच जाति के लोगों के साथ सहानुभूति रखते और उनमें उठते-बैठते हैं। यदि यही बात होती तो क्या भैया को कुछ रुपये की कमी थी, क्या वे रण्डोबाज़ी नहीं कर सकते थे ? किन्तु यह अभियोग अभी आज तक किसी ने नहीं लगाया।"

मिस घोष—"रण्डीबाज़ी का अभियोग भी कभी लग ही जायगा, शुरू न हुई होगी तो कौन कहे सारी उमर बीत गई है; अब हो जायगी। पास-पड़ोस में निराश हो जाने पर आदमी रण्डी के यहाँ जाता है। संसार में हम लोग बहुधा धोखा खाते हैं। जो बदनाम रहते हैं प्रायः उनमें से कुछ अच्छे लोग भी निकल आते हैं और जो महात्मा बने रहते हैं उन्हीं का भण्डा फूटता है।"

प्र०—"यह बात तो तुम्हारे राधिका बाबू के सम्बन्ध में अधिक सत्य निकलेगी। उनके वर्तमान स्वरूप में पहले के राधिका बाबू का कहीं पता नहीं चलता। जैसे उनकी वेषभूषा में परिवर्तन हो गया है वैसे ही विचारों में भी वे एक दम से अराष्ट्रीय हो गये हैं। स्वदेशी कपड़ों तक से उन्होंने नमस्कार कर लिया है। उन्हीं के रंग में तुम भी रंग उठी हो। बहन मिस घोष! नाराज़ मत होना। पहले तुम भैया के प्रत्येक कार्य में चित्ताकर्षण का अनुभव करती थीं। उन्हीं के से स्वदेशी वस्त्र, उन्हीं की सी स्वदेश-भक्ति, उन्हीं के से स्वदेशी भाव तुम में पाये जाते थे। तुम्हारी ऐसी प्रवृत्ति देख कर मैं तुम पर मुग्ध थी। अब तुमने धीरे धीरे सब कुछ त्याग दिया। राधिका बाबू की ओर आकर्षित होकर तुमने अपने दुखी स्वदेश को भुलाया और कर्तव्य से छुट्टी ले ली, और विश्व-प्रेम के बहाने विदेशी रंग में अपने आप को रंग लिया।"

मि० घो०—"प्रतिभा, तुम्हारे प्रेम के आगे मैंने सदा अपना सिर झुकाया है। अजीत बाबू को तो मैं देवता मानती थी। तुम तो जानती ही हो कि मैं उनसे कितना प्रेम करती रही हूँ। परन्तु उन्होंने तो मुझे कुछ नहीं समझा। यह जान कर भी कि मैं एक हिन्दू बालिका हूँ जो दुर्भाग्य से अपने माता-पिता के हाथ से छूट कर एक ईसाई परिवार में पाली गयी, उन्होंने मेरे प्रति कोई सहानुभूति नहीं दिखायी।"

प्रतिभा ने बीच ही में टोका—बहन! यह क्या कह रही हो! क्या सचमुच तुम हिन्दू माता-पिता की कन्या हो?"

हाँ, प्रतिभा! मैं झूठ नहीं कह रही हूँ। मैं हिन्दू ही नहीं, क्षत्रिय माता-पिता की संतान हूँ और तुम्हारे बहुत निकट हूँ।

विशेष विवरण की तो मैं जाँच पड़ताल ही कर रही हूँ। अभी पूरा पता नहीं लग पाया है, किन्तु अचानक एक चिट्ठी के मिल जाने से मुझे इतनी बातें ज्ञात हो सकी हैं। यह चिट्ठी किसी पादड़ी ने मिस्टर घोष के नाम लिखी थी। थोड़े ही दिन हुए, अचानक यह पत्र मेरे हाथ लग गया। तुम्हें दिखाने के लिए इसे मैं अपने साथ आज लेती आयी हूँ। 'लो वह पत्र तुम भी देख लो', यह कह कर मिस घोष ने अपनी जाकेट की जेब में से एक काग़ज़ निकाला और प्रतिभा के हाथ में रख दिया। प्रतिभा ने पत्र लेकर पढ़ना शुरू किया। उसमें लिखा था:—

आगरा
१५ अगस्त, सन् १८७९

प्रिय मिस्टर घोष;

आपने जिस हिन्दू ठाकुर खानदान की बच्चो की परवरिश के लिए एक दाई तलब की है उसकी अपूर्व सुन्दरता और बुद्धिशीलता की चर्चा मेरे यहाँ आप की चिट्ठी आने के पहले ही पहुँच चुकी है। दाई का प्रबन्ध तो हो ही जायगा, लेकिन मिहरबानी कर के इस बच्ची की बहुत अधिक प्रसिद्धि न होने दीजिए, अन्यथा स्वामी दयानन्द के चेले एक न एक प्रकार से आप के ऊपर छापा मारेंगे और लड़की को लेकर ही छोड़ेंगे। मैं दो ही तीन दिनों के भीतर दाई आप की सेवा में भेजूँगा।

आपका कृपाकांक्षी
पादड़ी आर. गुडविन

इस विश्वास से कि प्रतिभा पत्र की पंक्तियों को पढ़ कर उचित रूप से प्रभावित हो रही है, उत्साह का अनुभव करते

हुए मिस घोष ने कहा—"देखो, बहन ! मेरे प्रेम का कोई बदला अजीत बाबू ने दिया ? मैं सच कहती हूँ, मैंने उन्हीं के कारण अपनी हिन्दू शैली की वेष-भूषा आदि स्वीकार की। मैं तो उनकी उद्दण्डता को भी गुण ही समझती थी, परन्तु वह सीमा से अधिक बढ़ गयी। ऐसी उद्दण्डता भी क्या कि औरों को उभाड़ कर हत्याएँ करायी जायँ। बहन, तुम्हारे माता-पिता मौजूद हैं। तुम यह नहीं समझ सकतीं कि मिस्टर घोष के न रहने से मैं अनाथ होकर कितनी असहाय हो गयी हूँ। मान लिया, अजीत बाबू सच्चरित्र ही हैं। फिर क्या बशीर अहमद ने उन्हें बिना बताये ही मिस्टर घोष और मिस्टर मार्क की हत्या का निश्चय किया होगा। यह हो ही नहीं सकता। क्या उनका यह धर्म नहीं था कि वे इस अनुचित काम को न होने देते ? और फिर जो कुछ अपराध था, यदि वह सत्य है तो मिस्टर मार्क का था; मिस्टर घोष तो सीधे-सादे, विश्वासशील पादड़ी थे, छल-कपट से दूर रहते थे। बूढ़ी अवस्था में ऐसे मनुष्य का गोली से मारा जाना क्या तुम्हें करुणा-जनक नहीं मालूम होता ? अच्छा, यह बताओ कि जिस दिन हमारे यहाँ दावत थी उस दिन संध्या समय अजीत बाबू कहाँ थे ? और जंजाली से मैंने पता लगाया है कि उसी दिन दोपहर को बशीर अजीत बाबू के पास आया था। जो चाहे जञ्जाली को बुला कर पूछ लो। ऐसी परिस्थिति में यदि मैं अजीत बाबू को अपराधी समझती हूँ तो क्या बुरा करती हूँ ?"

यह कह कर और प्रतिभा के उत्तर की अपेक्षा न करके मिस घोष उठ खड़ी हुई और शिष्टाचार-प्रदर्शक साधारण मुसकराहट के साथ फिर किसी दिन मिलने की बात कह कर चल पड़ी। मिस घोष को जाते देख प्रतिभा ने अपने

संकोच पर किसी प्रकार विजय प्राप्त करके कहा—"बहन एक कष्ट के लिए क्षमा करना। शायद दो तीन दिनों में एक पत्र तुम्हारे पास आवेगा जिस पर किसी ओर हिन्दी में 'प्र' लिखा रहेगा। कृपा करके उसे मुझे दे देना।"

"मैं समझ गयी"—आँखें नचाते और मुसकराते हुए कहकर मिस घोष चली गयी। प्रतिभा को इतमीनान हो गया। वह फिर गंभीर होकर अजीत पर किये गये मिस घोष के आक्रमणों पर विचार करने लगी। कम से कम उसे यह तो स्पष्ट हो गया कि मिस घोष के चित्त को बड़ा आघात पहुँचा है। क्या यह सच हो सकता है कि मेरे भैया, जो किसी स्त्री की ओर आँख उठा कर देखते तक नहीं, ऐसे दूषित चरित्र के हों? परन्तु मिस घोष की बातों में वह बल है जो चोट खाने पर ही किसी के हृदय में आता है। उसने सोचा, जान पड़ता है यह बशीर अहमद की मृत स्त्री के प्रति द्वेष की ज्वाला में जल रही है। मिस घोष की बातों पर प्रतिभा जितना ही अधिक विचार करती थी उतना ही उसके मन में यह स्पष्ट होता जाता था कि मिस्टर मार्क कुछ उपद्रव करने का विचार कर रहा है। अपने प्यारे भाई के आशङ्का-पूर्ण भविष्य की कल्पना करके कोमल हृदय को अपार वेदना होने लगी। वह अजीत के तनिक से कष्ट-निवारणार्थ यदि आवश्यकता हो तो, अपने प्राण भी दे सकती थी। वह जानती थी कि हत्यारे को उत्तेजना देने वाला राजकीय दंड से नहीं बच सकता। इसी कारण अपने अन्धकारमय कमरे में प्रकाश करने की परवा न करके वह अपने आप से पूछ रही थी—भैया कैसे बचेंगे? यदि देश के किसी काम से अजीत को कारा-सेवन करना पड़ता तो सम्भवतः यह देश भक्त कुमारिका आज फूली न समाती, गर्व के साथ आज मिस घोष से कहती—लो देखो, भाई हो तो ऐसा हो।

परन्तु वृद्ध के हत्याकारी का सहायक होकर कौन यशस्वी हो सकता है ?

इस सम्पूर्ण अधिकार में यदि कहीं तनिक भी प्रकाश था। तो केवल इस आशा में कि पिता जी का प्रभाव भैया को छुड़ा लेगा। परन्तु जिन पिता की सम्मतियों की परवा भैया ने कभी नहीं की, उन्हीं पिता के प्रभाव का वे कैद से बचने के लिए आश्रय लेंगे, यह तो अत्यन्त निन्दनीय अधःपतन की बात होगी। सारा समाज यही कहेगा कि देखो, पिता के कहने, सुनने की कोई परवा नहीं की, उसका सन्तोप समाधान करने का लेशमात्र प्रयत्न नहीं किया और अब अन्त में सङ्कट से बचने के लिए उसी चापलूसी का सहारा लिया, जिसकी निन्दा करते हुए वे शेर की तरह गरजते थे। उसके कल्पना नेत्र के सामने बाबू राधिकाकान्त श्यामलाल, रामलखन आदि की मूर्तियाँ अजीत बाबू की आदर्शवादिता के उपहास से प्रफुल्ल और विकसित रूप में दिखाई पड़ने लगीं और तुरन्त उसने प्रण कर लिया कि चाहे जो हो मैं अपने तेजस्वी भाई को इस प्रकार हतश्री न होने दूँगी। भैया का जेल जाना अथवा फाँसी पाना भी इस अधोगति की अपेक्षा कहीं अधिक वांछनीय होगा। परन्तु आदर्शवाद की डोर से खिंची रह कर पतङ्ग की तरह आकाश में विहार कर चुकने पर जब वह भूमि पर उतरी तब परिणामों की भयङ्करता की कल्पना कर के काप उठी। भैया यदि हठवश पिता जी की सहायता से छूटना न पसन्द करेंगे और कारा-गृह में कष्ट भोगने जायँगे तो क्या पिता निर्लज्जता का जीवन बिताने के लिए रहें जायँगे ? ऊँचे से ऊँचे कारण से भी क्यों न हो, एक घड़ी का कारावास भी दादा के लिए घोर अपमान जनक है, फिर ऐसे कारावास का परिणाम उनके जीवन का अन्त ही होगा। यह सोचते सोचते उसे उस

भयङ्कर स्वप्न की याद आ गई जिसकी चर्चा उसने उस दिन कमलाशङ्कर से की थी। इस सर्वनाश के दृश्य से एकदम व्याकुल होकर वह किसी कल्याणकारी मार्ग का अनुसन्धान करने लगी। परन्तु गृहकल्याण की दृष्टि से एक ही पथ हितकर प्रतीत होता था और वह भैया का अधःपतन था। भैया की इस अवस्था का एक परिणाम यह भी होगा कि मुझे रामलखन सिंह के साथ अपना विवाह करना होगा, क्योंकि भैया के छुटकारे का प्रश्न उन्हीं के हाथ में आ पड़ेगा। कोई हर्ज नहीं, भैया के लिए मैं यह सब करूँगी—प्रतिभा का कोमल हृदय भाई और पिता दोनों ही की भलाई के लिए कातर होकर थके हुए पक्षी की तरह इस अप्रिय निश्चय की अरुचिकर, प्राणघातक शाखा पर बैठने के लिए तैयार हो गया।

परन्तु फिर उसका हृदय काँप उठा। उसने सोचा—क्या उस दिन सन्ध्या समय कमल बाबू के साथ मेरा विवाह नहीं हो गया। विवाह यदि वह नहीं था तो विवाह और किसे कहेंगे? फिर क्या मैं अब चाहने पर भी दूसरा विवाह कर सकती हूँ? नहीं, यह नहीं हो सकता। मेरा विवाह होगया। उस दिन मौन स्वीकृति-द्वारा मैंने अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व का समर्पण कमल बाबू के चरणों पर कर दिया। अब दूसरे के साथ विवाह हो ही नहीं सकता। इतना ही हो सकता है कि विवाह के नाम पर सर्वथा मौन रह कर कम से कम भैया के बचने के समय तक प्रतीक्षा की जाय। बस यही करूँगी। यह निश्चय करके उसने मन ही मन मार्क से कहा—ले नर-पिशाच! तेरी निशाचरी वृत्ति का फल आज मैं भोगने जा रही हूँ। जा तू फूले और फले, तेरे पापों की वृद्धि हो, जिससे तेरा सर्वनाश करने वाला शीघ्र जन्म ले।

इसी समय बाबू साहब ने आँगन में आकर आवाज़ दी—प्रतिभा!

[२८]

मिस घोष ऐसे वातावरण में नहीं पली थी जहां निस्वार्थ प्रेम की शिक्षा उसे मिलती। अजीत के प्रति उसका सारा प्रणय, सम्पूर्ण अनुराग इस समय घृणा की एक अत्यन्त प्रचण्ड ज्वाला में परिणत हो गया था। आज भी यदि कोई उसे यह विश्वास दिला सकता कि अजीत बाबू का रजिया से अनुचित सम्बन्ध नहीं था तो सम्भव है यह ज्वाला शीतल होकर एक गहरे नैराश्य-भाव में परिणत होती तथा उसके परिणामों से अजीत को बहुत कुछ मुक्त कर देती। किन्तु ईश्वर की इच्छा कुछ और थी।

प्रतिभा के यहाँ से लौट कर मिस घोष अजीत के विरुद्ध राधिकाकान्त के भावों को दूषित करने के उद्देश्य से उनके मकान की ओर चली। पहुँचने पर उसने देखा कि अनन्तराम वैद्य उनके नौकर के शारीरिक आरोग्य की आवश्यक परीक्षा करके चले जा रहे हैं।

राधिकाकान्त ने मिस घोष से कहा—"इन वैद्यों से तो मेरी तबियत ऊब गयी है, इनमें मनुष्यता नाम मात्र को नहीं होती, और अनन्तराम तो विशेष रूप से 'यम-सहोदरता' को चरितार्थ करने वाला है, क्योंकि यह तो रुपये प्राप्त करने के लिए रोग को बढ़ा देता है।"

"तो आप डाक्टर किशन लाल को क्यों नहीं दिखाते? वे तो दयावान पुरुष हैं, आप से शायद फ़ीस भी न चार्ज करें।"—मिस घोष ने कहा।

राधिकाकान्त ने उत्तर दिया—"तो इसी का तो मुझे रोना

है। यदि वे अपनी फीस ले लिया करते तो मैं भी बहुत अधिक बोझ से न दबता और जभी उनकी आवश्यकता होती तथा मेरे पास उन्हें देने भर को रुपये होते तभी मैं उन्हीं को बुलाता किन्तु जब वे इतनी सहृदयता का व्यवहार करते हैं तब उन्हें अपने स्वार्थ के लिए निरन्तर कष्ट देने में संकोच मालूम होता है। डाक्टर किशनलाल पर इसी कारण मुझे कभी कभी बड़ा क्रोध भी मालूम होता है, मिस घोष।"

राधिकाकान्त की इस बात को सुन कर मिस घोष हँसती हुई बोली—"यह खूब! तो फिर अच्छे हैं वही डाक्टर और वैद्य जो करारी फीस लेकर भी धता बताते हैं। बाबू रतनचन्द्रजी वकील को तो आप बहुत अधिक चाहते होंगे, क्योंकि अपनी फीस कस कर लिये बिना वे अपने मुअक्किलों से बात भी नहीं करते।"

यह कह कर मिस घोष ने रुमाल से एक बार अपना चेहरा साफ करके कलाई घड़ी की ओर दृष्टिपात कर लिया।

राधिकाकान्त बोले—"राम राम! अच्छे अदमी का नाम ले लिया। आज कल सौ रुपये पूरे के पूरे उनकी जेब में डाल देता हूँ।"

मिस घोष ने मुसकरा कर कहा—"उपकार तो आप का काम ही है, पर किस बहाने से आप रतनचन्द्र के लखपती होने की स्वप्न-सिद्धि में यह सहायता कर रहे हैं? आप का कोई निजी मुकदमा तो हो नहीं सकता।"

रा०—"मेरा निजी मुकदमा तो नहीं है, लेकीन उन लोगों का है जिनके मुकदमे को मैं अपना मुकदमा समझने के लिए बाध्य हूँ। बात यह है कि मेरे कुछ कुटुम्बी जन आपस ही में

लड़ पड़े हैं, फौजदारी का मुकद्दमा कायम हो गया है। जो चोट खाकर अस्पताल में पड़े हैं उनकी देखरेख तो मेरे जिम्मे है ही, जिन्होंने लाठियाँ चला कर औरों को घायल बनाया है, उनकी निगरानी और उन्हें छुड़ने का पूरा उद्योग भी मेरा कर्तव्य है।"

मिस घोष—"आप अपने जिस बहुत बड़े परिवार की कभी चर्चा करते हैं वह इन्हीं लोगों का है?"

रा०—"हाँ, घोष कुमारी! इनसे अधिक निकट अन्य कोई न होने के कारण मैंने इन्हीं लोगों को अपने प्रेम, ममता और सेवा का पात्र बना दिया है। लगभग बीस वर्ष हुए होंगे मेरी एक बहुत सुन्दरी बहन बृन्दाबन की यात्रा में खो गयी, बहुत ढूँढ़ा पर कहीं पता न चला। माँ की वह जीवन-सर्वस्व थी। उनका सारा सौन्दर्य्य मानो मेरी उसी बहन के रूप में मूर्तिमान हो गया था। उसके वियोग में बाद को माँ के प्राण पखेरु परलोकगामी हो गये। पिताजी भी उसके बाद बहुत थोड़े दिन जीवित रहे। इस प्रकार यदि मैं अपने परिवार की अत्यन्त संकुचित दृष्टि से देखूँ तो मैं अकेला ही हूँ, किन्तु मैं ऐसा क्यों करू? जब मुझे सम्पूर्ण विश्व को अपना परिवार समझना चाहिए तब इस छोटे से कुटुम्ब को ही यदि मैंने अपनाया तो कौन बड़ी बात हो गयी? इस मामले में मेरा मत तुम्हारे मत से बहुत भिन्न है और रहेगा। तुम्हारी अनेक उचित सम्मतियों को मैं ने सदैव ग्रहण किया है, किन्तु इस परिवार के लिए गरीब बने रहने में, इसकी मूर्खताओं के लिए भी अपनी गाढ़ी कमाई के पैसे बहाने में मुझे इतना अधिक आनन्द आता है कि में तुम्हारी आलोचना की परवा न करके इस ममता ही में लिप्त रहना अधिक पसंद करूँगा।"

मि० घो०—"तो मैं इस आलोचना के लिये कब आयी हूँ ? खैर, अच्छा ही हुआ जो उमंग में आप इतना कह गये अभी आप न जाने कितनी ऐसी ही बातें छिपाये होंगे। इसकी चिन्ता भी नहीं, क्योंकि समय समय पर आप में उमंग आती ही रहती है और वह किसी न किसी गुप्त बात का पता देकर ही जाती है। आज इस समय तो मेरे आने का विशेष कारण यह है कि अब पढ़ाई-लिखाई कुछ दिन के लिए स्थगित करके आप की सहायता से उन उपायों का अवलम्ब लूं जिनसे हमारे कारखाने को नष्ट करने के उद्योग में रत अजीत बाबू अपने इस अनुचित मार्ग को त्याग दें।"

"मैं किस रूप में सहायक हो सकूँगा। इसे स्पष्ट करके तुम्हें समझाना होगा।"—राधिकाकान्त ने कहा।

"आप को हमारे मजदूरों में जाकर अजीत बाबू की असदाचार-सम्बन्धी बातों की ओर उनका ध्यान आकर्षित करना होगा।"—मिस घोष ने उत्तर दिया।

राधिकाकान्त चौंक कर बोले—"अजीत बाबू का असदाचार! मैं विश्वास नहीं करता, उनमें अनेक ऐब हैं—प्रत्येक मनुष्य में होते हैं—किन्तु उनके आचरण पर यह आक्षेप बिलकुल ही नवीन बात है। इसके लिए बहुत बड़ा प्रमाण चाहिए।"

मिस घोष—"मैं आपको अकाट्य प्रमाण दूँगी और आप को इस बात का पूरा विश्वास दिला दूँगी कि अजीत बाबू का सम्बन्ध बशीर अहमद की स्त्री से था। जिस प्रमाण के मिलने पर स्वयं मैं अजीत बाबू के विरुद्ध हो गयी हूँ, उसको मैंने पाकर यदि आप स्वयं अजीत बाबू को निर्दोष सिद्ध कर सकें तो सब से अधिक प्रसन्नता मुझे होगी, क्योंकि

मैं चिरकाल से उनके विचारों और कार्यों की सराहना करती आयी हूँ और वर्तमान समय में विवश होकर ही मुझे अपने गरीब मजदूरों को उनकी मिथ्या देश-भक्ति और पाखण्डपूर्ण उपकारपरायणता से बचाने का अप्रिय कर्म हाथ में लेना पड़ा है।"

रा०—"तो यह प्रमाण मुझे कब उपलब्ध होगा?"

मि० घो०—"जब तक मिस्टर मार्क अस्पताल से न आ जायँ तब तक तो संभव नहीं है।"

'बहुत अच्छा,' कह कर मेज़ के सहारे कुहनी टेके और ठुड्डी पर हाथ रक्खे हुए राधिकाकान्त कुछ सोचने लगे। कुमारी घोष मन ही मन उस दृश्य की कल्पना करने लगी जब राधिकाकान्त अजीत बाबू के नाम लिखित रजिया का प्रेमपत्र पढ़ कर तथा उससे अजीत बाबू के अधःपतन की थाह पाकर चकित होंगे।

राधिकाकान्त एकाएक उठे और टोपी सिर पर रखते हुए बोले—"मिस घोष, चलो पार्क में थोड़ा टहल आवें। संसार की चिंताएँ तो मेरा पूरा पूरा कलेवा कर डालें अगर चौबीस घण्टे के भीतर मैं दो एक घण्टे के लिए चन्द्रमा की तरह साहस, फूल की तरह प्रफुल्ल और कोयल की तरह गायनशील बनने की कोशिश न करूँ।"

मिस घोष ने हँस कर कुर्सी से उठते हुए कहा—"मास्टर साहब और सब बातें तो मान लूँ, लेकिन कोयल की तरह गायनशील आप कैसे बनेंगे? आपका स्वर तो मीठा है नहीं, और न अब उसके मीठे होने की आशा है।"

राधिकाकान्त अपने स्वरों की इस समालोचना को सुन कर जोरों से हँस पड़े।

सबेरे डाक्टर साहब और बाबूसाहब के आने के पहले ही मिस्टर घोष इस लोक से चल बसे। मिस घोष ने साइकिल पर आकर बाबूसाहब को सूचना दी कि पापा स्वर्गवासी हो गये। बाबूसाहब का हृदय संसार के प्रति वैराग्य भाव से पूर्ण हो गया। उदास स्वर में बोले, "इस जीवन में क्या रखा है? जो कल था वह आज नहीं, जो आज है वह कल नहीं। मिस घोष की आँखों में आंसू देख कर बाबूसाहब ने कहा—बेटी, तू रोती क्यों है, तेरा एक पापा मरा तो दूसरा मैं तो तैयार हूं। मैं तो प्रतिभा और तुझे एक समझता हूं।"

मिस घोष मकान के भीतर गयी। बाबूसाहब ने कोचवान को गाड़ी तैयार करने की आज्ञा दी।

मिस घोष शीघ्र ही अपने बँगले को वापिस गयी। बाबूसाहब गाड़ी में बैठने वाले ही थे कि डाक्टर साहब मोटर में आ गये। कोचवान को छुट्टी मिली। बाबूसाहब भी मोटर ही में बैठे। मोटर चल चुकने पर डाक्टर साहब ने कहा—"सुना है, मिस्टर घोष का देहान्त हो गया।"

बाबूसाहब ने उत्तर दिया—"आपने जो कुछ सुना है वह बिलकुल सच है। आधा तो आपको कल्ही मालूम हो गया था।"

श्रीमती घोष के यहां से लौटने में बाबूसाहब को देर हो गयी। लगभग ग्यारह बज गये। डाक्टर किशनलाल की मोटर पर से उतरने पर जब वे अपने कमरे में कपड़े आदि उतार कर भीतर गये तो वहां सन्नाटा देखकर सशङ्क हृदय से चुपके ही लौट आये और भगवान चपरासी को कमरे में बुलाकर पूछने लगे—क्यों, क्या भइया आये थे?

भगवान ने रोनी सी सूरत बना कर कहा—"सरकार! बड़ा अनर्थ हो गया। हम लोगों ने बहुत समझाया-बुझाया, लेकिन

उन्होंने एक न माना, बहू जी और शान्ता को लेकर वे चले ही गये। प्रतिभा दीदी का रोना, अम्मा का सिर पीटना, जंजाली, जानकी महरिन, महराजिन तथा मेरा कहना-सुनना, पैर पकड़ना आदि व्यर्थ ही गया। मैंने कहा—भइया, मेरी एक प्रार्थना मान लो। सरकार थोड़ी देर में आते होंगे, उन्हें आ लेने दो, फिर चले जाना। लेकिन उन्होंने कहा—उन्हें क्या आ लेने दूं, उन्होंने तो कल रात ही को मुझे घर से निकाल दिया। यदि मेरे लिए उनके हृदय में कुछ प्रेम होता तो वे मुझे ऐसी लगती हुई बात कहते!"

बाबूसाहब की आँखों से आँसू निकल आये। अपने को संभाल कर बोले—"कुछ मालूम है, कहां गया है?"

भगवान—"यहीं कर्नलगंज में कोई मकान किराए पर ले लिया है। मैं समझता हूँ कि श्यामलाल बाबू के मारफत पता लग जायगा।"

बा०—"चलो तो।"

भ०—"हुजूर गाड़ी तैयार करा लूँ, तब तक आप आराम कर लें धूप में से आ रहे हैं।"

बा०—"अजी नहीं, चलो। गाड़ी और मोटर सब व्यर्थ है। जिनके लिए यह सब करता-धरता हूँ जब वही तकलीफ सह रहे हैं तब मैं आराम ही करके क्या करूँगा? नन्हीं सी दुलारी शान्ता, रानी सी पतोहू, आँखों का तारा लड़का—जब ये सब आज किराये के मकान में रहने गये हैं तो मेरे पैदल ही चलने में क्या हो जायगा? यह कह कर कुर्ता पहना, सिर पर दुपलिया टोपी रक्खी और स्लीपर पैरों में डाल कर बाहर निकले। बाबू-साहब का कष्ट भगवान के कलेजे पर कई मनों के पत्थर की तरह लग रहा था। जिसके यहां बड़े बड़े साहब मिलने आते

हों, जिसकी रियासत से सैकड़ों नौकरों-चाकरों का पेट पलता हो, जिसके यहाँ मोटर, ताँगा, पालकी, गाड़ी आदि सभी कुछ हो, जिसने गुलगुल गलीचों, दरियों और फर्शों के अतिरिक्त अन्य कहीं बहुत कम पैर रक्खे हों वही बाबू जगजीवन सिंह लड़के के प्रति प्रेम से विवश होकर छाता तक लेने की परवा न कर के इतनी कड़ी धूप में बाहर चल पड़े। सन्तान की ममता कितनी विचित्र है! अपना रक्त कितना विवशकारी है! यही सोचते हुए भगवान को रोमाञ्च हो आया। बाबू साहब भगवान को साथ लेने के लिए फाटक पर खड़े हो गये थे। छाता लेकर भगवान दौड़ा। इतनी ही देर में उसने देखा कि बाबूसाहब के चेहरे पर पसीने की बूँदें आ गयीं। उसका बस चलता तो वह वहीं उन्हें पंखा झलने लगता। परन्तु, लाचार था। बाबूसाहब को छाते द्वारा धूप से बचाता हुआ वह उनके साथ कर्नलगञ्ज की ओर चला।

भगवान चपरासी और बाबूसाहब के बहुत ढूँढ़ने पर भी अजीत का नया मकान नहीं मिला। श्यामलाल का भी पता नहीं चला। इस समय बाबूसाहब की निराशा का, विषाद का कोई पार न था। वे बेदम होकर अधमरे से घर लौटे। माथे से लेकर मुँह तक पसीने का तार बँधा था, चेहरे पर कालिमा छा गयी थी। अपने कमरे में आये तो लाचारी और बेबसी की मूरत से; मानो आज सरबस कहीं गँवा आये हैं। अपनी आबरू उन्हें प्राणों से अधिक प्यारी थी; उसी को आज उनका दुलारा अजीत फुटबाल बना कर लात मार रहा था; उसकी जगह कोई दूसरा होता तो वह उसकी खाल खिंचवा लेते, उसकी जान के गाहक बन जाते। पर अपने ही कलेजे के टुकड़े से क्या कहें? उसे दण्ड देने से तो स्वयं को दुगना दण्ड भोगना पड़ता है।

लक्ष्मी देवी को बड़ी आशा थी कि बाबू जी बच्चा को मना लावेंगे, किन्तु जब उन्होंने उनकी सूरत देखी तो आँखों के आगे अँधेरा छा गया। कुछ पूछने की हिम्मत नहीं हुई। किवाड़ से लगकर ऐसे खड़ी हो गयी जैसे कोई बड़ी अपराधिनी अपने अपराध के लिए क्षमा माँगने आयी हो, किन्तु संकोच के मारे कुछ भी कहने में असमर्थ हो। उन्हें आशा थी कि क्रोध ही से सही, किन्तु यदि कुछ बोलेंगे तो बच्चा क्यों नहीं आये, इसका पता लग जायगा। लेकिन जब उनकी ओर देख कर भी बाबू-साहब ने कुछ न कहा और चुपचाप पलँग पर दूसरी ओर मुँह करके लेट गये तो लक्ष्मी देवी को उस समय वहाँ से चला जाना ही पड़ा। उधर प्रतिभा माँ के आने की प्रतीक्षा कर रही थी, किन्तु शीघ्र ही उसे भी निराश और भग्न-हृदय हो जाना पड़ा। उस दिन न दोपहर को चूल्हे में आग जली और न बँगले के भीतर रहने वाले किसी मनुष्य ने आहार ग्रहण किया, बाबूसाहब की वेदना से सभी का हृदय विदीर्ण हो रहा था।

संध्या समय बाबूसाहब ने जंजाली को श्यामलाल के पास भेजा। किन्तु शीघ्र ही लौट कर उसने बताया कि श्यामलाल और उनकी माँ दोनों ही मकान में ताला बन्द करके कहीं गये हैं। इस परिस्थिति से बाबू साहब झुँझला-झुँझला कर रह गये।

सारनाथ की सैर से लौटने के बाद भोजन आदि से निवृत्त होकर जब कमलाशंकर शैया पर गये तब अपने हृदय की दुर्बलता को कोसने लगे। किन्तु यह विवेक अधिक काल तक टिक न सका; चंचला का स्मरण आते ही, उसके लावण्य चित्र का मानसिक दर्शन होते ही वह उसके अंगों की शोभा तथा कोमलता के चिंतन और व्यङ्ग-परिहास आदि से अलंकृत मीठी बातों के रस-पान में एक दम से बहक गया।

कमला शंकर को ढूँढ़ने पर भी चंचला में कोई ऐब नहीं मिल सकता था। यदि उन्हें कोई भी दूषण उसमें मिलता था तो यही कि प्रतिभा के प्रेम में आबद्ध होने के पहिले अपने रूप का चमत्कार उसने क्यों नहीं दिखलाया? परन्तु शीघ्र ही इस विषय में भी चपला की निर्दोषता उसे कायल कर देती थी। यदि वह अब तक मुझे दिखायी नहीं पड़ी थी तो उसमें भी कैसे वह अपराधी हुई? क्या वह बनारस से इलाहाबाद या आजमगढ़ की यात्रा कर के मुझे देखने के लिए आती? क्या किसी भी हिन्दू लड़की से यह आशा की जा सकती है? अथवा क्या उसके ऐसा करने से—जो प्रकृति और समाज दोनों के नियमों के सर्वथा विरुद्ध है—क्या निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि मैं प्रतिभा जैसी किसी रूपवती युवती के प्रेम का भिखारी न बनता? भविष्य में प्रतिभा को अथवा चंचला को ग्रहण करना होगा—इस सम्बन्ध में विचार करने की शक्ति से वंचित होकर वह तैरने की कला से सर्वथा अनभिज्ञ डूबते हुए व्यक्ति की तरह प्रवाह के अधीन हो गया और कभी चंचला के तथा कभी प्रतिभा के प्रणय-भाव का रसास्वादन करने लगा।

सबेरे आजमगढ़ चलने की तैयारियां होने लगीं। ग्यारह बजे की गाड़ी से चल कर सब लोग संध्या समय तक आजमगढ़ भी पहुँच गये। रात को जब सुकुल जी पत्रा लेकर तिलक और विवाह की तिथियों को नियत कर के उद्देश्य से पं० सदाशिव मिश्र के साथ बैठ गये तब तो कमलाशंकर को वर्तमान परिस्थिति गंभीर होती जाती जान पड़ी। वह चंचला को पाने के लिए उतना ही व्याकुल था जितना प्रतिभा को पाने के लिए, किन्तु अब जब चंचला उसके बहुत अधिक निकट तथा प्रतिभा उचित से बहुत अधिक दूर जा पड़ी तब प्रतिभा और अजीत के साथ की हुई प्रतिज्ञा ने अपना बल संचय करके

उसके मानसिक धरातल पर पदार्पण किया और उसके सामने अधःपतन की वह विकट परिस्थिति खड़ी कर दी जिसने उसे हत-ज्ञान सा कर दिया। वह अपने इस दिमागी दलदल से निकलने के लिए किसी उपाय की खोज में पास ही के एक मन्दिर की ओर चला गया।

एकान्त मिल जाने पर कमलाशंकर ने अपने मस्तिष्क की संपूर्ण शक्तियों को इस समस्या का हल ढूँढ़ने में लगा दिया। चंचला के साथ विवाह स्वीकार करने में निहित भयंकर अनौचित्य बादल के बीच बिजली की चमक की तरह उसे दिखाई पड़ पड़ कर मानो चंचला के सौन्दर्य-भय से उसकी दृष्टि से ओझल हो जाया करता था। दूसरो ओर प्रतिभा के हृदय में उसके प्रति घृणा उत्पन्न होने की आशंका और अजीतसिंह के अपमान तथा क्रोध का भय उसे चंचला की ओर अधिक न झुकने के लिए विवश कर रहा था। एकान्त में आने पर उसने आशा की थी कि मैं किसी शान्तिप्रद निर्णय पर पहुँच जाऊँगा, परन्तु प्रत्येक पथ के अवलम्बन में सैकड़ों संकटों कठिनाइयों और निन्दाओं की भावना ने डंक का रूप धारण करके उसे जैसे चारों ओर से घेर कर डसना शुरू कर दिया। इस कारण वह घबरा कर घर की ओर हो चल दिया। उसे यह स्पष्ट होने में देर न लगी कि धीरे धीरे परिस्थिति काबू के बाहर होती जा रही है और जैसे दलदल में फँसा हुआ आदमी आपही आप उससे निकलने की कोशिश करता ही है, चाहे उस कोशिश के परिणाम-स्वरूप वह उसमें और भी क्यों न धँस जाय, वैसे ही कमलाशंकर ने सुकुल जी से जाकर कहा—"पंडित जी मुझे क्यों विवाह के झंझट में डालते हैं; मैं तो विवाह करना ही नहीं चाहता।"

सुकुल जी जोर से हँस पड़े। इस हँसी से उनका सम्पूर्ण मुख-मंडल प्रफुल्ल हो गया। कमलाशंकर के चिंतित मस्तिष्क को ऐसा अनुभव हुआ जैसे सुकुल जी उसके प्रति असहानुभूति का व्यवहार कर रहे हों। किन्तु कमलाशंकर को इन भावों में अधिक निमग्न होने का अवसर न देकर सुकुल जी ने कहा—"कमला बाबू, आप तो बहुत बुद्धिमान पुरुष हैं, ऐसी दशा में क्या यह मेरे लिए आवश्यक है कि मैं विवाह करने की अनिवार्यता की ओर आप का ध्यान आकर्षित करूँ? आपकी पूजनीया माता वृद्धा हैं, वे फूलबाला की देखरेख कब तक कर सकेंगी?

यह कह कर उत्तर सुनने की आशा से सुकुल जी ने कमलाशंकर के मुख पर अपनी दृष्टि स्थिर कर दी। कमलाशंकर थोड़ी देर तक नीचे की ओर दृष्टि गड़ाये रह कर बोला—"पंडित जी, विवाह करना मैं स्वीकार भी कर लूँ तो इस वर्ष मैं उसे स्थगित ही रखना चाहता हूँ"।

"क्यों, कोई कारण?" सुकुल जी ने ऐसी आवाज़ में पूछा, जिसने कमलाशंकर के मस्तिष्क को थोड़ी देर के लिए अस्त-व्यस्त कर दिया। मानो इतना ही यथेष्ट नहीं था, सुकुल जी ने फिर कहा—"आप की एम० ए० की द्वितीय वर्ष की परीक्षा भी समाप्त हो गयी, अब तो वृद्धा माता के जीवन के थोड़े से दिनों को आनन्दमय बनाने के अतिरिक्त अन्य कोई काम आप के पास है नहीं।" वास्तव में सुकुलजी का कथन अकाट्य था, उसका कोई उत्तर कमलाशंकर के पास नहीं था। किन्तु आप ही आप न उनके मुख से निकल आया—"मेरी कुछ रुचि ही ऐसी है कि मैं इस साल विवाह न करूँ।"

अबकी तो सुकुल जी और भी जोर से हँस पड़े। उस

दीर्घ-अट्टहास में कमलाशंकर को अपनी तर्क शून्यता जैसे विराट रूप धारण करके उनके चेहरे की सम्पूर्ण श्री को अस्त व्यस्थ करने लगी। सुकुल जी बोले—"तेईस चौबीस वर्षों का एक सुन्दर नौजवान, जिसका शरीर उतना ही हृष्ट-पुष्ट है जितना मस्तिष्क; एक सुन्दरी और सर्वगुण-सम्पन्न बाला से विवाह करने से इनकार करे तो यह तो केवल रुचि की बात नहीं हो सकती। क्या अमरीका और इंग्लैण्ड के कुमारों की तरह तुम भी जन्मपर्य्यन्त कुमार तो नहीं बने रहना चाहते हो, बाबू ?"

"पण्डित जी, मैं कुछ भी कहना नहीं चाहता। इतना ही कहूँगा कि इस वर्ष मैं किसी भी दशा में विवाह करने के लिए तैयार नहीं हूँ। मेरी इस इच्छा की पूर्त्ति में आप मेरी सहायता कीजिए"—कमलाशङ्कर ने तुरन्त ही साहस पूर्वक कहा।

सुकुल जी ने उत्तर दिया—"कमला बाबू, मुझे पूर्ण रूप से तर्क संगत युक्तियों द्वारा सन्तुष्ट करने के पहले ही आप मेरी सहायता चाहते हैं; आपकी इस इच्छा को तो मैं आपकी शिक्षा के अनुरूप नहीं समझता। मैं आप लोगों के घरेलू मामलों में यदि थोड़ी-बहुत दिलचस्पी रखता हूँ तो इस कारण कि मैं समाज की सेवा करना चाहता हूँ। किन्तु इस सेवा का यह अर्थ तो नहीं हो सकता कि भूखे को अधिक भूखा और संतुष्ट को अधिक संतुष्ट बनाने के कार्य में मैं अनुचित रूप से भाग लूँ। हाँ, यदि आप अपनी माता जी को संतुष्ट कर लें तो मैं बनारस वापिस जा कर पण्डित सदाशिव को समझा लूँगा। इतनी सहायता मैं आपकी कर सकता हूँ। आपकी श्रद्धेय माता जी इस विवाह को पसन्द करती हैं; इसलिए मैं यहाँ उपस्थित हूँ; अन्यथा मेरा यहाँ क्या काम है ?"

पण्डित जी की इस बेलाग बात ने कमलाशङ्कर को आगे बातचीत करने के लिए कोई अवसर ही नहीं रहने दिया। 'बहुत अच्छा' कह कर तथा चेहरे पर रुखाई का भाव धारण किए हुए कमलाशङ्कर शुकुल जी के पास से चले गये। विवाह रोकने के लिए माँ से ही बातचीत करना अधिक आवश्यक है, इसे वे अच्छी तरह जानते थे। परन्तु वे माँ से संकोच-वश कुछ कह नहीं सकते थे, विशेष कर इस विवाह के सम्बन्ध में, क्योंकि उन्हें इस बात की भी आशङ्का थी कि माँ को प्रतिभा वाला प्रेम-काण्ड मालूम हो चुका है। क्या करूँ ? इसी प्रश्न की मीमांसा करते हुए वे मकान के समीप सड़क पर टहलने लगे। क्रमशः एक घंटा बीत गया, किन्तु माँ से आमने-सामने बात-चीत करने का निश्चय करने में वे असमर्थ रहे।

किन्तु जब वे लौटे तो देखा कि सुकुल जी ने उनका यह काम हलका कर दिया था; माँ को उनके विचारों की सूचना दे दी थी। क्योंकि ज्योंही वे अन्नपूर्णा देवी के सामने पड़े त्यों ही वे पूछ बैठीं—"क्यों भइया, तुम्हारी क्या इच्छा है ? तुम विधुर रहना चाहते हो तो साफ-साफ सुकुल जी से क्यों नहीं कह देते ? इसके अतिरिक्त अब तुम जहाँ कहीं रहो वहाँ बच्ची को भी अपने साथ लिए रहो।" कमलाशङ्कर भौचक सा रह गया। तुम ब्याह नहीं करना चाहते हो तो साफ-साफ सुकुल जी से क्यों नहीं कह देते ?—इन शब्दों के भीतर जो गूढ़ व्यंग छिपा था उसने कमलाशङ्कर के हृदय पर प्रहार करके उसे पानी पर कागज की नाव की तरह हलका और निस्सार कर दिया। अधिक बातचीत होने पर कहीं माँ कुछ और कठोर बातें न कह बैठें, अपने व्यंगों की स्पष्ट व्याख्या न कर डालें, यह सोच कर उन्होंने कुछ विशेष कहने का साहस नहीं किया; दबी जबान में वे केवल यही बोले—"माँ, मैंने

तो विवाह केवल इस वर्ष और टाल देने के लिए सुकुल जी से कहा था। मैं चाहता हूँ कि कहीं नौकरी-चाकरी कर लूँ तब विवाह करूँ।" कमलाशङ्कर का यह तर्क और भी निर्बल था। अन्नपूर्णा देवी ने तुरन्त ही उत्तर दिया—"वाह, खूब कही, जैसे नौकरी-चाकरी न मिलने पर मैं तुम्हारी बहू को भूखों मार डालूँगी, और जमींदारी की सारी आमदनी अपने साथ ले जाने के लिए जमीन में गाड़ कर सुरक्षित रखूँगी। कमल तुम्हें हो क्या गया है? तुम ऐसी बेजान और वाहियात बातें कहना कब से सीख गये हो? जाओ चुपचाप भोजन कर लो,—महराज कब से तुम्हारी राह देख रहा है—मैं जो कुछ करूँगी; तुम्हारी ही भलाई के लिए करूँगी; उसमें हस्तक्षेप न करो!"

माँ के इन शब्दों ने कमलाशङ्कर के चित्त का सारा आन्दोलन शान्त कर दिया। जैसे दहकता हुआ अंगारा पानी का स्पर्श पाते ही काले कुरूप कोयले के रूप में परिणत हो जाता है उसी तरह कमलाशङ्कर के हृदय में अजीत के साथ की हुई प्रतिज्ञा को पूरी करने का जो सद्भाव उत्पन्न हुआ था वह अन्नपूर्णा देवी के शब्दों से सर्वथा तिरस्कृत होकर तिरोहित हो गया। तेज, ओज, श्री सब से वञ्चित होकर कमलाशङ्कर भोजन करने चले गये।

लगभग एक सप्ताह के बाद कमलाशङ्कर के सामने प्रश्न यह नहीं था कि चंचला के साथ विवाह कैसे रुके, बल्कि यह कि प्रतिभा और अजीत बाबू से किस प्रकार छुटकारा मिले। उन्होंने सबेरे शौचादि क्रिया से निवृत्त होने के बाद प्रतिभा, राधिकाकान्त और अजीत बाबू के नाम पत्र लिखे, जिनमें अपनी विवशता का पूरा वृत्तान्त लिख डाला। सुकुल जी ने मिश्र जी को सूचना भेज दी। वे आये और वरोक्षा की रस्म पूरी हो गयी।

इसके बाद सुकुल जी तथा मिश्र जी उसी दिन गाड़ी से बनारस चले जाते लेकिन सुकुल जी को कुछ ज्वर आ जाने के कारण यह विचार स्थगित हो गया।

प्रतिभा की एक चिट्ठी कई दिनों से कमलाशङ्कर के पास पड़ी हुई थी। उसका उत्तर दे देना अब उन्होंने उचित समझा। बहुत संक्षेप में उन्होंने यह पत्र लिखा।

प्रिय प्रतिभा;

तुम्हारा कृपा पत्र मिला। वहाँ की परिस्थिति के सम्बन्ध में जितना तुम समझ सकती हो उतना मैं यहाँ से कैसे समझ सकता हूँ। सब बातों पर गम्भीर विचार करने के अनन्तर मैं तुम्हारी आज्ञा को मानने के लिए विवश हो रहा हूँ।

तुम्हारा वही

कमल

यह पत्र लिफाफे में बन्द कर के कमलाशङ्कर ने प्रतिभा की सम्मति के अनुसार उस पर मिस घोष का पता तथा पीछे की ओर 'प्र' लिख कर तुरन्त ही डाकघर में डलवा दिया। राधिकाकान्त और अजीत बाबू के नाम लिखे गये पत्रों में भी थोड़ा बहुत संशोधन करने के अनन्तर उन्होंने उन्हें लिफाफे में बन्द किया और सुकुल जी के हाथ भेजने के उद्देश्य से चलते समय उन्हें देने के लिए ट्रङ्क में सँभाल कर उनको रख दिया।

ज्वर थोड़ा कम होने के साथ ही, लगभग तीन बजे सुकुल जी ने अगली गाड़ी से बनारस चलने का आग्रह शुरू किया। पं० सदाशिव मिश्र ने नाड़ी टटोली तो ज्वर वास्तव में कम था। ऐसी अवस्था में उन्होंने पाँच बजे की गाड़ी से बनारस चलने का निश्चय कर लिया। बैरिस्टर हो ठहरे, समझा बुझा कर श्रीमती अन्नपूर्णा देवी से भी उन्होंने अनुमति प्राप्त कर ली। फलतः जब

सुकुल जी और मिश्र जी के सामान घोड़ा गाड़ी में रखे गये तब इशारे से अलग बुलाकर कमलाशङ्कर ने सुकुल जी के हाथों में दो पत्र रख दिये और प्रार्थना की कि वे यथासंभव शीघ्र ही उपयुक्त स्थान पर पहुँचा दिये जायँ। सुकुल जी ने मुसकरा कर यह कार्य्य भार स्वीकार कर लिया। टिकट आदि लेने में सहायता देने के लिए कमलाशंकर भी गाड़ी में साथ साथ चले।

× × × ×

स्टेशन से कमलाशङ्कर के लौटते ही अन्नपूर्णा देवी ने कहा—"कल तुम्हें सबेरे ही की गाड़ी से इलाके पर जाना होगा।"

कमलाशङ्कर ने आज्ञा शिरोधार्य्य कर ली।

[२६]

आखिरकार, अगले दिन लगभग दोपहर को जब बाबूसाहब सोकर उठे ही थे, श्यामलाल पसीने से लथ पथ हालत में आ गया। उसे देखते ही बाबूसाहब के हृदय को कली खिल गई। श्यामलाल के कुर्सी पर बैठते बैठते उन्होंने अत्यन्त उत्कण्ठा के साथ पूछा—"कहो जी बच्चा कैसे है? तुम तो जैसे गुलर के फूल हो गये। न जाने कितने बार मैंने जंजाली को तुम्हारी खोज में भेजा होगा, किन्तु जब भेजा तभी तुम्हारे घर का ताला बन्द मिला।" श्यामलाल तुरन्त ही रूमाल से माथे का पसीना पोंछता हुआ बोला—"बाबू जी, मुझे बहुत दुःख है कि आप को इतनी परेशानी उठानी पड़ी। मैं आपके पास आने वाला ही था कि नैनी जाने का बहुत आवश्यक काम सामने आ गया। अभी अभी तो मैं वहाँ से लौटा हूँ। मैं समझता था कि बच्चा जो कम से कम मकान का पता—ठिकाना तो आप को बता जायँगे। मुझसे बड़ा अपराध हुआ, क्षमा कीजिए। बच्चा जी अच्छा

तरह हैं। शान्ता अलबत्ता रोती है। बहू जी को भी वहां का रहना अच्छा नहीं लगता।"

"बच्चा जी का अब क्या विचार मालूम होता है? वहीं रहेंगे या फिर लौट कर आवेंगे? आठ दस दिन तो हो गये।" बाबू साहब ने पूछा।

श्या०—"वहाँ तो वे क्या रह सकेंगे! परन्तु दुराग्रह का भाव उनमें काफी है। इससे समझ पड़ता है कि कष्ट सह कर भी अभी वे वहीं रहेंगे।"

बाबूसाहब के हृदय में एक ठेस सी लगी। उन्होंने कहा—"अच्छा है, अब उनको इस मार्ग पर चलने के परिणामों का भी थोड़ा ज्ञान हो जाय तो अच्छा ही है, तभी उनकी आँखें भी खुलेंगी। मैं अब उन्हें मनाता नहीं फिरूँगा।"

यह सब वे कह तो ले गये, लेकिन उन्हें अपने कच्चे दिल का पता था। इसलिए इतना और कह दिया—"क्या कहूँ यह नालायक शान्ता और बहू को छोड़ गया होता तो फिर चाहे जहाँ जाता, चाहे जो करता, मुझे कुछ चिंता नहीं थी। बच्चों का चला जाना ही मेरे कलेजे में काँटे की तरह गड़ रहा है। शान्ता को तुमने रोते देखा है?

"श्यामलाल ने उत्तर दिया—हाँ, बाबूजी, 'बाबा' 'दादो' 'बूआ' कह कह कर वह घण्टों रोया करती है। पहली बार साँझ को जब जंजाली मेरे मकान पर गया था उसके थोड़ा ही पहले मैं बाहर चला गया था, लेकिन अम्मा तो शान्ता को ही बहलाने के लिए अजीत बाबू के मकान पर चली गयी थीं।" हाँ, दूसरे दिन मैं अम्मा को भी लेकर चला गया था।

बाबूसाहब की आँखें भर आयी। बोले—"लेकिन यह कष्ट तो अब सहना ही पड़ेगा। बहू उसकी, बेटी उसकी। उन पर

मेरा क्या अख्तियार है, वे लाख रोएँ और सिसकें, मैं उसकी आज्ञा के बिना उन्हें वापिस भी कैसे ला सकता हूँ? वे वहाँ चिल्लाएँ, मैं यहाँ कराहूँ, यह सब मिलकर भी तो मुझे वह अधिकार नहीं देता कि मैं चला जाऊँ और उससे बिना पूछे ही उन्हें लेकर चला आऊँ। एक ससय था जब मेरा यह अधिकार स्वीकार किया जाता। लेकिन अब ज़माना बदल गया है, अब सभ्यता ही दूसरी हो गई है पहले जो लड़के का लज्जाजनक व्यवहार समझा जाता वही अब भयंकर रूप में मेरी आंखों के सामने खड़ा होकर अपने कठोर अस्तित्व का मुझे मान करा रहा है। ख़ैर! कहो, आज कल तुम क्या कर रहे हो?"

श्यामलाल ने उत्तर दिया—"बाबू रामलखन सिंह की कृपा-दृष्टि तो हो गयी है, आशा है, शीघ्र ही मुझे सफलता मिल जायगी। यह सब आपके श्री चरणों का प्रताप है।"

यह कहने के बाद श्यामलाल ने उठने की चेष्टा की और पूछा—"क्या अजीत बाबू के लिए कोई संदेशा दीजियेगा?"

बाबूसाहब ने उत्तर दिया—"संदेशा क्या दूँ, अब यही सोचता हूँ कि छाती पर पत्थर रख कर, शांता और बहू के कष्टों को भी भुला कर बच्चा को स्वतंत्रता का आनन्द लेने ही दूँ। जाओ जंजाली को साथ लिवाते जाओ, उसे बच्चा का मकान दिखला देना।"

श्यामलाल कमरे में से उठ कर बाहर आया और जंजाली को ढूँढ़ कर अपने साथ ले गया।

[३०]

अजीत बाबू पहले पहल बाबूसाहब ही की तरह संध्या-गायत्री के पाबन्द थे और गंगा-स्नान करके अपने बाग के मन्दिर में

घण्टों शङ्कर की स्तुति किया करते थे। परन्तु इतिहास का अध्ययन करते करते उन्हें यह जान पड़ा कि धार्मिकता ने ही भारतवर्ष को अकर्मण्य बना रक्खा है। धीरे-धीरे इस संबन्ध में उनका विश्वास पक्का हो गया। अर्थशास्त्र के अध्ययन ने उन्हें यह बतलाया कि उद्योग-धन्धों में भारतवर्ष बहुत पिछड़ा हुआ है। अँगरेजी साहित्य ने तो उनके मस्तिष्क पर पूरा अधिकार ही कर लिया। फलतः अजीत ने पाश्चात्य वेष-भूषा, पाश्चात्य विचार-शैली, स्वीकार कर ली। अँगरेजी भाषा के द्वारा भाव-प्रकाशन करने में वह विशेष गर्व का अनुभव करते थे। समस्त भारतीय संस्थाओं के प्रति उनके हृदय में अपार घृणा थी। परदा, बाल-विवाह आदि की ओर तो ध्यान जाने पर उनका चित्त अपरिमित क्रोध से अस्थिर हो उठता था। इस प्रवृत्ति के विकास पाने पर संध्या गायत्री, शिवपूजन, गंगा-स्नान आदि सभी बातें क्रमशः परित्यक्त हो चलीं। बाबूसाहब ने अजीत की धार्म्मिक विरक्ति की ओर ध्यान न दिया हो, सो बात नहीं। वास्तव में वे उसे डिप्टी कलेक्टर बनाना चाहते थे और अपने मित्रों से गर्व-पूर्वक कहा करते थे—"लोग समझते हैं कि बी० ए० पास करना खेल है, बच्चा परिश्रम करते करते पिसे जाते हैं; ऐसे आस्तिक और भक्त लड़के को भी पढ़ने से अवकाश ही नहीं मिलता कि वह थोड़ी देर शिवपूजन तो कर ले।" बाबूसाहब धोखे ही में पड़े रह जाते और अजीत बाबू किसी दिन गिरजा घर में ईसाई धर्म्म की दीक्षा ले चुके होते, यदि पं० सदाशिव मिश्र के आन्दोलन ने उनका ध्यान आकर्षित करके उन्हें दूसरे पथ पर न चलाया होता।

पं० सदाशिव मिश्र बड़े ही निर्भीक पुरुष थे। उनकी निर्भीकता का एक नमूना तो यही था कि उन्होंने विलायत में आई० सी० एस० और लगे हाथों बार-एट-ला

पास करने जाकर अशिक्षित ब्राह्मणों के कोपानल में अपने को आहुति कर दिया था। इंगलैण्ड के अतिरिक्त फ्राँस, इटली, जर्मनी आदि देशों में भी उन्होंने भ्रमण किया था और विभिन्न समाजों में प्रचलित रीति-रस्मों का सूक्ष्म अध्ययन किया था। अन्य राष्ट्रों की उन्नत दशा देख कर उनकी आँखें खुल गई थी और स्वदेश लौट आने पर उन्होंने जिस प्रकार की कलेक्टरी की थी उससे असन्तुष्ट होकर सरकार ने उन्हें एक अभियोग में फँसाना चाहा था। सरकार की इसी निंद्य चेष्टा से उत्तेजित हो कर मिश्र जी ने सरकारी नौकरी को लात मारा और 'स्वाधीन जीवन' नामक प्रभावशाली दैनिक पत्र को जन्म दिया था, जिसका उद्देश्य भारतवर्ष का सामाजिक और राजनैतिक सभी प्रकार की उन्नति करना था। पं० सदाशिव मिश्र के 'स्वाधीन जीवन' ने अजीत बाबू की आँखें खोल दी थीं। परन्तु अभी घर में रहते हुए वे उनकी शिक्षा के अनुसार विशेष आचरण नहीं कर सकते थे। जितना वे करते थे उतना ही पिता के लिए असह्य हो रहा था।

अजीत और बाबूसाब का संघर्ष और विरोध लगभग दो वर्षों से आरम्भ हुआ था, जब अजीत के उद्धत स्वभाव के कारण कालेज के अध्यापकगण प्रायः शिकायतें करने लगे थे। कालेज से अजीत के वहिष्कृत हो ने पर तो बाबूसाहब का माथा ही ठनक गया था। परन्तु, अभी सच पूछिए तो श्रमिकसंघ, किसान-सभा आदि के लिए आन्दोलन करते तथा अपनी देश-भक्ति की ढोल पीटते रहने पर भी अजीत बाबू उतना ही कर रहे थे जितना किये बिना उनसे किसी तरह रहा ही नहीं जाता था। वे संहारात्मक उत्साह-जनित ऊँची से ऊँची आकांक्षाएँ लेकर गृह के भीतर प्रवेश करते थे और वहाँ बाबूसाहब की

संकीर्णता, माता की प्रेम-कातरता, पद्मा की कलह-प्रियता आदि के घातक वातावरण में अपने यौवन की उमङ्ग को कुचली जाती हुई देख कर भी धीरज धरकर रह जाते थे। वे अपनी परिस्थिति से बेतरह खीझते थे, परन्तु लाचार थे। जब वह स्थिर-चित्त रहते थे तब कभी कभी सोचते थे कि पिताजी को सब की चिन्ता करनी पड़ती है; ऐसी दशा में यदि वे विरोध करने पर झुँझलाएँ तो उनके लिए यह सर्वथा स्वाभाविक है। परन्तु, चित्त के उत्तेजित होने की अवस्था में वे पिता, माता, पत्नी, सन्तति आदि सभी की ओर से खड़े होने वाले बंधनों को तोड़ देने के लिए व्याकुल हो उठते थे।

कर्नलगञ्ज में आठ रुपये किराये के मकान में पद्मा और शान्ता को लेकर जब अजीत ने रहना शुरू किया तब यह तो उसे अनुभव हुआ कि यहां पिता के हस्तक्षेप से मुक्त हूं और अब अपनी चिर-सञ्चित अभिलाषाओं की पूर्त्ति कर सकता हूं। परन्तु वहाँ एक बड़ी भारी अड़चन हुई। अभी तक सबेरे हाथ मुँह धोकर, कभी जल-पान करके और कभी जल-पान किये बिना ही साइकिल पर बैठकर वे देश सेवा का काम करने चल देते थे। सो उसमें अब बाधा पड़ने लगी। पहले दिन की तो बात ही जाने दीजिए। उस दिन तो यदि अजीत को भूखा भी रह जाना पड़ता तो उन्हें कष्ट न होता। दूसरे दिन को भी छोड़िए, क्योंकि अभी सब व्यवस्था ठीक नहीं हुई थी। परन्तु तीसरे दिन भोजन करने के समय जब रूखी-सूखी वस्तुएं उसके सामने आयीं तब न तो वे भरपेट खा सके और न किसी को जी भर कड़ी-कड़वी बातें ही सुना सके। यदि इतनी ही असुविधा का अनुभव करके उन्हें छुट्टी मिल जाती तो भी ग़नीमत थी। किन्तु, उसी समय पद्मा ने कहा—"बाबूजी के साथ लड़ तो तुम रहे हो और उसका फल भुगतना

पड़ रहा है मुझे। मैं साफ कहे देती हूँ कि मुझे इन कष्टों का अभ्यास नहीं है। ऐसा ही है तो मुझे मायके भेज दो और तुम जी भर देश की सेवा करो। ऐसी देश-सेवा न देखो कि लकड़ी आदि दिये बिना ही चल दिये। शायद इस मकान को भी अपना बँगला समझ लिया था। श्यामलाल बाबू न आये होते तो अभो आग भी न जली होती।"

अब अजीत बाबू को बँगले और इस मकान का अन्तर मालूम हो गया। इन सब कठिनाइयों की उन्होंने कभी कल्पना नहीं की थी। उन्हें पद्मा की इस उचित शिकायत का कोई उत्तर नहीं सूझा। कुछ देर चुप रहकर उन्होंने कहा—"कोई महरी ठीक हुई या नहीं?"

पद्मा ने उत्तर दिया—"ठीक कौन करे, बुलावे कौन? क्या मैं मकान के बाहर निकल कर बुलाने जाऊँ? यदि यह आशा करो कि बाबू श्यामलाल तुम्हारे लिए सब कुछ कर दें तो यह सर्वथा असंभव है। बेचारे वे भी तो अपने काम में फँसे रहते हैं। उनका मकान भी तो बहुत पास नहीं है।"

अजीत बाबू स्थिति की वास्तविकता को धीरे-धीरे समझ गये।

पद्मा ने फिर पूछा—"चारपाई चौक से कब लाओगे? भूमि पर सोने से मेरी कमर में दर्द होने लगा। शान्ता के लिए दूध का जल्दी प्रबन्ध कर दो, नहीं तो वह बीमार हो जायगी।"

इतना प्रबन्ध एक साथ करना पड़ेगा—यह सोच कर अजीत बाबू जैसे बेचैन हो उठे। पं० सदाशिव मिश्र को बधाई देने के लिए चार बजे से सभा होगी, उसकी सूचना प्रकाशित कर दी गई है। सभा में न सम्मिलित होना असंभव है—इन बातों की ओर ध्यान जाते ही गृह-प्रबन्ध की साधारण बातें भी उन्हें पहाड़ सी जान पड़ने लगीं। व्याख्यान में जो कहनी होंगी

वे उनके कानों में गूँजने लगीं। मेज पर मुष्टि-प्रहार करते हुए उच्च स्वर में गवर्मेण्ट को किस प्रकार ललकारना होगा और तब जनता प्रसन्न होकर किस प्रकार तुमुल करतल-ध्वनि करेगी—इसकी ओर चित्त जाते ही ये अस्थिर हो उठे। यदि इतना विशाल और प्रबल प्रलोभन न होता तो संभवतः वे उसका त्याग भी कर सकते, परन्तु वर्तमान स्थिति में तो लाचारी थी।

एक दिन अजीत बाबू भोजन करके उठे ही थे कि इतने में किसी की आवाज उसके कान में पड़ी। बाहर आकर उसने देखा कि बाबूसाहब, श्यामलाल और जँजाली आये हैं। अजीत ने पिता को प्रणाम किया। बाबूसाहब ने आशीर्वाद देते हुए कहा—"बेटा, अब तो तुम्हारी ऐसी ही गई। मैंने तुम्हें जो कुछ कहा था उसका मतलब यही था कि किसी तरह तुम अपने ढङ्ग बदल दो, लेकिन उसका भी परिणाम उलटा ही देखा। खैर, अब तुमने दिखा दिया कि तुम मुझसे अलग होकर भी सुख से रह सकते हो। मैंने अपनी हार मान ली। अब चलो अपने घर में। बेटा, सत्तावन साल की तो उम्र हो ही गई है। चार छः वर्ष और जी जाऊँ तो जी जाऊँ। घर तुम्हारा, रियासत तुम्हारी, हम बूढ़े-बूढ़ी तो चार दिन के लिए तुम्हारे मेहमान हैं। तुम्हारी भलाई के ख्याल से दो एक कड़ी बात कह देता था। सो अब मैंने उससे भी कान पकड़ा।"

पिता की विनीत बातों से अजीत का कठोर हृदय भी पिघल गया।

बाबू साहब ने फिर कहा—"बस एक ही बात में तुम मेरा विरोध मत करो। बबुई का विवाह जैसा मैं करना चाहता

हूँ, मुझे करने दो। मेरे बुढ़ापे की यही अभिलाषा है, इसे पूरी हो जाने दो। चलो सामान ठीक करो, चलो।"

अजीत किंकर्तव्य-विमूढ़ होगया। इस समय न कठोर होते बनता था, न मृदु। बाबूसाहब का यह प्रेममय आक्रमण अजीत के लिए भी अजेय सा हो रहा था। थोड़ी देर तक मौन रह कर उसने कहा—"पिता जी, आप प्रतिभा का विवाह बाबू रामलखन के साथ करने पर तुले हुए हैं। परन्तु आपको नहीं मालूम कि प्रतिभा उन्हें घोर घृणा की दृष्टि से देखती है। रहस्य की बात यह है कि एक बार, जब रामलखन की स्त्री का देहान्त नहीं हुआ था, उनके एक पुत्र की प्रथम वर्ष गांठ के उत्सव में प्रतिभा और मिस घोष आदि भी गई थीं। वहां रामलखन सिंह ने प्रतिभा के विरुद्ध षड्यन्त्र किया। तभी से प्रतिभा उनकी विरोधिनी हो गई है। आप मानें या न मानें, रामलखन सिंह अत्यन्त आचार-हीन है। इसी कारण मैं इस विवाह के विपक्ष में हूँ और इसका विरोध करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। पिता जी, मैं आप से अत्यन्त विनयपूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि मुझे आप धर्म-संकट में न डालें। इस सम्बन्ध में मैं जो कुछ निश्चय कर चुका हूँ उसी पर मुझे दृढ़ रहने दीजिए।"

बाबूसाहब ने कातर स्वर में कहा—"मेरे अनुरोध का तुम्हारी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं। बेटा, तुम्हें नहीं ज्ञात है कि तुम्हारे लड़कपन में मैंने तुम्हारी कितनी सेवा की है; तुम्हारे बीमार होने के अवसर पर न रात को रात समझता था और न दिन को दिन। तुम्हारी मां तुम्हारे मुख पर तनिक सा मैल देखकर घबरा जाती थी; उसका तो सारा समय देवी-

देवताओं की प्रार्थना करते ही बीतता था। सो अब तुम सयाने हुए तो हम लोगों को कुछ समझते ही नहीं हो।"

यह कहते हुए माख के कारण बाबूसाहब की आँख भरभरा आयी। अजीत का हृदय हिल गया। परन्तु वे करते तो क्या करते? एक ओर कमलाशंकर को और दूसरी ओर प्रतिभा को सहायता का वचन देकर उन्होंने अपने मत-परिवर्तन का मार्ग ही बन्द कर दिया था! पिता की मार्मिक उक्तियों के प्रभाव में आकर यदि वे स्वयं को उनके विचारों के अनुकूल बना लेते तो इसमें उनकी प्रतिष्ठाहानि का भय था। और प्रतिभा के ऊपर तो यह घोर अत्याचार ही हो जाता।

यदि अजीत बाबू अपनी स्थिति को पिता के सम्मुख स्पष्ट भी कर देते तो भी उनके यह स्वीकार करने की कोई आशा नहीं थी कि अजीत विवश है। बाबूसाहब तो अजीत को उसी दशा में बुद्धिमान और सुयोग्य स्वीकार कर सकते थे जब वे उनका कहना माने। अपनी समझ में उन्होंने अजीत को संतुष्ट करने के लिए बहुत बड़ा त्याग किया था और यदि इतने पर भी अजीत बाबू ढीले न पड़े तो इसे वे अदृष्ट के कोप के अतिरिक्त और कुछ मानने को तैयार नहीं थे।

अजीत को चुप देखकर बाबूसाहब ने कहा—"तो क्या कहते हो?"

अ०—"बाबू जी, प्रतिभा के विवाह के सम्बन्ध में मैं अपने विचार नहीं बदलूँगा; ऐसी दशा में बँगले पर जाना व्यर्थ है।"

बा० सा०—"अच्छा शान्ता और बहू को ले जाने की आज्ञा देते हो?"

अ०—"परन्तु मुझे भोजन का कष्ट होगा।"

बा० सा०—"तुम्हें तो भोजन का कष्ट होगा। परन्तु, यहाँ इन दोनों का बलिदान हो जायगा। और तुम्हें भोजन का कष्ट क्यों होगा? क्या मैं तुम्हारा शत्रु हूँ जो मुझे अपनी सूरत दिखाने से भी परहेज करोगे। अगर तुम्हें मुझसे अलग ही रहना पसन्द है तो एक नौकर ले लो, घर से पलँग आदि मँगवा लो और साँझ-सबेरे बँगले पर भोजन कर आया करो। मैंने कह तो दिया न कि अब मैं तुम्हारे किसी काम के सम्बन्ध में कुछ न कहूँगा; जिसमें तुम्हें आनन्द मिले वही करो। फिर अब भी मुझसे क्यों भागते हो?"

अजीत ने कहा—"अच्छी बात है, शान्ता को लिए जाइए।"

जंजाली ने तुरन्त ही जाकर पद्मा को यह संवाद सुनाया। वह तो लगभग दो सप्ताहों ही में ऊब गई थी और लौट जाने को सहर्ष तैयार थी।

अजीत को सभा में जाने और उसमें पूरी शक्ति के साथ गरजने की स्वतन्त्रता मिली; गृहस्थी का संकट सिर से टला।

आजकल शान्ता ही बाबूसाहब के जीवन का आधार थी। उसके मिल जाने से उनके दम में दम आ गया। अजीत से तो वे पूर्णतया निराश हो बैठे। अजीत की कोई परवा न करके ईश्वर के नाम पर उन्होंने अपना काम करने का निश्चय किया।

अजीत और बाबूसाहब एक गलीचे पर बैठ गये। थोड़ी देर में श्यामलाल और जंजाली ने सब सामान गाड़ी के ऊपर रख दिया। इसके बाद बाबूसाहब शान्ता और पद्मा के साथ गाड़ी के भीतर बैठ गये। जंजाली पीछे खड़ा हो गया। कोचवान ने गाड़ी बँगले की ओर हाँक दी।

अजीत मकान में ताला लगा कर साइकिल पर बैठे और चले गये।

[३२]

दूसरे दिन लगभग ६ बजे अजीत ने देखा कि बँगले पर से एक पलँग, एक आरामकुर्सी, तीन-चार साधारण कुर्सियाँ तथा आराम के अन्य बहुत से सामान ठेले पर लेकर जंजाली आ गया। सलाम करने के बाद उसने कहा—"सरकार, आप कल भोजन करने बँगले पर नहीं गये।"

अजीत किसी विचार में मग्न था। उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। जंजाली ने मकान के भीतर असबाब रखना शुरू किया।

इसी समय श्यामलाल आ गया। जिस गलीचे पर अजीत बैठा था उसी पर स्वयं भी बैठ कर उसने कहा—"अजीत बाबू, आपका कल का व्याख्यान तो गजब का था। सरकार की इतनी कड़ी टीका-टिप्पणी आज तक प्रयाग में किसी ने नहीं की। रायसाहब रतनचन्द वैश्य भी सभा में मौजूद थे। उन्हीं की बगल में प्रिंसिपल राघवशरण भी बैठे थे। प्रिंसिपल साहब कहते थे कि बाबू रतनचन्द की राय में व्याख्यान बहुत अधिक राजविद्रोहात्मक हो गया था। शहर के प्रायः सब से बड़े वकील की इस सम्मति को हेडमास्टर साहब बहुत चिन्ताजनक समझते हैं। हाँ, यह कहना तो मैं भूल ही गया कि कल शाम से बाबू जी की तबियत खराब है। उनका दमा उभड़ आया है। यह खबर भी प्रिंसिपल साहब ने ही मुझे दी थी। मैं तो बाबू जी को देखने जा रहा हूँ। कहो, तुम भी चलते हो?"

जंजाली ने सब सामान रखा कर ठेलेवाले को पैसे दे दिये इसके बाद वह चुपचाप बैठ गया।

अजीत ने कहा—"भाई क्या चलूँ? प्रिंसिपल राघवशरण ने

खैरख्वाही लूटने के लिए बाबूजी को मेरे व्याख्यान का हाल, अतिरञ्जित रूप में, अवश्य ही सुनाया होगा। ऐसी दशा में मैं फिर वहाँ पहुँचूँ और फिर कोई विवाद खड़ा हो तो अनुचित होगा। सच पूछो तो इसी कारण कल मैं बँगले पर खाने नहीं गया। सोचा कि सम्भव है, प्रिंसिपल राघवशरण भी वहाँ पहुँचें। क्या मेरा व्याख्यान बहुत उग्र हो गया था ?"

श्यामलाल—"उग्र ही नहीं, अत्यन्त ही उग्र था। मेरी साधारण बुद्धि भी यही कहती है कि शीघ्र ही आप गवर्मेण्ट के कोप-भाजन होंगे।"

अजीत—"गवर्मेण्ट के कोप-भाजन होने से यहाँ डरता कौन है ? बाबू रतनचन्द की तरह नरमदल का तो हूँ नहीं कि हुजूर हुजूर की रट लगाए रहूँ। मैं तो डंके की चोट कहता हूँ कि मुझसे चापलूसी नहीं हो सकती और फावड़े को फावड़ा, काने को काना कहने में मैं तनिक भी संकोच नहीं करूँगा।"

श्यामलाल—"इसका ररिणाम यही होगा कि जेल जाओगे।"

अ०—"तो जेल जाने से यहाँ घबराता कौन है ? यहाँ, तो मैं प्रार्थना किया करता हूँ कि हे प्रभो कब मुझे जेल होगा। खैर, यह तो जो है सो है, एक काम में मैं तुम्हारी सहायता चाहता हूँ। तुम्हारे मित्रों और मिलनेवालों की संख्या बहुत अधिक है, इस कारण गुप्त रूप से काम कर देने का वादा करो तब तो मैं कहूँ।"

श्यामलाल—"कहो भी।"

अ०—"प्रतिज्ञा करते हो न कि मैं किसी को बताऊँगा नहीं ?"

श्यामलाल—"तुम्हारे काम के लिए न करूँगा तो किसके काम के लिए करूँगा।"

अ०—"तो सुनो! यह तो शायद तुम्हें भी ज्ञात हो गया होगा कि प्रतिभा कमलाशङ्कर से विवाह करना चाहती है। मैं इसमें कोई हानि नहीं समझता। परन्तु, पिता जी प्रतिभा का जीवन नष्ट करने पर तुले हुए हैं। वे शीघ्र ही बाबू रामलखन के यहाँ तिलक चढ़ाएँगे। अब करना यह है कि ऐसा होने के पहले ही गुप्त रूप से कमलाशंकर और प्रतिभा का विवाह कर दिया जाय। उसके बाद कोई कुछ न कर सकेगा।"

श्यामलाल—"इसका कुछ परिणाम भी आपने सोचा है।"

अ०—"परिणाम कुछ भी हो। मैं अनिच्छित विवाह नहीं होने दूँगा। संकीर्णता का सिर कुचले बिना मुझे सन्तोष नहीं होगा।"

श्यामलाल ने अपनी मुख-मुद्रा ऐसी बनायी जैसे बड़े असमञ्जस में पड़ गया हो। वह धूर्त-विद्या में बड़ा पटु था। काम बिगाड़ कर भी वह अपनी पीयूषवर्षिणी वाणी की बदौलत स्वयं को प्रिय बनाये रह सकता था। सच बात यह थी कि वह स्वयं अविवाहित था और प्रतिभा के पाणिग्रहण के लिए सब से अधिक अधिकारी समझता था। कठिनाई यही थी कि बेचारा न तो विशेष शिक्षित था और न धनवान। प्रतिभा के इतनी भी तो अँग्रेज़ी वह नहीं जानता था। उसकी गुप्त इच्छाओं से कोई भी परिचित नहीं था। परन्तु वह मनही मन ऐसे उपाय सोचा करता था जिससे बाबू रामलखन तो निराश हों ही, कमलाशंकर भी असफल हों। उसे अपनी सफलता की कोई आशा नहीं थी। परन्तु अपने अनुकूल अवसर की सृष्टि करने तथा औरों को विफल-मनोरथ बनाने की चेष्टा करने से वह विरत नहीं हो सकता था।

कुछ देर तक सोच-विचार में डूबे रहने का प्रदर्शन करके श्यामलाल ने कहा—"देखिए, बाबू जी के सम्मुख यह बात कभी प्रकट न हो कि मैंने इस कार्य में भाग लिया। आप अपने ऊपर पूरा उत्तरदायित्व लीजिए, तब मैं आपका साथ दे सकता हूँ साथ ही यह भी बताये देता हूँ कि प्रकट रूप से मैं बाबू जी की आज्ञा के अनुसार ही कार्य करता रहूँगा।"

अ०—"इसमें मुझे कुछ आपत्ति नहीं है।"

श्यामलाल—"अच्छा तो बताइए, क्या करना है?"

अ०—"सब से पहले तो तुम आज़मगढ़ चले जाओ। कमला बाबू को गये लगभग दो सप्ताह हो गये। उन्होंने कोई पत्र नहीं भेजा। अब यदि मैं पत्र लिखूँ तो क्या जाने कब उनका उत्तर आवे। फिर, ऐसी बातें पत्रों द्वारा तै होने की भी नहीं हैं। जाकर उनसे दिन आदि निश्चित कर लो, जिससे जो करना है सो कर डाला जाय।"

श्यामलाल ने उसी दिन जाना स्वीकार कर लिया। अजीत ने जेब में से दस रुपयों का एक नोट निकालकर श्यामलाल के हाथ पर रख दिया। बँगले पर न जाकर श्यामलाल यह सोचता हुआ कि किस प्रकार तख्ता उलट दूँ और फिर भी अजीत का विश्वास-पात्र बना रहूँ, अपने घर लौट गया। उसके चले जाने पर जंजाली ने एक लिफाफा अजीत के सामने रख दिया। उसने खोल कर देखा। यह प्रतिभा की चिट्ठी थी। उसने लिखा था—

श्रद्धेय भाई साहब,

प्रणाम!

दादा की तबियत अच्छी नहीं है। जब से आप यहाँ से गये तभी से उनका स्वास्थ्य बिगड़ा है, परन्तु उनकी सम्पूर्ण

दशा देख कर मेरा कलेजा फटता है, आँखों में आँसू आ जाते हैं। आपने आज तक मेरी कोई बात नहीं टाली है। सच पूछिए तो मेरे ही कारण आप दादा से इतना लड़-झगड़ रहे हैं। आप जैसे योग्य भाई के इसी प्रेम के भरोसे पर, जिसका मुझे अपने जीवन में सबसे अधिक अभिमान है, मैं आप से हाथ जोड़ कर एक और निवेदन करती हूँ।

अब मेरी यह प्रार्थना है कि वही उपाय कीजिए जिससे दादा स्वास्थ्य-लाभ करें। कुछ दिनों तक आप औरों का उपकार करना छोड़ कर दादा ही का उपकार करें। इस सम्पूर्ण विवाद में जितना सम्बन्ध मेरा है उसे भी मैं तोड़ देना चाहती हूँ। मेरे सम्बन्ध में आपने भाई का पूरा कर्तव्य निबाहा। अब इससे आगे कष्ट न सहन कीजिए। दादा मेरा विवाह जहाँ करना चाहते हैं वहीं उन्हें करने दीजिए।

कृपा करके भोजन करने के लिए तो घर पर आ जाया कीजिए। अम्मा आपके लिए कितना रोती हैं!

आपकी स्नेह-पात्री भगिनी
प्रतिभा देवी

इस पत्र को पढ़ने के बाद कुछ देर तक सोच-विचार कर अजीत ने निम्नलिखित पत्र लिखा—

प्रिय बहिन प्रतिभा,

तुम्हारी चिट्ठी मिली। मैं अपने कर्तव्य को अच्छी तरह समझता हूँ। मेरा कर्तव्य है भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के लिए उद्योग करना। इस कर्तव्य के सामने दूसरा कोई कर्तव्य खड़ा नहीं हो सकता—माता, पिता, भाई, बहिन यदि मेरे उस कार्य की पूर्ति में बाधा डालेंगे तो मेरे लिए उनका भी अस्तित्व न

रह जायगा। मैं अपने ऊपर एक उत्तरदायित्व लेकर शेष समस्त उत्तरदायित्त से मुक्त हो गया हूँ।

तुम्हारे विवाह के लिए उद्योग करना मेरे कर्तव्य-क्षेत्र के भीतर आता है। मुझे तो विवाह के विषय में एक आदर्श उपस्थित करना है। क्या जाने कितनी सभाओं में मैं विवाह के सम्बन्ध में लड़की या लड़के की राय न ली जाने की तीव्र आलोचना कर चुका हूँ। अनेक व्याख्यानों में मैंने पुलीसवालों के आचरण की प्रबल निन्दा की है। अब यदि मेरे जानते हुए एक कलुषित आचरण वाले मनुष्य के साथ मेरी बहिन का विवाह कर दिया जाय तो सुनने वाले क्या कहेंगे! यह तो निश्चय है कि अखबार वाले मेरा उपहास करने के लिए कालम के कालम रंग डालेंगे। इस दशा में मैं तो किसी तरह तुम्हारे विवाह के सम्बन्ध में उदासीन नहीं रह सकता।

पिता जी के लिए मुझे बहुत खेद है। परन्तु उनके स्वास्थ्य-लाभ के लिए भी मैं अपने निश्चित सिद्धान्तों का परित्याग नहीं कर सकता। मैं जीवित सिद्धान्तों का पुजारी हूँ, अन्ध-विश्वास का अनुगामी नहीं। अपनी टेक, अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहूँगा। आशा है, तुम मेरा साथ दोगी।

तुम्हारा भाई, अजीत सिंह।

यह चिट्ठी लिखकर अजीत ने कुरते की जेब में रखी और जंजाली से कहा—"तुम साइकिल बाहर निकालकर मकान में ताला लगाओ और बँगले पर चलो।"

जंजाली ने आज्ञा का पालन किया। अजीत भी साइकिल पर बैठकर बँगले की ओर चला। इधर कई दिन के बाद वह बँगले पर जा रहा था। फाटक पर पहुँचते पहुँचते बोर्डिङ्ग हाउस के माली ने अजीत के हाथों में एक पत्र दिया और कहा

कि आजमगढ़ के कमला बाबू ने सुकुल जी के द्वारा इसे भिजवाया है। अजीत ने उत्कण्ठा के प्रबल आवेग के साथ लिफाफा खोल कर पढ़ा। उसमें लिखा था:—

श्रद्धेय अजीत बाबू;

प्रयाग से रवाना होकर तो मैं बड़ी कठिनाई में पड़ गया। पं० हरनन्दन सुकुल ने मुझे बहुत बड़ी अड़चन में डाल दिया। पं० सदाशिव मिश्र के छूटकर आ जाने तथा मेरी थोड़ी सी अस्वस्थता के कारण हम लोगों को काशी में उनके यहाँ कई दिन बिताने पड़े। इस समय का उपयोग सुकुलजी ने मिश्र जी की लड़की चंचला के साथ मेरा विवाह तै कराने में किया। उन्होंने अम्मा को मेरे और प्रतिभा के सम्बन्ध में क्या जाने क्या उलटा सीधा समझाया, जिसका परिमाण यह हुआ है कि अम्मा ने विवाह के लिए हठ ठान लिया है। वे मुझसे 'हां' कराये बिना मानती नहीं हैं। मैं बराबर यही उत्तर देता हूँ कि अम्मा, मैं विवाह ही नहीं करूँगा। इस पर तो वे और भी चिढ़ जाती हैं। उन्होंने प्रण कर लिया है कि यदि इस लगन के भीतर ही मिश्र जी के यहाँ विवाह न हो गया तो मैं प्राण दे दूँगी।

हम लोगों ने जो बात तै की थी वह अब किस प्रकार कार्य रूप में परिणत हो, सो आप मुझे बताइए। मैं अत्यन्त उद्विग्न, विकल और पीड़ित हूँ। समझ में नहीं आता कि क्या करूँ। सुकुल जी ने मेरे सब मनसूबों पर पानी फेर दिया।

आपका कृपा-पात्र
कमलाशंकर

अजीत ने भर्राये हुए स्वरों में पूछा—"इस समय सुकुल जी कहाँ हैं?"

माली ने उत्तर दिया—"सरकार, उन्हें तो बड़े ज़ोर से ज्वर चढ़ आया है। रेलगाड़ी में भी उनकी तबियत खराब ही थी।

अजीत के मन की नवजात उत्तेजना ने अपने लिए जो कार्य निर्धारित किया था वह बीमारी का हाल सुनते ही बालू के महल की तरह एक दम से विलीन हो गया।

इस पत्र को पूरा पढ़ कर अजीत अत्यन्त क्षुब्ध हुआ। उसे हरिहर सुकुल पर बहुत अधिक क्रोध आया। इस समय यदि सुकुल जी उसे कहीं दिखायी पड़ जाते तो शायद उनसे मार पीट की नौबत आ जाती, क्योंकि अब अजीत की समझ में उनकी शरारत इतनी अधिक बढ़ गई थी, उन्होंने उसके कार्य्यों में इतना अधिक अनावश्यक हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया था कि उपयुक्त औषध किये बिना, कठिन रोग की भांति वे ठिकाने नहीं लाये जा सकते थे। इस समय अजीत को यह सोच कर सबसे अधिक आशङ्का थी कि कहीं मैं असफल न हो जाऊँ। किन्तु उसके भीतर बैठे हुए अहंकार-भाव ने दाब खाए हुए क्रुद्ध सर्प की भाँति आपही आप ललकार कर कहा—मैं असफल होऊँ, यह कैसे हो सकता है? पत्र जेब में रख कर वह साइकिल पर बैठा और बँगले की ओर न जाकर श्यामलाल की ओर चला गया। श्यामलाल आजमगढ़ जाने की तैयारी कर रहा था।

अजीत ने श्यामलाल को चिट्ठी दिखाकर कहा—"देखो इस पाजी ब्राह्मण की करतूत? मेरे जी में तो आता है कि इन ढोंगी ब्राह्मणों को एक पंक्ति में खड़ा करके तलवार के घाट उतार दूँ। स्वयं तो कोई कार्य्य करेंगे नहीं और यदि दूसरा करे तो उसमें अड़ंगे डालेंगे।"

श्यामलाल ने हँस कर कहा—बस आपको क्रोध करना ही आता है। नीति और चतुरता का उत्तर क्रोध नहीं है, उसका उत्तर चालाकी और बुद्धिमानी का काम ही है। सुकुल जी पर क्रोध कर के आप स्वयं हारेंगे और वे आप की मूर्खता पर हँसेंगे। घबराइए मत, मैं तो जा ही रहा हूँ। पहुँचते ही पत्र लिखूँगा। माँ अकेली रहेंगी, कुछ ध्यान रखिएगा।

अजीत सन्तुष्ट हो गया। श्यामलाल से 'जय काली' करके वह साइकिल पर बैठ कर बँगले की ओर चला।

[३३]

श्यामलाल लगभग ३ बजे स्टेशन पर पहुँच गया। जिस डब्बे में बैठा उसी में बा० रामलखन सिंह के वृद्ध पिता ठाकुर रणधीरसिंह भी विद्यमान थे। श्यामलाल को देखते ही उन्होंने बहुत उत्साहपूर्वक उसका स्वागत किया और अपने निकट बैठा चुकने के बाद पूछा—"कहो कहाँ की तैयारी दर दी। कहाँ तक हमारा साथ दोगे?"

श्यामलाल ने मुस्कराकर कहा—

शाहगंज तक हमारा आपका साथ होगा। वहाँ से आप अपने घर पहुँचेंगे और मैं उससे भी आगे आजमगढ़ को रवाना हूँगा।"

र०—"इधर कई दिन से तुम आये नहीं। भइया, हमारी तो तबियत यहाँ ऊब जाती है। जो सुख अपने देश-गांव में है, वह शहर में कहीं नसीब हो सकता है? इसके सिवाय काम-काज के बिना दिन भी तो नहीं कटता। किससे गप मारें, किससे हँसें बोलें।"

श्या०—"ठाकुर साहब, क्या बताऊँ। आपके समधी और

उनके पुत्र बाबू अजीत सिंह को आपस में पटती ही नहीं। मामला इतना बढ़ा है कि अजीत बाबू ने एक मकान किराये पर ले लिया है। कई दिन तक तो अजीत बाबू की स्त्री और नन्हीं लड़की शान्ता कर्नलगंज में रहे। अजीत बाबू तो कुछ करते-धरते नहीं, कुछ उनकी गृहस्थी का प्रबन्ध और कुछ अपने काम में मैं ऐसा उलझा रहा कि आपके यहाँ नहीं आ सका। अभी कल बड़ी कठिनाई से बाबूसाहब पतोहू और नातिन को बँगले पर ले जा सके हैं। अजीत बाबू ने फिर भी जाने से इनकार कर दिया।

र०—"आखिर बात क्या है भैया, जो बाप-बेटे में पटरी नहीं बैठती। हमारे बचऊ तो इतने बड़े ओहदे पर पहुँच गये और इतना अदब रखते हैं जैसे छोटा सा लड़का रखता है। विरोध का भाव शादी में तो नहीं दिखाई पड़ेगा?"

श्याम०—"यों तो विरोध रहा ही करता है, पर इस शादी के मामले से तो और बढ़ गया है। अजीत बाबू आपके यहाँ विवाह होना नहीं पसन्द करते।"

र०—"क्यों, क्या हम लोग ठाकुर नहीं हैं, चमार हैं!"—उत्तेजित होकर रणधीरसिंह ने पूछा।

श्याम०—"नहीं यह बात नहीं है। लड़की ही इस विवाह के विरुद्ध है। अजीत बाबू अपनी बहन का पक्ष ले रहे हैं।"

र०—"तो लड़की को विरुद्ध होने का क्या कारण मिला? हमारे बचऊ में दोष क्या है? ऊँचे दर्जे के सरकारी अफसर, स्वरूपवान और कुल पैंतीस वर्ष की उम्र, उन्हें भला विवाह की कमी है। जब से बहू का स्वर्गवास हुआ तब से पचासों अच्छे अच्छे रईस दरवाजे पर नाक रगड़ कर चले गये। बा० जगजीवन से बड़े बड़े जमीदारों से हमने बात तक न की।

परन्तु, उनकी प्रार्थना इसलिए स्वीकार कर ली कि हमने इसमें बचऊ की सम्मति देखी। एक बार उन्होंने हमसे दबी जुबान में कह दिया—'दादा यह लड़की पढ़ी लिखी है।' मैं बचऊ का मतलब ताड़ गया। इसीलिए किसी प्रकार की आपत्ति न कर के मैं तैयार हो गया। अंग्रेजी पढ़ी-लिखी औरत को तो मैं सदैव सन्देह की दृष्टि से देखता हूँ। उसे हमारी देहाती आदतें, देहाती चाल-ढाल, देहाती रहन-सहन क्यों सुहाने लगी? लेकिन सुना था कि बा० जगजीवन बड़े भगवद्भक्त हैं और उन्होंने लड़की को स्कूल में अंगरेजी नहीं पढ़ाई है बल्कि घर ही पर मेम से शिक्षा दिलाई है। इसी से मुझे अधिक तो नहीं थोड़ी सी तसल्ली थी। लेकिन जान पड़ता है, लड़की की स्वतन्त्रता का अधिक परिचय शीघ्र ही मिलेगा।"

श्या०—"आपको तो मालूम होगा, बा० जगजीवन के बँगले के पास ही मिल वाले एक ईसाई परिवार का भी बँगला है।"

र०—"हाँ हाँ, मैं जानता हूँ।"

इतना ही नहीं, उसकी मेम मेरी की करतूतें कुछ पूछो मत। बारह बारह बजे रात तक बचऊ से अंगरेजी में न जाने क्या कह कह कर खूब जोरों से हँसा करती है। पहनती तो है मातमी लिबास, लेकिन रंग-ढंग से जान पड़ता है कि साहब का मरना उसे रत्ती भर भी नहीं अखरा है। भइया अँगरेजी न पढ़ने का पछतावा तो अब इसी प्रेम की बातचीत को न समझने के कारण होने लगा। श्यामलाल क्या बतावें, इन सफेद भूतनियों को जैसे लाज-हया रही ही नहीं, कपड़ा ऐसा पहनेंगी कि आधी छाती खुली ही रहेगी, घूमने-फिरने किसी के भी साथ कहीं भी किसी भी समय चली जायँगी। उससे भी अधिक बेढ़ब उसकी बेटी है, जिसका नाम मिस घोष है, वह तो पूरी

आफत की परकाला ही है, वह शोखी चुलबुलाहट, और नाज व नखरे कि पत्थर का दिल भी पसीज जाय। इस घोष की हत्या क्या हो गई कि इन रांड़ों को बचऊ के यहां तीन चार दिन से आने-जाने का अच्छा मौका मिल गया। ईश्वर ने इन्हें जितना ही रूप दिया है उतनी ही गरीबों के रक्त की प्यास भी दी है। जान पड़ता है, केवल बशीर को फँसा कर ही ये हत्यारिनें विश्राम न लेंगी, दस पाँच और गरीबों को भी पामाल करेंगी। मैं तो डरता हूँ, कहीं बचऊ पर इनका जादू न चल जाय और इसी लिए मैं विवाह में जल्दी करना चाहता हूं।"

श्या०—"तो यह कहना चाहिए कि इस ईसाई परिवार से आप का घनिष्ट परिचय है। इतना और जान लीजिए कि मिस घोष से हमारे बाबूसाहब की लड़की का लड़कपन का साथ है और उससे बहुत मेल है। फिर भी मैं इतनी प्रशंसा तो करूंगा कि आप की भावी बहू अपने धर्म कर्म का बहुत ध्यान रखती है। शिव जी की वह घण्टों पूजा किया करती है। खान-पान में भी सफाई का बहुत धयान रखतो है।"

र०—"आप की बातचीत से मैं कुछ न समझ सका। इसका कारण शायद यह हो कि मैं देहाती आदमी ठहरा। परन्तु, मैं आपको यह भी बतला दूँ कि साठ बरस के सफेद बाल, जो आप मेरे सिर पर देख रहे हैं, गांव की कूप-मण्डूकता में नहीं, कलकत्ते और बम्बई की गलियों ही में बीते हैं। अब आप मुझे भले ही देहाती समझते हों, परन्तु किसी समय मैं बड़े बड़े होशियारों के कान काटता था।"

श्या०—"ठाकुर साहब देहातीपन के साथ साथ मूर्खता का कोई अटूट सम्बन्ध थोड़े ही है। मैं ऐसी धृष्टता कभी नहीं कर सकता। और, मैं भी तो देहाती हूँ।"

आपने लड़की के गुणों की प्रशंसा की, सो उससे तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। अब यह बताइए कि लड़की को तो हमारा घर पसन्द है न ?

यह कह कर रणधीर सिंह ने कुछ अपनी, कुछ अपने पुत्र की और कुछ अपने परिवार की प्रशंसा सुनने की आशा की। उनकी आँखें श्यामलाल के होठों पर केन्द्रित हो गयीं। श्यामलाल के मुँह से निकलने वाले शब्द तैयार होने के पहले ही उनके कानों में गूँजने से लगे।

किन्तु श्यामलाल मौन था। चेहरे की मुद्रा कुछ ऐसी थी कि रणधीर सिंह का उत्साह भंग सा होने लगा।

"क्यों भाई, मौन क्यों हो गये, कुछ कहो भी"—रणधीर सिंह ने सशंक होकर कहा।

श्यामलाल जैसे कुछ कहने को हो आया, लेकिन फिर रुक गया और चेहरे पर कुछ दिक्कत में पड़ जाने के-से भावों को प्रकट करता हुआ बोला—"ठाकुर साहब, इस सम्बन्ध में फिर कभी बातें होंगी, आज तो क्षमा कीजिए।"

"नहीं भाई, आप तो मुझे परेशानी में डाल रहे हैं। संभव है, आप से मुझे कुछ ऐसी ही बात मालूम हो जाय जिसका जान लेना इस समय उतना ही लाभकारी हो सकता है जितना न जानना आगे चल कर पछतावे का कारण हो सकता है।" —ठाकुर रणधीर सिंह ने तुरन्त ही उत्तर दिया।

श्याम०—"मैं इतनी बड़ी जिम्मेदारी नहीं ले सकता। किसी बनते हुए काम को बिगाड़ना भले आदमियों का काम नहीं है।"

रण०—"लेकिन भले आदमियों का यह काम तो जरूर है कि वे समय रहते दो ऐसे व्यक्तियों को सावधान कर दें जिनका मिलन किसी अच्छे परिणाम का उत्पादक नहीं हो सकता।

लड़की के मन की सच्ची परिस्थिति बतला कर शायद आप उसका भी लाभ करें।"

श्याम०—"तो यही समझ लीजिए कि लड़की बाबू रामलखन सिंह से ब्याह नहीं करना चाहती और इस सम्बन्ध में उसे अपने पिता की तो नहीं, किन्तु भाई की सहानुभूति प्राप्त है।"

"क्या अजीत बाबू ने किसी दूसरी जगह विवाह की बातचीत की है?"

"की है।"

"क्या ठाकुर साहब उस विवाह को नहीं पसन्द कर सकते? उनकी नापसन्दगी के विशेष कारण क्या हैं?"

"उस प्रकार के विवाह समाज में प्रचलित नहीं हैं, इसीलिए बाबू साहब तो उसे स्वप्न में भी स्वीकार नहीं कर सकते।"

"उस विवाह को लड़की पसन्द करती है या नहीं?"

"पसन्द करती है!"

"जिस लड़के से यह विवाह होने वाला है, क्या उससे लड़की से पहले का परिचय है?"

"है।"

"कितने समय से?"

"कोई तीन चार वर्षों से!"

"क्या लड़का कुलीन ठाकुर वंश का नहीं है?"

"नहीं, वह कुलीन ब्राह्मण वंश का है।"

रणधीर सिंह पिछली बातें सुनने के लिए तैयार न थे। चुप हो गये और शेष समय प्रायः मौनावलम्बन ही में काटा।

श्यामलाल मन ही मन अपने किये धरे पर सन्तुष्ट हो कर अपनी यात्रा में आगे बढ़ा।

(३४)

मिस्टर घोष के स्वर्गवास को धीरे धीरे लगभग पन्द्रह दिन बीत गये। इस समय के भीतर श्रीमती घोष के साथ सहानुभूति करने के लिए अँगरेज, ईसाई, हिन्दू और मुसलमान सभी थे क्रम क्रम से नित्य ही आते जाते रहे। सरकारी कार्य के सम्बन्ध से रामलखन सिंह बाहर चले गये थे। आने पर समाचार मिलते ही वे संध्या को लगभग सात बजे मिस्टर घोष के बँगले की ओर गये। श्रीमती घोष के साथ उन्होंने सहानुभूति प्रगट की और कुछ देर तक बातें करने के बाद उनसे थोड़ा घूम आने के लिए आग्रह किया। श्रीमती राजी हो गयीं। बातचीत का कुछ ऐसा सिलसिला चला कि रामलखन सिंह उन्हें अपने बँगले पर ले गये।

शीघ्र ही बातचीत अजीत के सम्बंध में चल पड़ी। मि० घोष की हत्या में अजीत बाबू का क्या भाग हो सकता है, इसके सम्बन्ध में श्रीमती घोष व्याख्यान सा देने लगीं। श्रीमती घोष की अभी अधिक अवस्था नहीं थी अधिक से अधिक पैंतीस साल। यह था उनकी उम्र का वह अङ्क जिसकी गवाही उनकी जन्म भूमि इंग्लैण्ड के लन्दन नगर की म्युनिसिपैलिटी के कागज-पत्र दे सकते थे। किन्तु यदि शरीर का स्वास्थ्य और गठन ही उम्र का पता लगाने के लिए आधार माना जाय तो श्रीमती घोष को कोई पचीस वर्ष से अधिक की युवती नहीं कह सकता था; उन्होंने अपने सौंदर्य और यौवन की रक्षा ही इस ढंग से की थी। खास लन्दन की नागरिक होने की धारणा ने इस रूप-सम्पत्ति को बढ़ाने के लिए सोने में सुगन्ध का काम किया था। स्त्री होने के नाते युवक को मुग्ध बनाना और

अँग्रेज़ युवती होने के कारण भय, आतङ्क और सम्मान की दृष्टि से देखा जाना वे अपने अधिकार के अन्तर्गत समझती थी उनके इन अधिकारों में से किसी के सम्बन्ध में भी त्रुटि होने देना अपने लिए किसी न किसी संकट का आवाहन करना था। राम लखन सिंह थोड़े ही समय के परिचय में यह बात अच्छी तरह समझ गये।

"आप के विवाह के सम्बन्ध में क्या हो रहा है, मिस्टर रामलखन ?"—श्रीमती घोष ने मधुर और कोमल स्वरों में पूछा। चाँदनी रात छिटकी हुई थी; तारे चन्द्रमा के साथ हँस रहे थे। पास ही, आम के पेड़ पर बैठी हुई कोयल कूक रही थी और पपीहा तृषार्त कण्ठ से 'पी कहाँ' को पुकार रहा था। चन्द्रमा की किरणें हवा के मीठे-मीठे झोंकों को अपना सखा बना कर श्रीमती घोष के सुनहले बालों की कीमत चाँदी के सिक्कों में आँकने की कोशिश कर रही थीं। मानो प्रकृति श्रीमती घोष के सहज स्वरूप, और पग पग पर स्वच्छन्दता तथा विलास-प्रियता का परिचय देनेवाली रमणीय वेष-भूषा को रामलखन की विमुग्धता के लिए यथेष्ट न समझकर परिस्थितिकी सहायता प्रदानकर श्रीमती घोष को और भी अजेय बनाने का प्रयत्न कर रही थी। जो हो, इसमें संदेह नहीं कि तत्कालीन परिस्थिति ने श्रीमती घोष के प्रश्न की भाषा और भाव दोनों में किञ्चित ऐसी मधुरिमा डाल दी जो संभवतः साधारण-तया उसमें न उद्भावित होती। रामलखन सिंह को ऐसा समझ पड़ा जैसे किसी परिश्रम-साध्य पहाड़ी की चढ़ाई समाप्त करके किसी सुन्दर विश्रामप्रद कुञ्ज के दर्श हो रहे हों। उन्होंने कहा—"मेरे विवाह का समाचार आप तक कैसे पहुँच गया श्रीमती घोष!" श्रीमती घोष ने उत्तर दिया—"बाबू जगजीवन

सिंह के परिवार के साथ मेरे परिवार का कितना घनिष्ट सम्बन्ध है, क्या इसे आप नहीं जानते ?

बात यह है कि आज से पन्द्रह वर्ष पहले जब पहले पहल लन्दन में मि० घोष के प्रवास करने के समय उनसे विवाह करके मैं इलाहाबाद आयी और बाबू जगजीवन सिंह से, जिनसे मिस्टर घोष की सदा से दोस्ती रही है, मिली, तभी उनके उदार, स्नेहशील स्वभाव का मुझ पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि थोड़े ही दिनों में मैं उनके प्रगाढ़ प्रशंसकों में से हो गयी।"

"यह तो मैं जानता हूँ, और इलाहाबाद में सभी लोग इसे जानते हैं"—मिस्टर रामलखन ने इन प्रसिद्ध बातों से बहुत अधिक अपरिचित न समझे जाने के उद्देश्य से कहा।

श्रीमती घोष ने फिर कहना शुरू किया—"मिस्टर मार्क को कोई अच्छी नौकरी न मिलने के कारण मिस्टर घोष ने मेरे भारतवर्ष में आने के पांच-छ: वर्ष बाद बाबू जगजीवन सिंह की सहायता से उनके बग़ल ही में एक नया बँगला और चीनी की मिल बनवायी। निस्सन्देह हमारे कारख़ाने की गत दस वर्षों ही में जो इतनी जल्दी उन्नति हो गयी है, उसका कारण मि० मार्क के परिश्रम के साथ साथ यह भी है कि मिस्टर जगजीवन सिंह ने हम लोगों की अच्छी सहायता की। इससे आप समझ सकते हैं कि मिस्टर जगजीवन सिंह की लड़की की शादी कहाँ ठीक हो रही है या नहीं हो रही है, इसका हाल हम लोगों से छिपा नहीं रह सकता।"

"निस्संदेह इधर कुछ दिनों से बाबू जगजीवन सिंह लड़के के उपद्रवों और लड़की के ब्याह के कारण बहुत चिन्तित रहते हैं, और हमारे यहाँ भी, बहुत दिनों के बाद, कल्ह वाली दावत

में गये थे। लेकिन मैं प्रायः चली जाती हूँ और मैं नहीं जाती तो मेरी लड़की मिस घोष अक्सर प्रतिभा से मिलती रहती है। हां तो बताइए, क्या हो रहा है, मैंने तो बड़ी लम्बी कहानी कह डाली।"

यह कह कर श्रीमती घोष मि० रामलखन सिंह के होठों पर से निकलने वाले शब्दों की प्रतीक्षा करने लगीं।

रामलखन को मौन देख कर श्रीमती घोष ने फिर कहा—"जब से मैंने होश सँभाला तभी से हिन्दुओं के व्याह को बड़ी दिलचस्पी से देखती आयी हूँ। मैं समझती हूँ कि आप लोगों में दूल्हा और दुलहिन को एक दूसरे से मिलने के लिए बहुत बड़ी बड़ी मंजिलें पार करनी पड़ती हैं! हम लोगों में इसका ठीक उलटा होता है।"

यह कह कर वे बड़े ज़ोर से हँस पड़ीं। रामलखन सिंह के पिता बेचारे रणधीर सिंह आम के पेड़ के नीचे सोने की कोशिश करने के साथ ही साथ इन दोनों की अँगरेज़ी बातचीत का भाव अपनी अटकलबाज़ी से समझने का उद्योग भी कर रहे थे। श्रीमती घोष का हँसना बोलना सभी उनके कौतूहल का विषय हो रहा था।

"यह तो मुझे मालूम है, श्रीमती जी, परन्तु हमारा समाज अभी बहुत पीछे है। लाचार होकर हमें ऐसा ही करना पड़ता है"—मिस्टर रामलखन ने कहा। श्रीमती घोष ने तुरन्त ही उत्तर दिया—"किन्तु मैं तो इसे आप लोगों की साहसहीनता ही कहूँगी। जब आप जानते हैं कि अमुक बात ग़लत है तब उसी को अन्धों की तरह मानते क्यों जाते हैं? बाबूसाहब में भी यही ऐब मैंने देखा। प्रतिभा की शादी के लिए परेशान हैं। मैं कहती हूँ कि शादी की ज़रूरत तो प्रतिभा को है न?

उसको आप स्वतंत्र कर दीजिए, वह आपही अपने योग्य पति ढूँढ़ लेगी। मैं आपको अपनी बात बताती हूँ। मिस्टर घोष कुछ बहुत रूपवान नहीं थे, यों भी हिन्दुस्तानी ईसाई थे। उम्र के हिसाब से भी मुझमें और मिस्टर घोष में बड़ा अन्तर था। मेरे माँ बाप चाहते तो हमारे समाज में बहुत कुछ स्वतंत्रता होने पर भी हम लोगों के ब्याह में अडंगे लगा देते। लेकिन इंग्लैंड में युवकों और युवतियों ने साहसपूर्वक प्रेम और विवाह करने का अधिकार अपने हाथ में रक्खा है। बाबूसाहब से तो मैं निराश हो गयी हूँ। उन्होंने पाखंड और परंपरा की अन्ध-भक्ति को आत्म-समर्पण कर दिया है, अब वे वृद्धावस्था की ओर प्रगतिशील हो रहे हैं, उनसे क्रान्तिकारी साहस की आशा करना व्यर्थ है। किन्तु आप जैसे सुशिक्षित नौजवान आदमी से इससे कुछ अधिक आशा करती हूँ; आपको हिन्दू समाज में स्वतन्त्रता का आदर्श उपस्थित करना चाहिए।"

रामलखन ने कहा—"मैं यथाशक्ति आपकी सम्मति से लाभ उठाने का उद्योग करूँगा। कहिए, मिस्टर मार्क का क्या हाल है ?" प्रस्तुत विषय की चर्चा को अपने अनुकूल न देख कर उसे टालना चाहते थे।

श्रीमती घोष ने उत्तर दिया—"मिस्टर मार्क को वैसी चोट नहीं आयी है जैसी मिस्टर घोष को आयी थी। क्या कहूँ इन घटनाओं ने मुझे बहुत खिन्न बना दिया है। हत्यारे ने मिस्टर घोष जैसे साधु पुरुष के प्राण लेकर न जाने क्या पाया !"

रा०—"आप दुखी न हों, जिस अभागे ने मिस्टर घोष की हत्या की है वह इस संसार से मिट जायगा। आप जैसी इच्छा करेंगी वैसी कार्यवाही की जायगी।"

श्रीमती घोष ने निराशा-भरे स्वर में कहा—"सो तो होगा, मिस्टर रामलखन ! किन्तु मेरी तबियत तो बहुत घबरा रही है। समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूँ। मिस्टर घोष के बिना मेरा जीवन कितना निस्सार हो गया !"

एक अंगरेज रमणी को इतना अधीर और कातर देख कर वे चकित थे। इतने अल्प परिचय में श्रीमती घोष ने जो उनसे इतना निस्संकोच होकर बातचीत की थी उसका रहस्य अब उनकी समझ में आ गया। रूप और यौवन के चकाचौंध कर देने वाले निखार का लावण्य वेदना के संयोग से भी श्रीहत नहीं होता—श्रीमती घोष को रामलखन इस कथन की सत्यता का प्रत्यक्ष प्रमाण समझाने लगे।

एकाएक श्रीमती घोष ने कलाई घड़ी देखी तो दस बज गये थे। 'बहुत देर हो गयी'—यह कह कर श्रीमती घोष उठ पड़ीं। बाबू रामलखन सिंह ने पहले से ही क्षमा-प्रार्थना करते हुए एक प्रश्न बहुत संकोचपूर्वक पूछा—"श्रीमती जी अब तक मैं मिस घोष को आपकी कन्या समझता था। लेकिन अब जान पड़ता है कि उन्होंने मि० घोष की प्रथम स्त्री से ही जन्म पाया है।"

श्रीमती घोष ने ज़ोर से हँस कर अपने अल्प वय का गर्व-पूर्ण और मौन किन्तु प्रभावशाली संकेत करते हुए कहा—"निस्संदेह ! मेरे विवाह के समय तो वह छः सात वर्षों की हो चुकी थी। किन्तु यह सच है कि मिस्टर घोष के साथ मेरे विवाह करने का एक प्रबल कारण इस लड़की पर, जिसे मिस्टर घोष अपने साथ विलायत लेते गये थे, मेरा सहज अनुराग है। मिस्टर रामलखन, अब तो बड़ी हो जाने पर इस लड़की में कुछ गम्भीरता और चिन्ताशीलता भी आ गयी है।

किन्तु इसके लड़कपन के दिन तो बड़े ही चंचल थे; न जाने कहां से प्रकृति ने इसके शरीर में इतनी चंचलता और सुन्दरता भर दी थी, गोरी तो तब वह ऐसी थी जैसे इंग्लैण्ड ही में उत्पन्न हुई हो। भारतवर्ष में आने पर मुझे मिस्टर मार्क और मिस घोष की विभिन्न आकृतियों को देख कर बड़ा अचम्भा भी हुआ। कई बार हँसी हँसी में मैंने मिस्टर घोष से यह बात कही भी। मेरी बातें सुन कर वे भी हँस पड़ते थे।"

यह कहते हुए श्रीमती घोष ने क़दम आगे बढ़ाया। मिस्टर रामलखन साथ साथ चले। मोटर पर बैठा कर उन्होंने घोष-पत्नी को उनके बँगले पर पहुँचा दिया।

[३४]

उस दिन अजीत के सम्बन्ध में मिल घोष, की बातें सुन कर राधिका बाबू को हार्दिक दुःख हुआ। वे अजीत की यदि आँख मूँद कर तारीफ़ नहीं कर सकते थे तो अनुचित निन्दा भी नहीं पसंद करते थे। उन्होंने मन ही मन समझ लिया कि मिस्टर घोप की आकस्मिक हत्या के कारण श्रीमती मेरी और मिस घोप की जो स्वार्थ-क्षति हुई है उससे कुपित होकर ये महिलाएँ अजीत को तहस-नहस कर डालना चाहती हैं। वे इन महिलाओं की शक्ति से भी परिचित थे। रूप, यौवन, धन तथा मिस्टर मार्क ऐसा प्रेरक और नियोजक भी इन्हें उपलब्ध था। रामलखन के यहाँ दोनों देवियों के आने-जाने और आधी आधी रात तक गप-शप करने की बात प्रायः उनकी आंखों के सामने थी। ऐसी दशा में किसी अदृष्ट सूत्र से बाबू जगजीवन सिंह के परिवार पर संकट आने की भीषण आशंका से उनका चित्त विकल हो उठा। पार्क से घूमकर लौटने पर

अन्यमनस्क चित्त से उन्होंने भोजन ग्रहण किया और छत पर लेटे लेटे चंद्रमा और नक्षत्रों की ओर निहारते हुए बड़ी देर तक मानव प्रकृति पर वे विचार करते रहे। राधिकाकान्त के पास हृदय तो था, जिसके कारण अपने आस पास व्यथा का पारावार लहराते हुए देख कर वे व्याकुल हो जाते थे, किन्तु उनमें अभाव था उस कर्तृत्व-शक्ति का जो कुंभज की तरह उस सागर को सोख ले जाय। रात किसी तरह जागते सोते कटी, दिन भी इधर उधर घूमने में कटा, किन्तु उनके हृदय में यह आन्दोलन मचा रहा कि इस समय मेरा कर्तव्य क्या है। अजीत बाबू की रक्षा के लिए मेरा धर्म्म क्या है? इस समय रह रह कर उन्हें हरिहर सुकुल की याद आती थी। वे जानते थे कि सुकुल जी इधर थोड़े दिनों से घोष परिवार के साथ मेरे सम्पर्क बढ़ने तथा मेरी वेष-भूषा आदि में कुछ परिवर्तन हो जाने से मुझसे भड़कने लगे हैं, फिर भी सुकुल जी की कर्तव्य-निष्ठा, सदाचार, परोपकार-परायणता आदि की उन पर ऐसी गहरी छाप थी कि इस अवसर पर उनसे सहायता लेने के लिए वे अवश्य जाते। किन्तु लाचारी थी। वे अभी इलाहाबाद में थे नहीं।

अगले दिन संध्या को उन्हें समाचार मिला कि सुकुलजी आ गये हैं और बीमार हैं। तुरंत ही वे बोर्डिङ्ग हाउस की ओर रवाना हो गये। सुकुल जी चारपाई पर चद्दर ओढ़े पड़े थे। राधिकाकान्त को सामने प्रणाम करते देख कर शिष्टाचार के खयाल से वे थोड़ा सा उठे किन्तु पास ही से एक कुर्सी खींच कर उस पर बैठते ही राधिकाकान्त ने उनसे लेटे ही रहने का अनुरोध किया।

सुकुल जी ने पूछा—"कहिए, बाबू साहब के यहां गये

थे ? सुना है उनकी तबियत अच्छी नहीं है। दो-तीन दिनों से ज्वरदेव मेरे भी अतिथि हो रहे हैं।"

राधिकाकान्त ने उत्तर दिया—"बाबू साहब की बीमारी का हाल मुझे नहीं मालूम था। इधर मैं कई दिनों से उनके यहां गया नहीं। वे भी बीमार, आप भी बीमार—मुझे तो बड़ी चिन्ता हो रही है।"

सु०—"चिन्ता की क्या बात है, मैं तो दो-तीन रोज़ में चंगा हुआ जाता हूँ, रही बाबूसाहब की बीमारी सो भी यही ज्वर ही तो है। वे भी शीघ्र हो अच्छे हो जायँगे। किन्तु आप की बातों से कुछ ऐसा समझ पड़ रहा है कि कोई और बात भी है जो आप को विशेष चिन्तित बना रही है।"

रा०—आप का अनुमान सही है। अजीत के विरुद्ध मिस्टर मार्क, श्रीमती घोष, मिस घोष, बाबू रामलखन सिंह आदि की शक्तियों को संगठित, और उस संगठन के परिणाम को क्षीण-बल बनानेवाले आप लोगों को इस प्रकार निष्क्रिय देख कर मैं आशंकित हो रहा हूँ।"

सुकुल जी ने कहा—"मेरी अनुपस्थिति में यहाँ क्या क्या घटनाएँ घट गयी हैं, मुझे कुछ नहीं मालूम। बशीर अहमद ने मिस्टर घोष और मार्क पर गोली चलायी, उसके बाद वह पकड़ लिया गया, यही न ?"

रा०—"गोली चलाने के दूसरे दिन उसने थाने में आत्म-समर्पण कर दिया। और अब मुकदमा पुलीस की ओर से यह बनाया जा रहा है कि अजीत बाबू ने बशीर को उभाड़ा और पिस्तौल दिया।"

सु०—"आप व्यर्थ ही डरते हैं। बाबू रामलखन सिंह मूर्ख नहीं हैं, जो श्रीमती घोष के हाथ के खिलौने बन जायँ। जरा

अपनी आशंका की व्यवहारिकता पर तो विचार कीजिए। कमलाशंकर का विवाह तो बनारस में होने जा रहा है। शीघ्र ही प्रतिभा का व्याह बाबू रामलखन सिंह से हुआ जाता है। आपने इन सम्बन्धों को दृष्टि के सामने रख कर सम्पूर्ण घटना पर विचार नहीं किया। और कहिए, मिस घोष को तो आप पढ़ाने जाते हैं न ?"

सुकुल जी के इस प्रश्न ने जैसे राधिका बाबू को बिच्छू की तरह डंक मार दिया।

उन्होंने शीघ्र ही उत्तर दिया—"सुकुल जी ! जीवन में यदि मैंने कभी कोई गलती की है तो वह है यही मिस घोष को पढ़ाने की। इस विचित्र लड़की ने धीरे धीरे मुझसे जो कुछ चाहा सब करा लिया। अब वह अजीत बाबू के विरुद्ध षड़यन्त्र में भी मुझे शामिल करना चाहती है। इस घटना से मैं अत्यन्त व्यथित हो गया हूँ और आपके पास सलाह के लिए आया हूँ। यह तो मैं निश्चय कर चुका हूँ कि अब उसे पढ़ाने नहीं जाऊँगा। आज भी नहीं गया।"

"यह तो बहुत अच्छा निश्चय है, राधिका बाबू। वह लड़की जैसी ही रूपवती है वैसी ही मायाविनी भी है। यह आपका सौजन्य और चरित्र-बल है जो आप उसके चंगुल में पूरे पूरे नहीं फँसे"—सुकुलजी ने उत्तर दिया।

सुकुल जी की बातों से राधिका बाबू का कुछ समाधान हो गया। बोर्डिंग हाउस के बाहर निकलने पर थोड़ी दूर जाकर वे एक पेड़ के चौतरे पर बैठ गये और भविष्य की सम्भव घटनाओं के स्वरूप पर कुछ विचार करने लगे। क्रमशः वे इतने ध्यान-मग्न हुए कि बाबूसाहब के यहां जाने की उन्हें याद ही नहीं रह गयी और नौ बज गये। सबेरे उन्हें देखने

जाने का निश्चय करके वे सीधे घर चले गये। मार्ग में जिस समय उन्होंने बँगले पर दृष्टि डाली थी उस समय उन्हें यह क्या मालूम था कि उसके भीतर इस समय गहरी अशान्ति है।

[३५]

अजीतसिंह ने बँगले में पहुँच कर भोजन किया। उसके बाद वे बाबूसाहब की बैठक में गये। उस दिन बाबूसाहब की तबियत कुछ अच्छी थी। छाती तक एक चद्दर से शरीर को ढके हुए वे लेटे थे। कमरे में कोई न था। जंजाली के हाथ अजीत ने प्रतिभा के पास उसके पत्र का उत्तर भेज दिया। एक ही दिन की बीमारी में बाबू साहब के चेहरे पर उसके प्रभाव स्पष्ट रूप से अङ्कित थे। यह देखकर अजीत का हृदय द्रवित हो गया। पिता के पैर छू कर वह एक कुर्सी पर बैठ गया।

थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद बाबूसाहब ने कहा—"भैया कल शाम को खाने क्यों नहीं आये? बड़ी देर तक तुम्हारी मां रास्ता जोहती रही। फिर, क्या जाने उसने खाया भी या नहीं। बेटा, मेरी जिन्दगी में तो खाने-पीने की तकलीफ मत सहो, मेरी इस बीमारी में ईश्वर का कुछ सन्देश जान पड़ता है। मैं यदि इस बार उठ जाऊँ तो पूर्वजों का बड़ा पुण्य-बल समझो। मेरे बाद गृहस्थी का भार तुम्हारे ही ऊपर आवेगा, चाहे बनाओ, चाहे बिगाड़ो।"

अजीत बाबू कर्नलगंज जाकर अपने को स्वतन्त्र समझ रहे थे। अब उन्हें जान पड़ा कि मेरे लिए बन्धन ज्यों का त्यों तैयार है। उन्होंने व्यग्रता का भाव दिखाते हुए पूछा—"दादा अब तबियत कैसी है?"

"बेटा, इस समय तो कुछ अच्छी है तभी तो तुमसे बातें कर रहा हूँ। अभी अभी तो डाक्टर किशनलाल और अनन्तराम

की अपेक्षा बड़ा कर्तव्य नहीं है ? कहने की आवश्यकता नहीं कि बहुत सोचने-विचारने पर भी अजीत को अपने अनुकूल निर्णय करने के विरुद्ध कोई सबल कारण नहीं दिखाई पड़ा। फिर प्रश्न यह रूप धारण करता था—मान लिया पिताजी की बीमारी ने असाधारण रूप ग्रहण किया, तब क्या कर्तव्यों के अनुपात में कोई अन्तर नहीं पड़ सकता ? मस्तिष्क इस प्रश्न का भी अजीत सिंह के अनुकूल ही निर्णय देता था। बीमारी से अधिक से अधिक एक व्यक्ति का अन्त हो सकता है, जिससे न संसार का कुछ बन सकता है न बिगड़, परन्तु आदर्श के कार्य रूप में परिणत न होने से तो समाज की अपरिमित हानि हो सकती है। इस प्रकार अजीत सिंह को निश्चय हो गया कि मेरे कार्य क्रम में कोई दोष नहीं है।

परन्तु उक्त निर्णय का व्यवहारिक स्वरूप उतना सरल नहीं था जितना उसका मानसिक स्वरूप था। अपने मत पर इतना दृढ़ विश्वास होने पर भी अजीत सिंह को इतना साहस नहीं हो रहा था कि अपने विचारों को खुल्लमखुल्ला प्रकट करके वे आजमगढ़ चले ही जायँ। उन्होंने सैकड़ों बार यह घोषित किया होगा कि मैं सिद्धान्तों का अनुगामी हूँ, लोकमत का गुलाम नहीं। परन्तु आज कल लोकमत का भय ही उन्हें दुर्बल बना रहा था। उनकी आदर्शवादिता लोक-निन्दा के डर के सामने सकुच कर पूछ दबा रही थी।

दो घण्टे के बाद डाक्टर किशनलाल आये। उन्होंने रोगी का हाल पूछा। अजीतसिंह ने बाबू साहब के मुँह पर से कपड़े उठा कर दाहना हाथ बाहर निकाल लिया। ज्वर की अवस्था देख कर अजीतसिंह ने घबराकर पूछा—'डाक्टर

साहब, दादा कब तक अच्छे हो जायँगे ?' बाबू साहब तो इस समय बेहोश थे, नहीं तो शायद पुत्र के इस मनोवेदनासूचक प्रश्न से उन्हें कुछ संतोष होता। डाक्टर महोदय ने कहा—"दो तीन दिनों में रोग की अवस्था कुछ क्षीण अवश्य हो जायगी। जो हो, चिंता का कोई कारण नहीं है।" अजीतबाबू को बहुत बड़ा बल मिल गया। आजमगढ़ जाने के पक्ष में उनकी दलील कुछ और जोरदार हो गयी। उस समय यदि उनके पास पंख होते तो वे उड़ कर आजमगढ़ पहुँच जाते। वहां जाने के विचार में वे ऐसे मग्न हो गये कि उन्हें जान पड़ने लगा, मानो मैं वहाँ पहुँच कर कमलाशङ्कर को फटकार रहा हूँ और वे लज्जा के कारण आँखें नीचे से ऊपर नहीं उठाते। इस समय डाक्टर साहब ने रोगी के सम्बन्ध में कुछ कहा। अजीत ने अपनी अन्यमनस्कता को छिपाने के लिए यों ही गोलमटोल ढंग से कुछ कह दिया। परन्तु जब दूसरी बार डाक्टर ने एक प्रश्न पूछ दिया तब अजीत सिंह को लज्जित होकर यह कहना ही पड़ा—"क्षमा कीजिएगा, मेरा ध्यान अन्यत्र था।" इस पर डाक्टर ने कहा—"मिस्टर सिंह, आप तो युवक हैं, आपको इतना घबराना न चाहिए। आपके पिता अवश्य ही चंगे हो जायँगे।"

अपनी वास्तविक स्थिति को समझ कर अजीत बाबू मन ही मन बहुत लज्जित हुए।

आज आजमगढ़ जाने के लिए कोई गाड़ी नहीं मिल सकती थी। विवश होकर उन्हें उसी अनमनी अवस्था में घर पर ही रहना पड़ा, उनके मुख की अवस्था देख कर सब को संतोष होता था, विशेष कर माँ को। और यद्यपि अजीत बाबू कोई काम नहीं कर रहे थे, सेवा-सुश्रूषा में विशेष भाग नहीं ले रहे

थे तो भी वे प्रतिभा से कहती थीं—"देख बेटी, तेरे दादा की बीमारी से भैया का मुँह सूख गया है, कायापलट सी हो गई है।"

रात को बाबूसाहब की खांसी ने बहुत जोर पकड़ा। ज्वर ने भी उग्र रूप धारण किया। लक्ष्मी, प्रतिभा और पद्मा बारी बारी और कभी कभी साथ साथ सेवा में रहीं। अजीत ने भी घबरायी हुई हालत में रात्रि का अधिक भाग जाग कर ही बिताया।

दूसरे दिन सवेरे ज्वर कुछ कम हुआ। अजीतसिंह ने सोचा कि यदि मैं इसी तरह दादा की बीमारी के कारण अपने हाथ पाँव बाँध दूँगा तो मेरा काम बिगड़े बिना नहीं रहेगा। आज तो मुझे चला जाना ही होगा। दादा की यह बीमारी भयानक नहीं है। वे अच्छे अवश्य ही हो जायँगे। ऐसी दशा में मैं व्यर्थ ही यहाँ क्यों रहूँ? सच पूछिए तो मेरा रहना और न रहना दोनों बराबर है। डाक्टर दादा के मित्र हैं, वे आप ही पहुँचे रहते हैं। दवा लाने का काम जंजाली करता है। पिलाने का काम प्रतिभा करती है। इन सब बातों पर विचार करके वे उस शिष्टाचार से अत्यन्त खीझ उठते थे जिसके कारण अनावश्यक होने पर भी वहाँ रहने के लिए वे बाध्य हो रहे थे। वह सोचते, क्या जाने किन मूर्खों ने इस प्रकार के शिष्टाचारों की सृष्टि की है। इस समय की विवशता अजीतसिंह को नये कैदी की बेड़ी की तरह अखरने लगी। इस भाव की प्रखरता के साथ साथ उनकी झल्लाहट भी बढ़ने लगी। अन्त में भोजन करने के बाद कुरते की जेब में दस रुपये का एक नोट रख कर कमर में एक धोती लपेट कर तथा एक चद्दर को दुपट्टे की

शकल में गले में डालकर किसी से कुछ कहे बिना ही वे चुपचाप स्टेशन की ओर चल दिये।

रास्ते में राधिका बाबू से भेंट हो गयी। उन्होंने बाबू साहब के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में पूछा तो अजीत बाबू ने उत्तर दिया—"कल कुछ खराब हालत थी, किन्तु आज अच्छे हैं। जाइए, देख आइए, मैं कुछ जरूरी काम से जा रहा हूँ।"

दोपहर को बाबू साहब की तबियत अच्छी थी। उन्होंने प्रतिभा से पूछा—"बच्चा कहाँ हैं।" प्रतिभा ने उत्तर दिया—"घर में नहीं हैं।" बाबूसाहब दुखी हो गये। इस समय वे अजीतसिंह को देखना चाहते थे।

संध्या समय अजीत सिंह को फिर घर में न देख कर बाबूसाहब ने आँखों में आँसू भर कर कहा—"देखो, मैं मर रहा हूँ और बच्चा क्या जाने कहाँ घूम रहे हैं, दोपहर से ही लापता हैं। क्या कहूँ, मैं बड़ा अभागा हूँ।"

लक्ष्मी—"तुम क्यों अभागे हो! अभागा वह आप ही है जो अपने बाप को कष्ट में देख कर भी दूसरे कामों में मन लगाता है। कल तो दिन भर रहा, रात को भी चिंता में डूबा रहा, बारम्बार उद्वेगपूर्ण बातें करता था। जान पड़ता है, सबेरे तुम्हारी तबियत कुछ सुधरती देख कर फिर उसे बाहर घूमने की सूझी है।"

बा०—"तुम कह रही हो कि कल वह बहुत दुखी रहा। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि वह मेरे कष्ट के कारण दुखी नहीं था। अब बच्चा से मुझे इतनी आशा नहीं है। रहा यह प्रश्न कि वह दुखी किस कारण था, सो केवल अन्तर्यामी ईश्वर ही बता सकता है। खैर मेरी जिन्दगी बीत गयी, मेरा

अन्तिम समय अब बहुत दूर नहीं मालूम होता। लेकिन चिन्ता मुझे तुम्हारी और प्रतिभा की है। जी में आता है, भैया को एक कौड़ी भी न दूँ, पूरी रियासत तुम्हारे नाम लिख दूँ। ऐसा नहीं करूँगा तो ये सब फूँक-ताप कर के बराबर कर देंगे, और तुम्हें बुढ़ापे में रोटियां मुहाल हो जायंगी।"

ल०—"यह सब क्या बक रहे हो! अब तो तुम्हारी तबियत अच्छी हो रही है। जी इतना कच्चा क्यों करते हो? और जब तुम्हीं न रहोगे तो मैं रियासत लेकर क्या करूँगी? फिर मैं ही कितने दिन जीऊँगी। तुम्हारे साथ मुझे रियासत भी अच्छी लगती है। जब तुम्हीं न रहोगे तो मेरे लिए वह मिट्टी के बराबर है। लेकिन अभी तक भगवान मेरे ऊपर दयालु रहे हैं, और मुझे आशा है, रहेंगे।"

इस समय लक्ष्मी और प्रतिभा दोनों के नेत्र सजल थे। बाबूसाहब अजीतसिंह के आने की बाट जोह रहे थे।

थोड़ी देर में एक मोटर आकर बरसाती में रुक गई। उसमें से डाक्टर किशनलाल, श्रीमती घोष और मिस घोष निकल पड़ीं। भगवान चपरासी के द्वारा सूचना भिजवाकर इन सब ने बाबूसाहब के कमरे में प्रवेश किया। बाबूसाहब ने एक हलकी मुसकराहट के साथ सब का स्वागत किया। जब पलँग के आसपास पड़ी हुई कुर्सियों में सब लोग बैठ गये तब डाक्टर किशनलाल ने तबियत का हाल पूछते हुए नाड़ी देखना प्रारम्भ किया। बाबू साहब ने उत्तर दिया—"किशनलाल जो यदि आप बाबू रतनचन्द से मिलकर मेरा वसीयतनामा लिखा दें तो बहुत अच्छी बात हो। इस समय तबियत अच्छी है फिर क्या जाने कब क्या हो। इसलिए अगर यह काम निबटा रहे तो ठीक हो। वसीयतनामे

में प्रधान बात यह है कि मैं बहुत थोड़ी ही जायदाद भैया के नाम करना चाहता हूँ; क्योंकि उनके जैसे रंग ढंग हैं, उससे मुझे भय है कि सारी रियासत को वे चौपट कर डालेंगे और शायद बहूजी और प्रतिभा को भी कष्ट मिले। मैं अपनी कमायी हुई जायदाद के तीन हिस्से करूँगा—एक हिस्सा बहूजी का होगा, एक प्रतिभा का, और एक भैया का। रही बाप-दादों की कमायी हुई रियासत—सो उसके लिए एक ट्रस्ट बनाना चाहता हूँ जो मेरे जीवन के बाद बहूजी की सम्मति लेकर उसका उचित प्रबन्ध करता रहे और यदि उचित समझे तो भैया को उसमें से कुछ दे, अन्यथा विक्टोरिया हाई स्कूल को बी० ए० तक का कालेज बनाने, संस्कृत शिक्षा का प्रचार करने, धर्म्मशाला, कुआँ, तालाब आदि बनाने तथा अन्य परोपकारी कार्य्यों में उसकी आमदनी को खर्च करे।"

डाक्टर किशनलाल—"बाबूसाहब! आप दो-तीन दिन में भले-चंगे हुए जाते हैं, यह सब क्या सोचते हैं! अजीत बाबू अभी लड़के हैं। नई जवानी का उनमें जोश है, चिन्ता उन्हें छू नहीं गयी है, यही कारण है जो अभी इधर-उधर के कामों में वे अपने को फँसाते हैं। यह हालत अधिक दिन नहीं रहेगी। आप अपने चित्त को शान्त रखिए।"

बाबूसाहब कुछ न बोले। थोड़ी देर तक निरुद्देश्य दृष्टि से छत की ओर देखते रहे, फिर क्षीण स्वरों में उन्होंने कहा—"देखिए न, मैं इतना बीमार हूँ और वह आज सबेरे से ही गायब है। जिसे इतने लाड़-प्यार से पाला वह मरते दिनों का, दो चार दिनों का भी साथी न हो तो हृदय में निराशा होती है।"

इस समय बाबूसाहब की आँखों में आँसू भर आये थे और

दुःख के कारण विकृत मुख पर उन्होंने रूमाल रख लिया था। थोड़ी देर के बाद वे फिर बोले—

"तीन चार दिन में लड़की की शादी के तिलक में शाहगंज जाना होगा। उसके लिए कोई चिन्ता ही नहीं, उलटे सोचता होगा कि अच्छा है, ये बीमार हैं, शादी के काम में विघ्न ही पड़ेगा।"

डाक्टर किशनलाल ने कहा—"देखिए, कल मैं अजीत बाबू को सब बातें समझाऊँगा। मुझे आशा है, वे मेरी बातों को अवश्य ही मान लेंगे।"

श्रीमती घोष—"यदि ऐसा होता तो कठिनाई ही क्या थी अजीत बाबू बड़े हठी हैं, वे यही कहते हैं—मैं जो कुछ कर रहा हूँ, सब ठीक ही कर रहा हूँ। कई बार तो मैं समझा चुकी हूँ, कि मिस्टर मार्क से सबक़ लो, तुम भी अपने बाप को कुछ आराम दो, रियासत की देख-भाल करो। परन्तु, ऐसी बातों के लिए वे कान में तेल डाले बैठे रहते हैं।"

मिस घोष भी अपने अस्तित्व का परिचय देना चाहती थी परन्तु, संकोचवश कुछ बोली नहीं।

उक्त बातों को बाबूसाहब ने सुना, किन्तु उनमें कोई मौलिकता तो थी नहीं, इस कारण वे कुछ रोचक नहीं जान पड़ीं। बाद को बड़ी देर तक वे चुपचाप ही रहे। आये हुए महाशयों में से भी किसी ने कोई चर्चा नहीं छेड़ी। मौन रह कर ही शायद वे अपनी सहानुभूति को प्रकट करना चाहते थे। जब सब लोग चलने को हुए तब बाबूसाहब ने मुसकराने की चेष्टा करते हुए कहा—"किशनलाल जी, कितने दिनों में मुझ में ताकत आ जायगी। क्या मैं तिलक में शाहगंज जाने योग्य हो जाऊँगा?"

किशनलाल ने चलते चलते कहा—"आप इतमीनान रक्खें आपको साथ लेकर मैं शाहगंज चलूँगा।"

सब लोगों के चले जाने पर प्रतिभा और लक्ष्मी फिर आ गयीं। शान्ता को गोद में लिये हुए पद्मा भी आयी। बाबूसाहब ने करुण स्वर में कहा—"देखो, भैया अभी तक नहीं आये। अब जान पड़ता है, मेरी तबियत सुधर कर भी बिगड़ेगी। जरा जंजाली को श्यामलाल के यहाँ भेजकर पता तो लगवाओ कि वह कहाँ चला गया है।"

जंजाली भेजा गया। लौट कर उसने कहा—"हुजूर श्यामलाल तो कल्ह से ही कहीं बाहर गये हैं। कहाँ गये हैं, यह उनकी मां को भी नहीं मालूम। बच्चा जी का कुछ पता नहीं चला।"

बाबूसाहब ने लक्ष्मी की ओर स्थिर दृष्टि से देखते हुए कहा—"मुझे तो जान पड़ता है, वह इस समय शहर में भी नहीं है।"

लक्ष्मी की दशा इस समय चोर की सी थी। वे सदैव अजीतसिंह का पक्ष समर्थन किया करती थीं। दबी जुबान से उन्होंने कहा—"नहीं, बाहर कहाँ गया होगा, आता ही होगा।

बा०—"नहीं वह प्रतिभा के विवाह के सम्बन्ध में जरूर कुछ कारखाई कर रहा है। देख लेना, यह बात गलत नहीं निकलेगी।"

बाबू साहब के स्वर में ऐसी दृढ़ता थी कि लक्ष्मी को निरुत्तर हो जाना पड़ा। पद्मा ने अपने मन में कहा—"मेरी सारी विपत्तियों का कारण दादी का विवाह ही तो है। देखूँ इनके मारे उनकी और मेरी क्या क्या साँसत होती है।"

परन्तु, बाबूसाहब की उक्त बात से प्रतिभा का तो हृदय ही काँप उठा। भैया ने कल मेरी चिट्ठी का जो जवाब भेजा था उसके साथ कमलाशंकर का भी एक पत्र ज्ञात वा अज्ञात रूप से चला आया था। उसमें कमलबाबू ने अपनी प्रतिज्ञा के पालन में असमर्थता प्रकट की थी। चिट्ठी कल्ह ही की आयी हुई है और श्यामलाल कल्ह से माता तक को स्थान का पूरा पता न दे कर गायब हैं। यदि वह आजमगढ़ को ही गया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। और बहुत सम्भव है, पिता जी की अवस्था सुधरती हुई देखकर भैया भी आजमगढ़ को ही चले गये हों। यही सब सोचते-सोचते प्रतिभा का सिर घूम गया। उसे यह बात बहुत अखरने लगी कि मेरे ही कारण यह सब अनर्थ हो रहा है। अब वह अपने को बार-बार कोसती थी और अपने हृदयाकाश में अगणित वार यह ध्वनि गुँजाती थी—हाय! मैंने भैया को वह अभागा पत्र क्यों लिखा! मिस घोष के कहने में मैं क्यों आयी? आर्त्त हृदय की मौन भाषा में उसने भगवान् से प्रार्थना की—हे दीनबन्धु! इस समय मेरी रक्षा करो, मुझे सम्पूर्ण कुटुम्ब के अपार संकट का हेतु मत बनाओ। मैंने अनजान में स्वार्थ की जो एक चिनगारी अपने कुटुम्बियों के आनन्द-निकेतन पर रख दी है उससे सर्व्वनाश न होने दो, उसे परिस्थितियों की प्रबल पवन की सहायता से प्रचण्ड अनल की प्रलयकारी लपटों में परिणत मत होने दो। हे पीड़ित जन की आर्त्ति को हरने वाले देव-देव! पिता की इच्छा का विरोध करके मुझ अभागिनी ने तो उसका यथेष्ट फल यों ही पा लिया है। जिसे अपना हृदय दिया, जिस पर सर्वस्व निछावर किया उसका प्रेम भी इतना दुर्बल सिद्ध हुआ कि एक साधारण झोंके को भी सहन नहीं कर सका! अब यहीं इस शोचनीय कथा का अन्त हो जाने दो। प्रभो!

इसी धोखे, इसी वञ्चना से संसार के स्वरूप को समझ कर तुम्हारी ही चिन्ता में मैं अपना यह जीवन समाप्त कर दूँगी। केवल एक कृपा करो। मेरे प्यारे भैया, पूज्य, दयामयी माता और भाभी को मेरे कारण संकट में न पड़ने दो। नाथ! मेरी गलती को क्षमा कर दो, एक बार मुझे उबार दो, मैं सरल बालिका छल-कपट से नितान्त अनभिज्ञ थी। अब यदि भविष्य में मैं फिर कभी ऐसा करूँ तो चाहे जो दण्ड देना, मैं चूँ नहीं करूँगी।

मन ही मन यही प्रार्थना करती हुई प्रतिभा अत्यन्त दीनता-पूर्वक पिता के सिरहाने की ओर खड़ी रही। नारी का सब से बड़ा अभिमान है पुरुष पर विजय प्राप्त करना। स्वीकार वा अस्वीकार करने, उत्साहित अथवा निराश करने का अधिकार उसी को मिलना चाहिए, इसी में उसके हृदय की सब से बड़ी आकांक्षा की पूर्ति है। सो गौरव तो दूर की बात रही, प्रतिभा का पद तो उस भिखारिन से भी हीन हो गया जिसपर करुणा करके लोग भिक्षा दे दिया करते हैं। प्रेम-मन्दिर के उसके आराध्य देवता ने, सर्व्वस्व निछावर कर देने पर भी, उसे ठुकरा दिया। सौन्दर्य्य और लावण्य की खान प्रतिभा का मर्माहत हृदय ही बता सकता था कि किसी कुमारिका को प्रणय के पाश में आबद्ध करने के अनन्तर वञ्चित करने में उसे कितनी पीड़ा होती है, उसका एक मात्र धन गर्व्व चूर चूर कर देने पर उसके प्राणों में कितनी अधिक वेदना का सञ्चार होता। इतने अल्प वयस में प्राप्त होने वाली यह व्यथा उसके कोमल हृदय में छिप कर कैसे बैठ सकती थी? वह तो उसकी आँखों में, मुख में, होंठो में फूटी सी आ रही थी। भय और विषाद से व्याकुल होकर प्रतिभा वहाँ से चली गयी। अपने कमरे में किवाड़ बन्द कर के वह फूट फूट कर रोने लगी।

प्रतिभा के चले जाने पर बाबूसाहब ने कहा—"मेरा मन बहुत घबरा रहा है। भीतर ही भीतर जी ऐसा मसोसता है कि घण्टों रोऊँ। लेकिन तुम सब का दुःख समझ कर धीरज धर लेता हूँ। मैं रह रहकर डर रहा हूँ कि प्रतिभा का ब्याह रुक न जाय। मेरे मन में कोई कह रहा है कि श्यामलाल के प्रयाग से बाहर जाने और बच्चा के बिना बताये गायब होने में कुछ सम्बन्ध है और इससे किसी न किसी अनिष्ट परिणाम की उत्पत्ति होगी।"

इतना कहने के अनन्तर बाबू साहब की साँस जोर जोर से चलने लगी। वे आगे बोल न सके। कुछ देर के बाद उन्होंने फिर कहा—"मेरे हृदय पर व्यथा का भार बढ़ता ही जा रहा है। इतनी पीड़ा जीवन भर में मैंने कभी नहीं सही। यदि इस समय प्रतिभा के विवाह में बच्चा ने सहायता नहीं दी और बदनामी की कोई बात हुई तो कह नहीं सकता कि मेरी जिन्दगी रहेगी या नहीं।"

लक्ष्मी ने उत्तर नहीं दिया। उनकी आँखों में आँसू भर आये। बाबूसाहब भी चुप हो गये। उन्होंने दूसरी ओर करवट बदल ली। इस समय उनकी आँखों से अश्रुधारा बह रही थी।

इस समय पत्ता भी खड़कता था तो लक्ष्मी समझती थीं कि भैया आ गये, जरा सा खटका होता था तो बाबूसाहब मुँह फेर कर दरवाजे की ओर देख लेते थे। लेकिन लक्ष्मी को अपराधिनी की भाँति सशंक और दुख से व्याकुल देख कर ही वे समझ जाते थे कि अभी परिस्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

एक बार उनका ध्यान शान्ता की ओर गया, बोले—"जरा बच्ची को मुझे दे दो। लक्ष्मी को कुछ सहारा सा मिला।

उन्होंने शान्ता को उनकी पलंग पर बैठा दिया। अशक्त होते हुए भी बाबूसाहब ने उठ कर उसे अपनी गोद में ले लिया और चुमकारना और प्यार करना शुरू किया। इस समय शान्ता की तोतली बातों, स्नेह भरी मुसकान और चितवन तथा दादा सम्बोधन से थोड़ी देर के लिए स्वर्ग पृथ्वी पर उतर आया और कितने ही दिनों से विषाद की ज्वाला में जलने वाले जीवों को जैसे रेगिस्तान में हरा-भरा उद्यान विश्राम करने के लिए मिल गया। परन्तु यह सुख अधिक काल के लिए नहीं था। शीघ्र ही वह एक तीखे चुभने वाले काँटे की तरह कलेजे में पीर करने लगा। आह! कहीं ऐसा न हो कि मेरी यह बीमारी मेरे जीवन की घड़ियों को गिनने के लिए आयी हो। इस वेदना के भार से बाबूसाहब का शरीर शिथिल हो गया। वे लेट गये। ज्वर का आक्रमण हो गया। लक्ष्मी और पद्मा की घबराहट बढ़ चली। थोड़ी देर में ज्वर अधिक बढ़ गया। दस बजते बजते वायु का प्रकोप हो गया। वे रह रहकर असंगत प्रलाप करने लगे। कभी दाँत पीसते हुए कहते—"निकल जा बेईमान मेरे घरसे। तू मुझे मारने के लिए आया है! फिर रोते हुए कहते —हाय मेरी बेटी को दुष्ट ले गया, नीच ले गया। कभी ज़ोर से हँस पड़ते और फिर इस तरह रोते कि सिसकियाँ बँध जातीं। यह सब दृश्य देख कर नौकर-चाकर तक बहुत अधिक दुखी हो गये। बेचारा जंजाली घबराया हुआ डाक्टर किशनलाल के पास दौड़ा गया। वे आये और देख कर बोले—"जान पड़ता है, अजीत बाबू के कारण इनके हृदय पर कड़ी चोट लग गयी है। इस समय इनकी दवा यही है कि वे आ जावें।" कुछ दवा देकर तथा यह कह कर कि अजीत बाबू का पता लगाने की कोशिश की जानी चाहिए, अन्यथा इनका रोग बिगड़ जायगा, डाक्टर साहब चले गये।

रात को बाबूसाहब की चारपाई के पास बैठी हुई प्रतिभा सारी रात जागती और उनकी सेवा-सुश्रूषा करती रही। अम्मा और भाभी को उसने हठ-पूर्वक बैठने भी नहीं दिया। उसने कह दिया कि जब तबियत विशेष खराब देखूँगी तब सूचना दूँगी। उसके आग्रह के सामने लक्ष्मी को भी विवश होना ही पड़ा। रही पद्मा, सो वह कष्ट-भीरु रमणी थी। उसे आराम से सोने को मिला, मानो सब कुछ मिला।

प्रतिभा ने जितना रुदन किया था उससे स्वयं उसकी तबियत अच्छी नहीं थी। परन्तु अपने स्वास्थ्य का कुछ भी ख़याल न करके वह क्यों सारी रात जाग कर बिता रही थी? आधी रात का समय था। डाक्टर साहब की दवा ने बाबूसाहब को निद्रा की गोद में विश्रान्त कर दिया था। परन्तु प्रतिभा की आँखों में नींद नहीं थी। इस समय, जब कि सम्पूर्ण प्रकृति विश्राम कर रही थी, प्रतिभा का अस्थिर चित्त न जाने किस विचार-सागर में डूबा हुआ था। इस समय वह क्या सोच रही थी, क्या इसे कोई बता सकता है?

[३६]

श्रीमती घोष को हिन्दुस्तानी चिड़ियों, पेड़ों आदि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने का बड़ा शौक़ था। रामलखन सिंह ने अपनी सुन्दर स्वस्थ प्रकृति, प्रेमपूर्ण व्यवहार आदि से उन पर ऐसा प्रभाव डाल दिया था कि मिस्टर घोष के वियोग की व्यथा को वे मिस्टर सिंह ही के साथ अपना अधिक समय व्यतीत करके काटने और इस मिलन का सदुपयोग अपने उसी शौक़ को पूरा करने में करने लगीं जिसकी चर्चा ऊपर की गयी है।

रामलखन के बँगले में चौतरे पर दो आराम कुर्सियाँ

और कई कुर्सियाँ पड़ी थीं। आराम कुर्सियों में रामलखन और श्रीमती घोष विराज रही थीं; शेष कुर्सिया खाली पड़ी थीं। लगभग साढ़े आठ बजे थे, चन्द्रमा की स्निग्ध किरणें आस पास की समस्त लताओं और फूलों आदि को अनूठा झलमला श्वेत अलङ्कार पहना रही थीं। अचानक ही पास के किसी आम्र-वृक्ष पर बैठी हुई कोयल अपने कल कण्ठ से कूक उठी 'कू'।

श्रीमती घोष ने पूछा—"मिस्टर सिंह, यह कौन चिड़िया है?" रामलखन ने जब तक उत्तर दिया, तब तक पपीहा कहीं से बोल उठा—'पी कहाँ'। रामलखन ने पपीहे के परिचय में कहा—"यह हिन्दुस्तान का एक विचित्र पक्षी है। हमारे देश के कवियों ने 'चन्द्रमा', 'कोयल' 'पपीहा' आदि का बहुत अधिक उपयोग अपने काव्यों में किया है। श्रीमती घोष! यदि आप आम की नई नई कलियों पर मँड़राने वाले भौंरों की गुञ्जार देख कर हमारे काव्यों की नायिकाओं को बेहोश होते पढ़ें तो न जाने क्या सोचें। आप कहेंगी, यह भी कोई कविता है! स्त्री पुरुष के लिए इतनी व्याकुल क्यों होने लगी? किन्तु हमारे देश में यह बात केवल कल्पना नहीं है, वास्तविक है, और वास्तविकता में जीवन का जो अपार आनन्द निहित है उससे आप लोग वञ्चित हैं।"

श्रीमती घोष ने उत्तर दिया—"मिस्टर सिंह, आप बहुत ठीक कहते हैं। वास्तव में लड़कपन में मैंने हिन्दुस्तान की इन बातों के सम्बन्ध में जो कुछ थोड़ा सा सुन रक्खा था उसी के कारण मैंने मिस्टर घोष से विवाह किया था। परन्तु मिस्टर घोष के कृत्रिम जीवन के कारण मैं देखती हूँ कि मुझे भारतीय विशेषताओं का रसास्वादन करने का अवसर नहीं मिला।

इन बातों का सिलसिला न जाने कहाँ तक जाता, किन्तु बीच

ही में रंग में भंग हो गया। ठाकुर रणधीर सिंह ठीक चौतरे के सामने आकर इक्के से उतर पड़े। रामलखन को उनके इतने शीघ्र लौट आने की आशा न थी। वास्तव में एक दो दिन में वे स्वयं घर जाने वाले थे। ऐसी दशा में पिता का वापिस आना किसी अनिष्ट का सूचक ही हो सकता था। रामलखन ने इन्हीं भावों के कारण बहुत घबरा कर पूछा—"बाबू जी! घर पर कुशल तो है?"

रणधीर सिंह ने समूची बात एक दम से प्रकट न कर देने की इच्छा से कहा—"घर पर सब कुशल है।"

"फिर आपको लौटना क्यों पड़ा?"—रामलखन ने तुरन्त ही पूछा। रणधीर सिंह ने कहा—"क्या तुम्हें कोई दूसरी स्त्री ही नहीं मिलेगी जो तुम्हारी शादी एक बदचलन लड़की के साथ की जाय? धोखेबाजी की बात और है, लेकिन जब बात मालूम हो जाय तो ऐसा ब्याह करना क्या नरक में लात रखना नहीं है?"

रामलखन समझ गये कि कहीं पिता जी को प्रतिभा और कमलाशङ्कर के प्रेम का पता चल गया है। बोले—"अच्छा आराम कीजिए, मुझे शादी की जरूरत ही नहीं है।"

रणधीर सिंह ने स्वाभिमानपूर्ण स्वर में कहा—"शादी की जरूरत क्यों नहीं है? अभी तुम हो कै दिन के, दस दिन के भीतर न पचास तालुकेदारों ने आ आ कर नाक रगड़ी तो कहना कि क्या डोंग हाँकते थे! मैं तो कल बाबू जगजीवन सिंह के यहां शादी के इनकार की चिट्ठी भेज दूँगा।" अच्छी बात है, कह कर रामलखन तो आराम कुर्सी में आकर ज्यों के त्यों पड़ गये, उधर नौकर ने रणधीर सिंह का सामान ले जा कर बिस्तर लगा दिया। हुक्का भर के उनके हाथ में दे दिया

गया और वे मुख मुद्रा से उल्लास-भाव प्रकट करते हुए गुड़ा-गुड़ाकर धुआं फेंकने में श्रीमतीघोष और मिस्टर रामलखन के सिगार को भी मात करने लगे, जैसे किसी शत्रु के किले पर फतह कर आये हों।

श्रीमती घोष ने रामलखन से पूछा—"यह क्या मामला है?" रामलखन से समुचित उत्तर पाने पर उन्होंने कहा—"आप लोगों की विवाह-पद्धति निस्सन्देह विचित्र है। यहाँ तो मिस्टर सिंह! मैं आप के देश की प्रथा पर बड़ी कठोर आलोचना करना चाहती हूँ। क्या आप को अब तक यह बात नहीं मालूम थी कि प्रतिभा कमलाशंकर को चाहती है? मैं आप को इस विवाह के सम्बन्ध में बहुत अधिक उत्साहित देख कर समझती थी कि आप ने उसके बारे में यह साधारण जानकारी तो प्राप्त ही की होगी। दूसरी बात यह कि प्रेम तो एक प्रवाह है, वह माता-पिता की सम्मतियों की संगति में न आवे तो क्या उसका बलिदान किया जा सकता है? क्या टिटहिरी-दम्पति की चोंचों से लायी हुई बालू से समुद्र की तरंगों की हत्या की जा सकती है? बस ऐसे ही स्थल हैं जहां आप लोग स्वाभाविकता का गला घोंटते हैं और अपने उन पूर्वजों को भी बदनाम करते हैं जिनका शायद इस तरह की मूर्खता का समर्थन करने का कभी अभिप्राय न रहा होगा।"

यह आलोचना श्रीमती घोष ने जो खोल कर की थी और रामलखन सिंह के हृदय पर उसने पूरा असर भी किया रामलखन सिंह को वास्तव में श्रीमती घोष और मिस घोष दोनों ने मिल कर उस आनन्दमय जगत की ओर उन्मुख कर दिया था जहां प्रतिभा की कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी

आज थोड़ी ही देर की बैठक के बाद श्रीमती घोष अपने बँगले पर चली गयीं। चलते समय उन्हें यह निश्चय तो हो ही गया कि रामलखन सिंह इस समय पूरे तौर पर मेरी मुट्ठी में हैं। उन्हें आशा हो गयी कि अजीत के विरुद्ध भी अब मिस्टर सिंह काम करने पर उतारू हो जायँगे, और सबसे बड़ी बात, जिसके लिए उन्हें विशेष प्रसन्नता थी, यह थी कि पत्नी-विहोन और निस्सन्तान रामलखन प्रेम के चक्कर में बहुत आसानी से पड़ सकता है। मिस्टर घोष की स्मृति को अनङ्ग की मदिरा में डुबो कर आज वे चाँद की सफेदी को भी मात करने वाली अपनी शैया पर लेटी हुई बड़ी देर तक आगे का मार्ग परिष्कृत देख कर तरह तरह के मनसूबे बाँधती रहीं।

× × × ×

सबेरे सात बजे रामलखन सिंह श्रीमती घोष के यहां पहुँचे तो वे और मिस घोष दोनों अस्पताल में मिस्टर मार्क को देखने जा रही थीं। अपनी मोटर में उन दोनों को बैठा कर वे अस्पताल ही की ओर चले। मार्ग में उनको डाक्टर किशन लाल सामने से आते हुए दिखायी पड़े। थोड़ी देर के लिए मोटर रोक कर उन्होंने कहा—"लखन बाबू; बाबूसाहब की तबियत बहुत खराब है। अजीत बाबू भी न जाने कहां गायब हो गये हैं।"

बाबू रामलखन ने लापरवाही से उत्तर दिया—"अजी, इस अभागे कुटुम्ब की चर्चा न चलाइए। बाबू जगजीवन पर मुझे अवश्य ही तरस आता है, परन्तु अब सोचता हूँ कि अपने कर्म्मों का फल तो उन्हें भोगना ही चाहिए। खैर! जरा मिस्टर मार्क को देखने जाता हूँ।"

यह कहने के साथ ही नमस्कार करते हुए रामलखन ने अपनी मोटर चला दी और श्रीमती घोष की ओर मुखकर के

कहा—"आप को एक समाचार क्यों न सुना दूँ, हम लोगों ने बाबू जगजीवन के यहाँ विवाह करना अस्वीकार कर दिया है। पिता जो की इच्छा के अनुसार आज पत्र लिखा कर अभी चला आ रहा हूँ।"

"मुझे बूढ़े जगजीवन सिंह के लिए बहुत खेद है"—आन्तरिक संतोष का भाव दबाते और कृत्रिम सहानुभूति का भाव प्रगट करते हुए श्रीमती घोष ने कहा।"

इसी समय से रामलखन और श्रीमती घोष के हृदयों में मौन भाषा में एक ऐसा समझौता लिपिबद्ध हो गया जिसके अनुसार दोनों एक दूसरे के बहुत निकट आ गये और दोनों में से किसी को भी स्वयं को विधुर या विधुरा समझने की आवश्यकता नहीं रह गयी।

[३७]

बाबूसाहब के यहां डाक्टर किशनलाल के आने के बाद अनन्त राम वैद्य भी पहुँचे। बाबूसाहब का ज्वर उतरा हुआ था, श्वास की गति भी साधारण हो गयी थी। परन्तु, इतने थोड़े समय में इतनी अधिक निर्बलता बहुत कम देखने में आती है, विशेषकर जब बाबूसाहब का ऐसा बलिष्ट शरीर हो। डाक्टर साहब ने इसका कारण बताते हुए कहा—"बाबूसाहब के हृदय पर अजीत बाबू के दुर्व्यवस्थित कार्यों से बहुत बड़ा आघात लगा है। यदि इस व्यथा का निवारण नहीं हुआ तो निकट भविष्य में या तो इनका चित्त विक्षिप्त हो जायगा या ये प्राणों से ही हाथ धोयेंगे।

इसी समय राधिकाकान्त भी आ गये। वहां का अदृश्य देखकर वे घबरा गये। घबराहट के भाव से वे अभी तक मुक्त नहीं हुए थे कि उन्हें डाक्टर साहब ने एकान्त में ले जाकर उनसे

कहा—"राधिका बाबू, क्या आप बता सकते हैं कि इस समय अजीत बाबू कहाँ होंगे ?"

रा०—"केवल अनुमान से कह सकता हूँ। निश्चित रूप से तो शायद कोई न बता सकेगा। यहाँ वे कब से नहीं हैं ?"

डा०—"कल से।"

रा०—"वे आजमगढ़ में कमलाशङ्कर के पास गये होंगे। उनके साथ वे प्रतिभा का विवाह करना चाहते थे।"

डा०—"यह आपको कैसे मालूम ? क्या अजीत बाबू ने कभी आप से इसकी चर्चा की थी ? या कमलाशंकर ने ही बताया था ?"

रा०—"परसों कमलाशंकर की एक चिट्ठी मेरे पास आयी थी। उसमें उन्होंने लिखा था कि माता के सत्याग्रह और प्राण-परित्याग की धमकी के कारण ही उन्हें प० सदाशिव मिश्र के यहाँ विवाह स्वीकार करना पड़ रहा है। सम्भव है, ऐसी ही चिट्ठी अजीत बाबू के पास भी आयी हो। मेरा खयाल है कि प्रतिभा के विवाह से अधिक महत्व का प्रश्न इस समय उनके सामने दूसरा कोई नहीं है। वहीं तार भेज दिया जाय।"

डा०—"मैं तार भेजने के पक्ष में नहीं हूँ। मैं यह जानना चाहता हू कि क्या आप स्वयं जा सकते हैं ?"

रा०—"मैं जाने के लिए तैयार हूँ; परन्तु—

ये बातें हो ही रही थीं कि एक आगन्तुक भगवान चपरासी के हाथ में एक चिट्ठी देकर कह रहा था—"यह चिट्ठी बाबू रामलखनसिंह के पिता ठाकुर रणधीरसिंह ने भेजी है। इसे बाबूसाहब के पास पहुँचा दो। भगवान ने अभी कुछ उत्तर नहीं

दिया था कि डाक्टर साहब ने लपककर आगन्तुक से पूछा—
"तुम कहाँ से पत्र लाये हो?"

आ०—सुपरिंटेंडेंट साहब के पिता ठाकुर रणधीरसिंह ने यह पत्र भेजा है।"

डा०—"अजी मुझे तो मालूम है। वे परसों शाहगंज चले गये। यह कहो कि बाबू रामलखनसिंह के पास उन्होंने यहाँ के लिए डाक से कोई चिट्ठी भेजी होगी।"

आ०—"नहीं हुजूर, ठाकुर साहब कल रात को फिर वापस आ गये। शायद शादी में कुछ गड़बड़ हो गया।"

डा० —गड़बड़ कैसा! सब तै तो हो गया है, परसों तिलक जायगो।"

आ०—"अब अधिक मैं कुछ नहीं कह सकता हुजूर। चिट्ठी ही देख लें।"

डाक्टर साहब ने विशेष अवसर समझकर लिफ़ाफ़ा फाड़ डाला। चिट्ठी इस प्रकार थी—

श्रीमान् ठाकुर जगजीवनसिंह जी की सेवा में--बाबूसाहब को विदित हो कि अनेक कारणों से आप के यहाँ विवाह-सम्बन्ध करने में हम असमर्थ हैं। कारण ऐसे नहीं हैं जिन्हें मैं आप को बता सकूं। जब ऐसी बात थी तो आपको स्वयं हमारे यहां सम्बन्ध करने के लिए आग्रह न करना चाहिए था। आप के एक खास आदमी से ही हमें सब बातें मालूम हुई हैं; इससे अविश्वास करना भी कठिन है। इस कष्ट में मुझे आप के साथ सहानुभूति है, परन्तु कुल-प्रतिष्ठा के विरुद्ध मैं कोई काम नहीं कर सकता।

ह० ठाकुर रणधीरसिंह

इस पत्र को पढ़कर डाक्टर साहब सन्नाटे में आ गये। बड़ी

देर तक तो कुछ बोल ही नहीं सके। सोचने लगे—इस पत्र का हाल जब बाबूसाहब को मालूम होगा तब उनकी क्या दशा होगी! इस विवाह का रुकना उनके लिए कितने अपमान की बात है। शहर भर में इस सम्बन्ध की चर्चा छिड़ गयी है। अब जब लोग सुनेंगे कि यह विवाह नहीं होगा तब क्या कहेंगे। सच्ची बात भी कब तक छिपी रह सकेगी? क्या इतना अपमान बाबूसाहब सहन कर सकेंगे? कभी नहीं। इस समय इनका दुर्भाग्य प्रबल है। जान पड़ता है, इनके जीवन की अन्तिम घड़ियां आ गयी हैं।

हलके स्वर में उन्होंने कहा—"अच्छा, तुम जाओ।"

राधिकाकान्त अभी अपने स्थान ही पर खड़े थे। डाक्टर साहब ने उनके पास जाकर कहा—"अच्छा तो आप आजमगढ़ चले जाकर अजीत बाबू को ले आइए।"

रा०—"परन्तु अजीत बाबू मुझे देखते ही चिढ़ जायँगे। मेरे अंगरेजी वेष को देखकर वे मुझे खरी खोटी सुनाये बिना नहीं रहेंगे।"

डा०—"तो आपको कुरता और धोती पहन कर जाने से कौन मना करता है। जाइए दोपहर की गाड़ी से चले जाइए तब तक मैं एक तार भी दिलवाये देता हूं।"

राधिकाकान्त जाना नहीं चाहते थे। परन्तु, मौका ऐसा था कि इनकार भी नहीं कर सके। उनके चले जाने पर डाक्टर साहब ने तार लिखकर जंजाली के हाथ डाकखाने भिजवा दिया और फिर आकर वे बाबूसाहब के पास बैठे। इस समय बाबूसाहब की तबियत कुछ सम्हली थी। उन्होंने क्षीण स्वरों में पूछा—"किशनलाल जी, मेरे वसीयतनामे के सम्बन्ध में आप ने क्या किया? रियासत का प्रबन्ध जल्दी हो जाता तो

बड़ा अच्छा था। जिन्दगी का ठिकाना नहीं। आज बाबू रतनचन्द के यहां जरूर जाइएगा। हां, एक बात और—मेरी बीमारी तक के लिए दुर्गा का एक पाठ बैठा दीजिए और एक पंडित को मुझे भागवत सुनाने के लिए नियुक्त कर दीजिए। आपको मैं बहुत कष्ट देता हूँ। क्षमा कीजिएगा। आपको डाक्टर के नाते नहीं, एक मित्र के नाते मैं परेशान करता हूँ।"

डा०—"बाबूसाहब, मैं सब तरह से आपका हितैषी हूँ और आपकी प्रत्येक प्रकार की सहायता करने के लिए तैयार हूँ। मुझे कष्ट इसी बात का है कि विशेष सेवा मुझसे नहीं बन पड़ी। आपके उपकारों का बदला मैं किसी प्रकार चुका नहीं सका। हाँ, तो यह बताइए कि ट्रस्टियों में आप किसको-किसको चाहते हैं। मैं भी आप के विचार को पसन्द करता हूँ। अजीत बाबू पर इस वसीयतनामे का अच्छा प्रभाव पड़ सकता है। यह उनके लिए एक चेतावनी होगी। शायद इसके कारण वे ठीक रास्ते पर भी आ जायँ।"

बा०—"मैं इस ट्रस्ट में चार व्यक्तियों को रखना चाहता हूँ—(१) पं० हरिहर सुकुल, (२) बाबू रामलखन सिंह, (३) डाक्टर किशन लाल, (४) और बच्चा की माँ को।"

"बहुत अच्छा," कहकर डाक्टर साहब उठे और अजीत बाबू की बैठक में जाकर उन्होंने लक्ष्मी को बुलवाया। जब वे आयीं तो ठाकुर रणधीर सिंह की चिट्ठी का सारा हाल उन्हें सुनाकर कहा—"देखिए, बाबूसाहब को यह बात मालूम न होने पावे नहीं तो उनकी जान पर आ बीतेगी।"

हतोत्साह, आशंकित और भग्न-हृदय होकर लक्ष्मी देवी घर के भीतर गयीं।

दोपहर के समय बाबूसाहब की तबियत साधारणतया

अच्छी थी। उन्होंने जंजाली से कहा—"क्यों रे, तू शाहगंज तिलक में जायगा या यहीं रहेगा ?"

जंजाली—"सरकार, तिलक तो अब रुक गई न ?"

बाबूसाहब ने चौंककर पूछा—"क्यों क्या कहता है रे ? तिलक क्यों रुक जायगी ?"

जंजाली—"हुजूर कप्तान साहब का नौकर सबेरे चिट्ठी लेकर आया था—वही कहता था।"

बाबूसाहब ने जंजाली पर दृष्टि गड़ा कर पूछा—"कैसी चिट्ठी ?"

जंजाली चकपका गया, कुछ उत्तर नहीं दे सका। बाबू साहब को ऐसा मालूम हो रहा था जैसे उनके शरीर में से कोई कलेजा ही निकाले लेता हो। घबराकर उन्होंने कहा—"बहू जी को बुलाओ।"

लक्ष्मी के आने पर बड़े रूखे और तीखे स्वरों में उन्होंने कहा—"क्यों, मेरे नाम की चिट्ठी अभी कहाँ घूम रही है। तबियत कुछ अच्छी रहे तब भी नहीं मिलेगी ? क्या मैं अभी से इस संसार से गत समझ लिया गया ?"

लक्ष्मी ने साहसपूर्वक कहा—"क्यों अशुभ बात मुँह से निकालते हो। तुम्हारी चिट्ठी मेरे पास नहीं है।"

बा०—"कहाँ है ?"

ल०—"धीरज धरो। शाम को डाक्टर आवेंगे, उन्हीं से सब हाल मालूम हो जायगा।"

बा०—"तो यह कहो कि चिट्ठी उन्हीं के पास है।"

जंजाली की ओर मुख फेर कर बाबूसाहब ने कहा—"डाक्टर साहब के यहाँ से चिट्ठी ले आओ !"

जंजाली अपने आपको कोसता हुआ साइकिल पर बैठ कर डाक्टर साहब के यहाँ गया।

लक्ष्मी अपराधिनी की तरह खड़ी थीं।

बाबूसाहब ने कहा—"अच्छा, तुम्हें यह तो मालूम होगा कि उस चिट्ठी में क्या लिखा है। क्या सचमुच शादी रुक गयी? आखिर कारण क्या बताया है?"

लक्ष्मी ने करुण स्वर में कहा—"चिट्ठी आ रही है। आप ही जान लोगे। मैंने उसे पढ़ा नहीं है। किन्तु डाक्टर साहब ने जिस ढँग से मुझसे कहा वह भावों को प्रकट करने में सौ चिट्ठियों के बराबर है। जान पड़ता है, प्रतिभा और कमल के प्रेम की चर्चा फैल गयी।"

बा०—"क्या कहा? प्रतिभा और कमल के प्रेम की चर्चा रणधीर सिंह के कानों तक पहुँच गयी? आह! क्या यह सच है? क्या मेरे मुख की लालिमा शत्रुओं के मुख पर चली गयी? क्या मेरी अपकीर्त्ति सहस्रमुखी होकर मुझे निगलने के लिए तैयारी करने लगी। हाय! मैं प्रयाग में अब किसको मुख दिखाऊँगा? कहाँ उठूँगा-बैठूँगा? बेटा अजीत! मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था जो मुझसे कम कस कर बदला ले रहे हो? तुम्हारे अचानक गायब होने पर मैं तो जानता ही था कि कुछ न कुछ अनिष्ट अवश्य होगा, सो तुम सफल हो गये। बूढ़े बाप के रक्त का पान करके अब तुम प्रसन्न होओ, तुम्हारी विजय हो गयी।"

यह कहते हुए बाबूसाहब फूट फूट कर रोने लगे। पलँग के पैताने की ओर फर्श पर बैठी हुई लक्ष्मी भी सिसकने लगीं।

थोड़ी देर में मोटर पर बैठे हुए डाक्टर साहब आ गये। बाबूसाहब और लक्ष्मी को रोते हुए देखकर उन्होंने कहा—

"आप घबराते क्यों हैं ? मैं बाबू रामलखन के यहां गया था। उन्हें मैंने सारी बातें समझा दी हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि वे अपने पिता को सहमत कर लेंगे। अजीत बाबू आजमगढ़ में कमलाशंकर के यहां गये हैं। कमलाशंकर की मां के नाम से मेरे तार का जवाब आ गया है। मैंने राधिकाकान्त को उन्हें अपने साथ ले आने के लिए आजमगढ़ भेज दिया है। अपने हृदय को सँभालिए, सब बातें फिर आपके अनुकूल हो जायँगी। रणधीर सिंह की चिट्ठी वैसी ही थी जैसे रणधीर सिंह स्वयं हैं। मुझे वह अच्छी नहीं लगी और मैंने उसे फाड़ डाला। इसके लिए मुझे क्षमा कर दीजिए।"

बाबूसाहब ने रूमाल से आँखें पोंछते हुए कहा—"डाक्टर किशनलाल, आप से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मैंने और भी कितने ही लोगों को, समय समय पर, सहायता की है परन्तु आप की जैसी कृतज्ञता मैंने उनमें कभी नहीं देखी। आप के चिट्ठी फाड़ने का कारण मैं समझता हूँ। आप डरते थे कि मेरे दिल पर कहीं सदमा न पहुँच जाय। आह! कैसी सहृदयता है, कितनी सज्जनता है! भगवान् ने अजीत बाबू को भी इतना सहृदय बनाया होता तो मैं कितना सुखी होता।"

एक ठण्डी आह भरती हुई लक्ष्मी घर के भीतर चली गयीं।

डाक्टर साहब ने कुर्सी पर से उठ कर बाबू साहब का हाथ स्पर्श करते हुए कहा—"इस समय आप का ज्वर काफी कम हो गया है, दमे का जोर भी घटा है। एक सप्ताह में आप अच्छे हो जायँगे।"

बाबूसाहब आँखें स्थिर किये डाक्टर साहब के मुख की ओर देखते ही रह गये, कुछ बोले नहीं, उन्हें जो कुछ

कहना था उनकी हृदय-भेदी आह ने कह दिया। डाक्टर साहब का हृदय उस आह से दहल उठा।

बाबूसाहब ने चेष्टा करते हुए कहा—"मेरा दिल बड़े जोर से धड़क रहा है। डाक्टर साहब! ऐसा जन पड़ता है जैसे मैं निःसत्व हो गया हूँ। कोई ऐसी दवा दीजिए कि मुझमें बल आ जाय। ठाकुर रणधीरसिंह तो मेरे यहां आवेंगे नहीं। नहीं तो एकान्त में उनका पैर पकड़ कर फूट फूट कर रोने की इच्छा थी। किन्तु काहे को मुझमें इतना बल होगा कि उनके पास तक जा सकूं। मुझे जान पड़ रहा है, मानो मेरे शरीर के अंग अंग का रुधिर पानी हो गया है, और मैं प्राण रहते हुए मुर्दा होता जा रहा हूँ। आह! ईश्वर! एक बार थोड़ी सी शक्ति और दे दे, ठाकुर रणधीरसिंह के सामने मस्तक नत करके मैं कहता—"ठाकुर साहब! मेरी इज्जत आप ही के हाथ है। मेरे मुँह की लाली बस आप रक्खें तो रहे। शायद मेरे इतना रोने धोने से उन्हें कुछ दया आ जाती। हाय, मेरा सा अभागा कौन होगा? आह! आह!!"

बाबूसाहब उठ नहीं सके। उनके चित्त की इस स्थिति और शरीर की इतनी निर्बलता से डाक्टर साहब का हृदय आशंकित हो उठा। माथे पर हाथ रखे भविष्य की अनिष्ट सम्भावनाओं की कल्पना करके वे काँप उठे। इस समय उन्हें अजीतसिंह पर बड़ा क्रोध आ रहा था। इतने सहृदय पिता का इतना निर्दय पुत्र! उन्हें अजीतसिंह की देशभक्ति और आदर्शवादिता सर्वथा निस्सार, खोखली, और मूर्खतापूर्ण जान पड़ने लगी।

बाबूसाहब ने फिर कहा—"डाक्टर साहब! ट्रस्ट आदि का झंझट जाने दीजिए। अब ईश्वर को जो स्वीकार हो, वही होने

दीजिए। मैं रियासत की चिन्ता का भार कब तक ढोता फिरूँगा। रहे या भाड़ में जाय। और बहू जी और प्रतिभा की रखवाली भी मैं कब तक करूँगा, अगर इन्हें कष्ट बदा है, तो उससे इनकी कोई रक्षा नहीं कर सकता। रही दान-धर्म की बात, सो उसे भी बहुत कर के देख लिया।"

बाबूसाहब के इतना बोलने के बाद फिर दमा उभड़ आया और वे आगे न बोल सके। थोड़ी देर के बाद जब अवस्था सँभली तो फिर कहने लगे—"मिस्टर घोष बेचारा ईसा का नाम दिन रात जपता ही रहा, सो गोली खाकर मरा, मैंने भी धर्म करने में क्या उठा रक्खा, सो अब यों तड़प तड़प कर मरना चाहता हूँ। जाने दीजिए, चाहे जो हो मुझसे अब कोई मतलब नहीं।"

डाक्टर साहब चुपचाप खड़े खड़े ये निराशाजनक बातें सुन रहे थे! उनका हृदय विषाद से अभिभूत होता जा रहा था! उनकी आँखें भर आयीं! जंजाली को बुलाकर उन्होंने कहा—"चलो, दूकान में एक दवा दे दूँ, उसे अभी बाबूसाहब को पिलाना होगा।

बाबू साहब ने दूसरी ओर करवट बदल ली। डाक्टर साहब चले गये।"

जंजाली थोड़ी देर में दवा और उसके साथ एक पत्र लेकर लौटा। पत्र में दवा के सेवन की विधि लिखी थी और यह लिखा था कि उससे नींद आ जायगी। जंजाली ने देखा कि बाबूसाहब चद्दर ताने सो रहे हैं। उसने बहू जी से कहा। उन्होंने उनको सोते देख कर दवा आलमारी में रख दी।

उनकी निद्रा में विघ्न न पड़े, इसलिए लक्ष्मी और प्रतिभा भीतर एक कमरे में बैठीं। थोड़ी देर में प्रतिभा अपने कमरे में चली गयी। उसे अब अकेले ही अच्छा लगता था।

लक्ष्मी ने पुनः आकर देखा तो बाबूसाहब को सोते पाया। यहाँ से लौट कर के प्रतिभा के कमरे में गयीं। वह किवाड़ बन्द किये लेटी थी। अञ्चल के छोर से आँसू पोंछते हुए उसने किवाड़ खोले। लक्ष्मी ने कहा—"बेटी रोती क्यों है? अब तेरे दादा की तबियत अच्छी हो जायगी। डाक्टर साहब तन मन से दवा में लगे हैं। देख, तबियत सँभाल, कहीं ऐसा न हो कि तू भी बीमार पड़ जाय।"

प्र०—"अम्मा, मेरे ही कारण घर चौपट हो रहा है। मैं कहाँ की डाइन पैदा हुई।"

ल०—"ना बेटी, ऐसी बात मत कहा कर, अपने अपने करम की बात है। जितना कमाया है उतना ही सुख तो मिलेगा। तू मेरी आँख की पुतली है, इधर कई दिनों से तेरा कुम्हलाया हुआ मुख देख देख कर मेरा कलेजा कटा जाता है। बच्ची, तू नहीं जानती कि दुख का कितना बड़ा पहाड़ मेरे हृदय पर लदा हुआ है। फिर भी मैं धीरज धर के सहती हूं।"

यह कह कर लक्ष्मी प्रतिभा की चारपाई पर बैठ गयीं। थोड़ी देर के बाद फिर बोलीं—"बच्ची, तेरे बाल कैसे हो रहे हैं, इसमें जरा तेल छोड़ के कंघी तो कर डाल।"

एक हलकी मुसकराहट प्रतिभा के अधरों पर छा गई जो हृदय की प्रफुल्लता की अपेक्षा वेदना की अधिक व्यञ्जक थी।

कुछ देर तक मौन रहने के बाद प्रतिभा ने बहुत सङ्कोचपूर्वक पूछा—"अम्मा सच बताना, बाबू जी मुझसे घृणा तो नहीं करते, उनकी अधिकांश मनोवेदना का कारण मैं ही तो हूं।"

लक्ष्मी—"बेटी तू अभी निरी सरल बालिका ही है। तू अभी

क्या जाने कि माता और पिता के हृदय में सन्तान के प्रति ममता का अपार सागर लहराया करता है और, तू ने किया है क्या बेटी ? झूठी बातें कितने दिनों तक चल सकती हैं। कभी न कभी तो संसार यह जान हो लेगा कि मेरी सोने की प्रतिभा वास्तव में क्या है। सन्दूक में से जरा मालिनो तेल निकाल, आज तेरा बाल ठीक कर दूं।"

प्र०—"जाने दो अम्मा, बाल बिगड़े रहेंगे तो क्या, यहां तो सारा घर बिगड़ रहा है।"

ल०—"बेटी इधर कई दिनों से ऐसी बातें हो रही हैं जिनसे जो का सारा हौसला पस्त हो गया। हृदय में किसो प्रकार का उत्साह नहीं आता। तेरे दादा अभी सो रहे हैं। ला, इसी तरह तबियत बहला लूं।"

प्रतिभा ने कई बार मना किया, किन्तु लक्ष्मी ने नहीं माना। अन्त में प्रतिभा ने तेल की शीशी माँ के हाथ में दी। किवाड़ बन्द करके वह बाल गुँथवाने तो बैठी किंतु संकोच और लज्जा के मारे जैसे भूमि में गड़ी जा रही थी।

थोड़ी ही देर में प्रतिभा ने कहा—"मां अब शीघ्र समाप्त करो। दादा के कमरे में जाओ, देखो उनका कैसा हाल है।"

लक्ष्मी ने किवाड़ खोल कर जानकी महरिन को बुलाया और कहा—"जा, तू बाबूसाहब के कमरे में बैठी रह, जागें तो मुझे खबर देना।"

इसके बाद लक्ष्मी निश्चिंत होकर प्रतिभा का केश सँवारने लगीं। इस बार गलती से किवाड़ थोड़ी सी खुली ही रह गयी और पद्मा की आँखें प्रतिभा पर पड़ गयीं। वह मन ही मन जल भुन कर राख हो गयी। और कोई नहीं मिली तो महराजिन से ही बोली—"अरे कुछ सुनोगी, छबीली जान का शृंगार

हो रहा है, कल बारात आने वाली है। एक ओर घर भस्म हो रहा है, दूसरी ओर बाल गूँथा जा रहा है।

महराजिन हँसने लगी।

प्रतिभा को बालों का गूँथा जाना अधिक देर तक सहन नहीं हो सका और न लक्ष्मी ही उसके सतत वृद्धिशील विरोध की उपेक्षा कर सकीं। शीघ्रही अपना कार्य समाप्त करके वे बाबूसाहब के कमरे में गयीं। अपनी कर्त्तव्य-तत्परता दिखाने के लिए जानकी महरिन धीरे से बोल उठी—अभी तो मालिक सो रहे हैं। कई दिनों के बाद ऐसी नींद सोये हैं। आप भी कई रातों से जाग रही हैं, जायँ थोड़ा लेट लें, मैं यहाँ बैठी हूँ। परन्तु इसके उत्तर में लक्ष्मी ने कहा—"जा तू जरा शान्ता को लेकर बच्चो के पास बैठ। मैं यहाँ रहूँगी।"

जानकी निरुत्साह सी होकर चली गयी।

लक्ष्मी एक कुर्सी पर बैठ कर एक बार उन दिनों का स्मरण करने लगीं, जब वधू के रूप में उन्होंने इस गृह में प्रवेश किया था, जब बाबूसाहब का रूप और ठाट बाट निराला था, कभी शेर के शिकार की चर्चा होती थी, कभी अन्य अनेक प्रकार के आमोद-प्रमोद की तैयारियाँ की जाती थीं, चिंता का कहीं नाम न था। एक दिन वह था कि जब भैया के विवाह का उत्सव मनाया गया था। यही बँगला तब इन्द्र के भवन की शोभा को मात करता था। एक न एक दावतें होती रहती थीं। उनमें कलेक्टर और कमिश्नर तक अपनी मेमों के साथ आया करते थे और वे मेमें, मुझे अच्छी तरह मालूम है, बाबूसाहब पर निछावर हो जाती थीं। इसमें सन्देह नहीं कि वे इन्हें बहका भी देती थीं, परन्तु मुझे तो इन पर गर्व्व ही होता था। आह! वे दिन क्या हो गये? जब

से दमा ने इन्हें पामाल किया तभी से घर में जैसे उदासी सी घिरी रहने लगी और यह उदासी बढ़ती ही जा रही है। सोचा था कि प्रतिभा का ब्याह होगा, दामाद का मुख देख कर हृदय कुछ प्रफुल्लित होगा, सो भगवान को वह भी स्वीकार नहीं हुआ, और ब्याह रुका भी तो मुँह में कलङ्क की कालिमा पोत कर। हाय भगवान! क्या कभी मेरे दिन भी फिरेंगे? इन्हीं विचारों में लक्ष्मी बड़ी देर तक डूबी रहीं। धीरे धीरे कई घंटे बीत गये, किन्तु उन्हें यही जान पड़ता रहा जैसे अभी अभी प्रतिभा के कमरे में से आयी हैं। उनकी यह अन्य-मनस्कता शायद अभी भंग न होती यदि डाक्टर साहब न आ जाते। उन्होंने कमरे के भीतर पैर रखते ही पूछा—"माँ जी, बाबूसाहब की नींद अभी नहीं टूटी? खैर, दवा भी मैंने इन्हें ऐसी ही दी थी कि गहरी नींद आ जाय।"

लक्ष्मी देवी ने टोक कर कहा—"परन्तु आप की दवा आने के पहले ही इन्हें निद्रा आ गयी थी।"

डाक्टर साहब ने घबरा कर बाबूसाहब के मस्तक पर हाथ रखा। उनकी घबराहट और बढ़ गयी। उनके चेहरे से रंग उड़ता देख कर लक्ष्मी का माथा ठनका। अनिष्ट की आशंका से व्याकुल होकर उन्होंने पूछा—"क्या हालत है डाक्टर साहब?" इस प्रश्न का कोई उत्तर न देकर डाक्टर साहब ने चद्दर हटायी और हृदय की परीक्षा की। अन्त में आँखों पर हाथ और मुँह पर रुमाल रख कर पीड़ा-जनित फूत्कार को दबाने की चेष्टा करते हुए वे आराम कुर्सी में बेदम से होकर पड़ रहे। लक्ष्मी के लिए अब भेद अप्रकट नहीं रह गया। वे पछाड़ खाकर भूमि पर गिर पड़ीं।

[३८]

बाबूसाहब के देहान्त का समाचार धीरे धीरे शहर भर

में फैल गया। उसके साथ ही साथ ठाकुर रणधीरसिंह की चिट्ठी की खबर भी उड़ी। तरह-तरह की टीका-टिप्पणी होने लगी, परन्तु सब की सहानुभूति बाबू जगजीवन सिंह ही के पक्ष में थी। इसी समवेदना को प्रकट करने के लिए नगर भर की जनता बाबूसाहब के बँगले की ओर झुक पड़ी।

हरिहर सुकुल को यह समाचार मिला तो फूट फूट कर रो पड़े और अपने ज्वर की बिलकुल परवा न करके चारपाई से उठ कर बाबूसाहब के यहाँ चलने को उद्यत हो गये। उनका यह अपार साहस देख कर बोर्डिङ्ग हाउस के नौकर चाकर दंग हो गये। दौड़ कर उन्होंने उनका पाँव पकड़ा और प्रार्थना की कि आप नाहक में अपनी बीमारी न बढ़ाइए। शीघ्र ही उनका शरीर बेदम हो गया और यदि नौकरों ने न सम्हाला होता तो वे भूमि ही पर गिर पड़ते। चारपाई पर फिर लेटाये जाने पर उन्होंने क्षीण स्वरों में कहा—"हाय बाबू साहब! आपका अन्तिम दर्शन भी नहीं कर सका! जाइए!!

× × × ×

बाबूसाहब का बँगला इलाहाबाद के नामी बँगलों में से था। लेकिन आज उसकी रौनक, उसका ठाटबाट, उसकी शान-शौकत मानो बाबूसाहब का शव मकान में से निकलने के पहले ही विदा हो गयी। बँगले के बगीचे में कोयल और पपीहा अब भी बोल रहे थे। लेकिन कोयल की बोली में न अब मिठास थी और न पपीहा के 'पी कहाँ" में वह तड़प जो मरी हुई तबियतों में भी जान डाल देती है। आज इस करुण प्रसंग में उनका बोलना फूटी ढोल की आवाज की तरह बेसुरा और कर्ण-कटु था। लोगों से यह बात भी छिपी नहीं रह गयी कि अजीत बाबू प्रतिभा के विवाह-सम्बन्ध में अपनी वही नीति

चरितार्थ करने गये हैं जिसके सिलसिले में ही बाबूसाहब की प्राणान्तक घटना का सूत्रपात हो सका। क्रमशः सारा वातावरण अजीत की निन्दा से भर गया। विशेष करके जब शव के साथ जनता ने लक्ष्मी देवी को रोते कलपते हुए चलते देखा तब तो उसके आँसुओं की झड़ी रोके नहीं रुक सकी। बाबू रतनचन्द, अनन्तराम, आदि की आँखों में तो आँसू भरे ही थे, यह दृश्य देख कर ठाकुर रणधीर सिंह, रामलखन सिंह, श्रीमती घोष, मिस घोष भी आँसुओं को रूमाल से पोंछते हुए चल रही थीं। बहुत से रईस, तालुकेदार, कलेक्टर, कमिश्नर, तथा हाईकोर्ट के कुछ जज भी थोड़ी दूर तक बाबूसाहब की स्मृति का सम्मान करने के उद्देश्य से शवयात्रा में सम्मिलित हुए।

त्रिवेणी तक पहुँचते पहुँचते लक्ष्मी देवी बहुत गम्भीर हो गयी थीं; किन्तु जब चिता में उन्हें अपने हाथ से आग लगानी पड़ी तब उनके धैर्य्य का बाँध टूट गया और बड़ी देर तक वे न जाने किन किन सैकड़ों स्मृतियों के कारण अपार व्याकुलता का अनुभव करते हुए सिसिक सिसिक कर रोने लगीं। अजीत उनके कलेजे का टुकड़े था, प्यार का पुतला था। उसका पक्ष लेकर वे बाबूसाहब से कब नहीं लड़ी थीं? लेकिन आज पहली बार उनके हृदय में अपनी आँखों के तारे के प्रति भी क्रोध उत्पन्न हो गया और यह इच्छा हुई कि कहीं वह मिलता तो आज उसे जी भर के कोसतीं, आँखों में असीम क्रोध, घृणा और तिरस्कार भर के फटकारतीं। और, यह क्रोध उदित हो गया सो भी अच्छा ही हुआ, नहीं तो बाबूसाहब के अवसान के साथ साथ वे अपने जीवन में ऐसी शून्यता का अनुभव कर रही थी कि उनकी चिता में उनका कूद पड़ना एक निश्चित सम्भावना थी। क्योंकि क्रोध के कारण पति-संगिनी बनने के पहले

उनके श्री-चरणों में अजीत की समुचित शास्ति का उपहार समर्पित करना उन्हें आवश्यक समझ पड़ रहा था। इसी अनुभूति के अवलम्बन से लक्ष्मी देवी ने दाह-संस्कार-सम्बन्धी शेष क्रियाएँ बहुत ही धैर्य्य के साथ सम्पादित कीं।

[३६]

उस दिन अजीत बाबू एक झोंक में स्टेशन पर पहुँच गये। इस समय उनकी दशा एक भँगेड़ी की सी थी। पिता की बीमारी की उन्हें कोई चिन्ता न थी, उन्हें विश्वास था कि वे अच्छे हो जायँगे। सोचते थे—दादा की यह बीमारी क्या कोई नई बात है? दमा का उभड़ना तो उनका ऐसा रोग है जिसके हम सभी लोग आदी हो गये हैं! रहा ज्वर, सो वह भी घर में किसी न किसी पर आक्रमण करता ही रहता है! इन सब साधारण कारणों से कोई महत्त्वपूर्ण कामों को रोकता है!

रेलगाड़ी में बैठ जाने पर अजीत बाबू मन ही मन उस दृश्य की कल्पना करने लगे, जब कमलाशंकर उनके सामने निरुत्तर हो जायँगे। सोचते थे, मैं उन्हें उनकी प्रतिज्ञा का स्मरण कराऊँगा, उनके साहसपूर्ण आश्वासनों को जो उन्होंने मुझे दिये थे, एक एक करके अक्षर अक्षर सुना दूँगा। तब यदि उनमें भले आदमीपन का थोड़ा भी अंश वर्तमान होगा तो हया और शरम से वे धरती में धँस जायँगे।

संध्या को गाड़ी आजमगढ़ के स्टेशन पर पहुँची। किराये की एक गाड़ी में बैठ कर वह कमलाशंकर के घर गये। इस समय उनके हृदय में कितना उत्साह, कितनी उमंग थी। परन्तु जब नौकरों ने कहा—बाबू जी तो इलाकों में चले गये हैं, तब वह स्तम्भित, रह गये। इस आघात को सहन कर लेने के बाद उन्होंने फिर प्रश्न किया—"श्यामलाल नाम के एक व्यक्ति

यहाँ कल इलाहाबाद से आये हैं। क्या वे भी वहीं चलेगये हैं ? नौकरों ने उत्तर दिया—"नहीं, बाबू जी तो परसों के हो गये हैं जिनको आप कह रहे हैं वे तो नदी की ओर नहाने गये हुए हैं। अब आते होंगे।"

एक नौकर ने पूछा—" मालकिन को खबर पहुँचा दूं क्या ?"

अजीत ने क्षीण स्वर में कहा—"हां, कह दो इलाहाबाद से अजीत बाबू आये हैं।"

कमलाशंकर की मां अन्नपूर्णा देवी बड़ी नीतिकुशला स्त्री थीं। श्यामलाल के आने ही पर वे ताड़ गयी थीं कि दाल में कुछ काला अवश्य है; किन्तु अजीत के आने पर तो उन्हें तनिक भी संदेह नहीं रह गया। उन्होंने उनको बड़े प्रेम से भीतर बुलवाया और जल-पान आदि के अनन्तर उनके लिए भोजन का प्रबन्ध शुरू किया। इन कामों के साथ साथ वे प्रयाग की कुशल-वार्त्ता भी पूछती जाती थीं। बाबूसाहब, लक्ष्मी, प्रतिभा, पद्मा, शान्ता, मिस घोष आदि सभी के विषय में उन्होंने पूछा। अजीत सिंह को इन प्रश्नों का उत्तर देना बेगार से कम कष्ट-प्रद नहीं जान पड़ रहा था। किसी का संतोषजनक, किसी का साधारण और किसी का कामचलाऊ उत्तर देकर उन्होंने उतावली के साथ पूछा—"कमलाशंकर कहां हैं ?"

अन्नपूर्णा देवी ने उत्तर दिया—"वह तो इलाके के एक गांव में चला गया है। उससे भेंट करने में एक बहुत बड़ी कठिनाई यह है कि जब तक तुम एक गाँव में पहुँचोगे तब तक वह दूसरे गाँव में चला जा सकता है। यही कारण है जो आज बाबू श्यामलाल को मैंने नहीं जाने दिया। एक आदमी को दौड़ा दिया है। यदि दोपहर को जोरों से पानी न बरस जाता

तो वह अब तक जरूर आ जाता। क्या प्रयाग में भी पानी बरसा है ?"

अजीतसिंह ने चिन्तित स्वरों में कहा—"अम्मा, मैं पिताजी को बीमारी की अवस्था में छोड़ कर चला आया हूँ। मुझे बहुत जल्द चला जाना चाहिए और कमलाशङ्कर के मिलने में जो एक एक मिनट की देर हो रही है वह भी मुझे खल रही है।"

अ०—"बाबूसाहब की तबियत क्या ज्यादे गड़बड़ छोड़ कर आये हो ?"

अ०—"ज्यादे नहीं साधारण ही है, परन्तु आंखों से देख नहीं पा रहा हूं तो जी तो टँगा है।"

अन्नपूर्णादेवी ने मुसकरा कर कहा—"जान पड़ता है कि पिता पुत्र की आज कल खूब घुँट रही है; दोनों में मेल हो गया है।"

अ०—"अम्मा मेल की बात नहीं, बीमारी में मुझे भी सेवा-सुश्रूषा करने के लिए घर पर पहुँचना चाहिए न। क्या जाने कब क्या हो जाय।"

अन्नपूर्णा देवी ने थोड़ी देर तक गम्भीर विचार किया और फिर कहा—"नौकर की दो घण्टे और प्रतीक्षा कर लेती हूं। इसके बाद कोई न कोई प्रबन्ध करूँगी।"

स्नान करके आने पर जब श्यामलाल ने अजीत बाबू को देखा तो कहा—"अरे यह तुमने क्यों कष्ट किया? मैं तो सब व्यवस्था यों ही ठीक कर रहा हूं।"

अजीत ने रुखाई के साथ कहा—"तुम्हारी कोई व्यवस्था देख तो नहीं रहा हूं। मुझे तो निराशा हो ही रही है। ऐसा जान पड़ता है कि मेरे मुँह में कालिख लग कर रहेगा। हरिहर सुकुल ने तो सब मामला चौपट ही किया था! तुमसे भी

इतना न हुआ कि जल्दी कमलाशङ्कर से भेंट कर लेते । कल के आये हुए हाथ पर हाथ धरे बैठे हो । मजे में टोंस में स्नान कर रहे हो, खा-पीकर करवटें बदल रहे हो ।"

श्यामलाल वाक्चातुरी द्वारा अपनी लज्जा का निवारण करता हुआ बोला—"नहीं, अजीत बाबू, आपको वास्तविक स्थिति नहीं मालूम है । कमल बाबू की माँ हम लोगों से बहुत चौकन्नी हो गयी हैं । मन ही मन वे पसन्द करती हैं कि कमल बाबू से हम लोगों की भेंट न हो । इसीलिए वे मेरे मार्ग में बाधाएं डाल रही हैं । सच बात यह है कि कमल बाबू के पास यदि ये हमें पहुँचाना चाहें तो इनके लिए कोई कठिन बात नहीं, लेकिन इनके ऐसा न करने का कारण वही है जो मैं आपको बता रहा हूं । इस अवस्था में इनसे विदा होकर चलिए, कमल बाबू से भेंट करने का हम लोग स्वतंत्र उद्योग करें ।"

अ०—"क्या आजमगढ़ की गलियों में घूमें या धान की खूँटियों से भरे हुए खेतों में इधर-उधर चक्कर काटें ? तुम्हारे प्रस्तावित स्वतंत्र उद्योग का यही अर्थ होगा क्या ?"

श्याम०—"नहीं, कमल बाबू के एक मित्र से मुझे उनकी वर्तमान स्थिति का पूरा पता लग गया है । यदि उनकी माँ न भी पता देंगी तो भी हमारा काम हो सकेगा ।"

अ०—"तो विदा होने में क्या लगता है ? मैं जाकर कह आता हूं कि हम लोग जा रहे हैं ।"

यह कह कर अजीत बाबू घर के भीतर चले गये और अन्नपूर्णा देवी से बोले—"माँ, हम लोग जाते हैं, जिस ग्राम में कमल बाबू गये हैं वहाँ का पता दो ।"

अन्नपूर्णा देवी ने थोड़ी देर चुप रह कर कहा—"तुम्हारे

कमलाशंकर ने अजीत का बड़ा स्वागत-सत्कार किया। जलपान के बाद बढ़िया हवादार कमरे में गुलगुल बिस्तरे स्प्रिंगदार पलँग पर लगा दिये गये; गाँव के ठकुराने से अच्छे से अच्छे गानेवाले बुलाये गये; गाने बजाने का समा बँध गया। आसमान में बादल घिरे हुए थे, रिम-झिम पानी बरस रहा था, गांव के बड़े बड़े उस्तादों ने अपने अपने जौहर दिखाने शुरू किये। सभी का यह खयाल था कि गाने-बजाने का उद्देश्य प्रयाग से आये हुए महाशयों को रिझाना है, साथ ही किसी किसी के द्वारा यह भी विदित हो गया था कि अजीत बाबू बहुत बड़े ताल्लुकेदार के लड़के हैं। इस कारण गानेवाले उन्हीं की प्रशंसा के लिए विशेष उत्सुक होते और बारम्बार उन्हीं की ओर देखते थे। उधर अजीत के मन की दशा और ही थी। वह मन ही मन कमलाशंकर को कोस रहे थे और इस गान- के शीघ्रातिशीघ्र समाप्त होने के लिए ऊब-ऊब कर साँस ले रहे थे। उनकी ओर से मौनावलम्बन और उदासी ही देखकर गानेवाले हतोत्साह हो जाते थे और सोचते थे कि बाबू जी बड़ी सूखी तबियत के आदमी हैं। एकाएक अजीत बाबू श्याम- लाल को पास आने का इशारा करके दूसरे कमरे में चले गये। श्यामलाल के आने पर उन्होंने कहा—"देखते हो यह तमाशा। मेरा तो यहां दम फूल रहा है, एक एक मिनट युग की तरह बोत रहा है और इनको गाना-बजाना सूझा है। कमलाशंकर को जरा बुलाकर यहीं ले आओ।"

अजीत के उठते ही गानेवाले एक दम से हतोत्साह हो गये। जब श्यामलाल कमलाशंकर के पास जाकर उसके कान में कुछ कहने लगा तब तो तबला सारंगी आदि का स्वर भी जैसे सशंक हो गया। कमलाशंकर के जाने पर भी गाना

होता तो रहा लेकिन अब ऐसा जान पड़ता था जैसे वह अपना ही मर्सिया पढ़ रहा हो।

आशंका से उद्विग्न-चित्त होकर कमलाशंकर अजीत के पास पहुँचे और आँखों से आँखें मिलने के साहस-संग्रह में असमर्थ होकर धीमे स्वर में बोले—"कहिए, क्या आज्ञा है ?"

अजीतसिंह ने कहा—"कमला बाबू ! आप तो अपनी सारी प्रतिज्ञा ही भूल गये। उसी का स्मरण दिलाने के लिए रोग-पीड़ित पिता को घर में छोड़कर आपको खोजता रहा हूं। आश्चर्य-है, आप इस विषय में इतने उदासीन हो गये हैं कि मैं किस कारण इस समय यहां आ सकता हूं, इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते।"

अजीत के स्वर में दृढ़ता और व्यथा थी।

कमलाशंकर ने लज्जा-भाव के साथ कहा—"अभी गाना समाप्त होने के बाद तो ये बातें होतीं ही। अब तो आप यहां आ ही गये हैं, कितनी भी जल्दी हो, रात आप को रहना ही है, क्योंकि कल दस बजे दिन के पहले तो आप को गाड़ी मिलेगी नहीं। यही सोचकर मैंने आप के स्वागत में यह उत्सव कर दिया था। सो अब आप से आप बन्द हो जायगा। भोजन कर लेने के बाद बातचीत होगी।"

अ०—"भोजन जाय भाड़ में, जिस काम के लिए मैं आया हूँ पहले वह हल होना चाहिए। काम भी तो बहुत साधारण है, कल आप हम लोगों के साथ प्रयाग चले चलने का वचन दीजिए।

क०—"मैंने आप के पास एक पत्र भेजा था—"

अजीत ने बात काटकर कहा—"हां, हां, उसी पत्र का

परिणाम है कि मैं इस समय यहां उपस्थित हूं। अब मेरी यहां की उपस्थिति का परिणाम होना चाहिए।' '

क०—"आपको सारी कठिनाइयाँ बतानी हैं।"

अ०—"कठिनाइयों की चर्चा सुनने के लिए मैं तैयार नहीं हूं। आपने मुझसे जो प्रतिज्ञा की है, उसका आप स्मरण कीजिए। मर्द की बात एक होती है! थूक करके उसे फिर चाट लेना कायरों और नपुंसकों का काम है। मैं आप से भीख माँगने नहीं आया हूँ। मैं परीक्षा करने आया हूँ कि आप में सच्चे ब्राह्मण का रक्त है या नहीं, आप में कुछ पुरुषत्व है या नहीं?"

अजीतसिंह का स्वर अब कुछ कुछ अपनी स्वाभाविक तेजी पकड़ रहा था। गान-मण्डली वालों तथा अन्य लोगों ने समझा कि दाल में कुछ काला है। तबले, मजीरे और सारंगी का स्वर बन्द हो गया, गाने वालों की जबान में ताले पड़ गये। एक चित्त होकर एक एक शब्द को सुनने के लिए सब ने कान लगा लिये।

कमलाशंकर ने सिर नीचा कर लिया।

अजीत ने उन्हें मौन देखकर फिर पूछा--"बोलिए, कमल बाबू, मेरे पास अधिक समय नहीं है। आप नहीं जानते कि इस समय मेरी स्थिति क्या है। मैं ज्वालामुखी पहाड़ के मुहड़े पर खड़ा हूं। मेरे साथ चले चलने के सिवा इस समय आप और कुछ कर नहीं सकते। कह दीजिए कि मैं सबेरे चलूँगा, मुझे आश्वासन हो जाय।"

कमलाशंकर ने दबी हुई जुबान में कहा—"अच्छा थोड़ा धैर्य्य रखिए। मैं बाहरी लोगों को हटा दूं जिससे बातें करने में सुविधा हो।"

इसके बाद कमलाशंकर ने जाकर उपस्थित मण्डली को विसर्जित कर दिया। सब लोग तरह तरह की बातें करते हुए चले गये।

कमलाशङ्कर के फिर आने पर अजीत ने कहा—"कमला बाबू? हां या नहीं, कुछ तो कह डालिए। मेरा चित्त तो स्थिर हो जाय।"

इस समय अजीत बाबू 'नहीं' सुनने के लिए तैयार हो गये थे; परन्तु फिर भी उनके हृदय में एक क्षीण आशा थी—क्या एम० ए० तक पढ़ा हुआ एक ब्राह्मण युवक इतना पतित भी हो सकता है? क्या वह इतना झूठा और बेईमान सिद्ध होकर भी खड़े खड़े बातें करता रह सकता है। इसी से वे बड़ी आशा लगाये उत्कण्ठित भाव और एकटक दृष्टि से कमलाशंकर के मुख की ओर देखते रहे।

अजीत की तीव्र दृष्टि को कमलाशंकर सहन नहीं कर सके। बगल की ओर देखते हुए उन्होंने कहा—"अजीत बाबू, मैं हर तरह से तैयार हूँ। परन्तु माता का समाधान आवश्यक है। मैं क्या करूँ, जब उन्होंने प्राणत्याग की धमकी दी तो मुझे विवश हो जाना पड़ा।"

अ०—"लेकिन आप के विवश होने तक की गुञ्जाइश तो नहीं रह गयी थी। आप तो एक स्त्री के लिए बात हार चुके थे। उसे पत्नी-रूप में ग्रहण करना तो आप का व्रत हो चुका था। विचार बदलने का फिर कहाँ स्थान था? और विचार बदलते समय आपने यह क्यों नहीं सोचा कि जिस कुमारी ने धोखे में पड़ कर आपको वरण कर लिया है उसकी क्या गति होगी? आपने यह क्यों नहीं सोचा कि यदि प्रतिभा के साथ विवाह कर लेने से मां को प्राण त्यागने का उचित कारण

प्राप्त हो सकता है तो एक प्रतिष्ठित कुल की प्रतिष्ठित और सुशीला बालिका के ऊपर अत्याचार करके उसके घर में पिता पुत्र के बीच कलह का भी सूत्रपात करने से किसी न किसी को प्राण-त्याग से भी अधिक कष्ट मिल सकता है। क्या इसी प्रकार कर्तव्य-पालन करने की आपने शिक्षा पायी है?"

कमलाशंकर चुपचाप पाषाणवत खड़े रहे।

अजीत ने फिर कहा—"और तुम्हारे पिता और मेरे पिता की मैत्री का, उसी मैत्री के परिणाम-स्वरूप एक कुटुम्बी की भांति मेरे गृह में तुम्हारी स्वतंत्रता-प्राप्ति का, उस स्वतंत्रता-प्राप्तिकी बदौलत मेरी प्यारी बहिन को, जिसे तुम्हें भी अपनी बहिन समझना चाहिए था, बहकाकर मिथ्या आशा के सुनहले हिंडोले में तुम्हारे झुलाने का क्या यही अन्तिम परिणाम होगा?"

अजीत क्रोध के आवेग में आ रहे थे। उनकी यह उत्तेजना कहां तक जाकर समाप्त होती, इसके सम्बन्ध में कुछ कहना व्यर्थ है, क्योंकि वे शान्ति के समय में देवता-समान और उग्र होने पर हिंसक जीव से भी अधिक भयंकर थे। परन्तु एक ही बात ने आज संभवतः प्रथम बार अचानक उनको शान्त कर डाला। वह थी प्रतिभा के अपयश को फैलाने से रोकने की इच्छा। उन्होंने श्यामलाल से कहा—"चलो अन्पूनर्णा देवी से विदा होकर इसी समय आजमगढ़ के स्टेशन की ओर चलें। यह कह कर उन्होंने दो तीन कदम आगे बढ़ाये। श्याम-लाल भी उनके पीछे एक कदम चल चुके थे। परन्तु अजीत ने एकाएक पीछे की ओर मुड़कर उससे कहा—"श्यामलाल, अब इनकी माता से ही मिलने से क्या लाभ? इनकी सज्जनता और साहस का पूरा परिचय तो मिल गया। अब ऐसे नीच और पतित मनुष्य के यहां पानी पीना भी महा पाप है।"

अन्नपूर्णा देवी इस समय स्वयं आ गयीं। अजीत के अन्तिम शब्द उनके कान में पड़ गये। वे समझ गयीं कि अजीत असन्तुष्ट हो गया है। इधर श्यामलाल जो एकाध चीजें इधर उधर रखी थीं उन्हें लेकर चलने के लिए तैयार हो गया। किसी से कुछ कहे-सुने बिना ही अजीतसिंह आगे और श्यामलाल पीछे चलने लगा। अन्नपूर्णा देवी ने बहुत रोकना चाहा, और जब शब्दों से वे सफल न हो सकीं तब नौकरों को उन्हें अनुनय-विनय पूर्वक रोकने का संकेत किया। दो-तीन नौकरों को अजीत को मनाने के लिए जाना पड़ा। किन्तु, अब अजीत को रोकना असम्भव था। उनकी चाल के बराबर रहने के लिए दौड़ते हुए नौकर उनसे गिड़-गिड़ाते थे, "सरकार चले चलिए, भोजन तो कर लीजिए। किन्तु अजीत ने एक न मानी और अन्त में तीखे स्वर में कहा—"चले जाओ नहीं तो मैं एक एक को पीट दूँगा।" श्यामलाल ने भी डाटकर कहा—"अब कुशल इसी में है कि हम लोगों को छेड़ो मत।" हतोत्साह होकर वे बेचारे चले गये।

इस समय अजीत की अवस्था विचित्र थी। जिस आधार पर वे पिता से कलह करते आये थे और द्वेषमयी पत्नी को फटकार देते थे वह इतना निर्बल निकला कि तिनके का बोझ भी सहन नहीं कर सका। तनिक सा दबाव पड़ते ही रुई की तरह दब गया। आवेग के समय हमें यह पता नहीं लगता कि हम संकट के किस परिणाम पर आ गये हैं, जब तक नौकर चले नहीं गये थे तब तक अजीत का चित्त क्रोध से इतना अधिक व्याकुल था कि तनिक सी देर में कितना बड़ा अनर्थ हो गया, इसकी ओर उनका ध्यान ही नहीं गया था। परन्तु, कुछ समय बीत जाने पर जब मस्तिष्क फिर अपनी

साधारण स्थिति में आ गया तब वे इस घटना के समस्त परिणामों पर विचार करने लगे। इस समय उन्हें कमलाशंकर बाबू रामलखनसिंह की अपेक्षा भी पतित, बेईमान और धूर्त प्रतीत होने लगे और पिता के कथन में उन्हें कुछ कुछ सच्चाई प्रतीत होने लगी। अब उन्होंने निश्चय कर लिया कि मैं बाबू रामलखन के साथ प्रतिभा के विवाह का विरोध नहीं करूँगा। प्रतिभा की गलती यह थी कि उसने ऐसे कपटी मनुष्य से प्रेम किया और मेरी गलती यह थी कि इस झूठे आदमी पर भरोसा करके बूढ़े पिता को व्यर्थ ही कष्ट दिया। अब इस अपराध का प्रायश्चित्त यही है कि प्रतिभा और मैं—दोनों चुपचाप बाबू जी की इच्छा के अनुसार विवाह होने दें।

इस निश्चय के अतिरिक्त एक विचित्र भावना का उनके हृदय में संचार हो रहा था। अजीत ने बहुत समय पहले से मूर्त्ति पूजा को ठुकरा दिया था और शङ्कर आदि देवाताओं के प्रति अपना अविश्वास भी प्रायः घोषित कर दिया था। परन्तु आज वेही अजीत वेदना से विवश हो कर परम आर्त्त अवस्था में आर्त्तिहर देवदेव महादेव से मन ही मन कर जोड़ कर अत्यन्त विनीत भाव से निवेदन कर रहे थे कि मेरे पिताजी सकुशल हों, जैसी दशा में मैं उन्हें छोड़ कर आया हूं उससे वे सुधरे हुए हों, और कम से कम उससे अधिक बिगड़ी अवस्था में न हों, जिससे मेरी स्थिति बहुत अधिक लज्जाजनक न हो जाय। इस समय उनकी दशा उस पक्षी की सी थी जो चारे की सुविधा के लिए अपना घोँसला अरक्षित छोड़ कर दूसरे घोँसले की खोज में चलता है, किन्तु उसमें असफल होकर लौटता और पूर्व घोँसले के सुरक्षित स्थिति में होने के लिए अधीर होकर किसी अदृष्ट किन्तु सर्वव्यापी शक्ति से मन ही मन प्रार्थना करता है।

श्यामलाल के चित्त में भी उधेड़-बुन लगी हुई थी। आज जो कुछ हुआ था उससे उसको बहुत संतोष था। जैसे ही अजीत बाबू चिन्ता-मग्न थे वैसे ही वह संकल्प-विकल्प में लग्न था। दोनों की इस अवस्था में अभी बहुत समय तक परिवर्तन न हुआ होता, किन्तु देहात के पगडंडी के रास्ते और बरसात की अँधेरी रात में कब तक कष्ट से छुटकारा हो सकता था। कहीं ऊँची और कहीं नीची भूमि के उतार-चढ़ाव और गड्ढों को लाँघने की आवश्यकता ने दोनों के अपने अपने विषय पर एकाग्र चित्त की समाधि को भंग कर दिया। अजीत ने कहा—"श्यामलाल क्या विचार है ? चले चलें या रात को कहीं रुक जायं ? बात यह है कि इस प्रकार अनिश्चित पथ पर चलने से हम लोग न जाने कहां पहुँचेंगे। इस समय अधिक अच्छा यही होगा कि कहीं स्थान मिले तो रात भर ठहर जायं। बड़े तड़के चल देंगे।" श्यामलाल ने उत्तर दिया—"मैं भी यही कहने वाला था। चलो पास के गांव में चलें और ग्राम-वासियों से सोने के लिए जगह की प्रार्थना करें।"

अ०—"इतनी सी बात के लिए मैं किसी से प्रार्थना तो नहीं कर सकता ! क्या किसी पेड़ के नीचे रहना पड़ जाय तो तुम उस कष्ट को सहन नहीं कर सकते ? चलो इसी बर-गद के नीचे आज रात काटें। तुम तो दारोगागीरी के उम्मेद-वार हो, कुछ दुःख सहना भी सीखो। दारोगागीरी फूलों की सेज नहीं है।"

श्याम०—"चलो, मैं कब पिछड़ता हूँ। देश-भक्तों के साथ आरामतलबी थोड़े ही निभ सकती है।"

एक ग्रामवासी उधर से आ रहा था। उसने यह बातचीत सुनी तो समझ गया कि ये अमीर आदमी हैं, संयोग से कष्ट

में पड़ गये हैं। वह मुग्धभाव से बोला—"हुजूर, आप बड़े आदमी जान पड़ते हैं। आप तकलीफ़ न सहें, मेरे यहां चलें।"

इस अनुरोध को अजीत ने स्वीकार कर लिया।

[४०]

एक घण्टा रात रहे अजीत और श्यामलाल ने अपने प्रेमी ग्रामवासी से आजमगढ़ स्टेशन का रास्ता पूछकर प्रस्थान कर दिया। साढ़े सात बजते बजते वे स्टेशन पर पहुँच गये। साढ़े नौ बजे इलाहाबाद की गाड़ी आयी। उसमें से राधिकाकान्त को निकलते देख कर अजीत दौड़कर उनसे मिला और प्रयाग की कुशलवार्त्ता पूछने लगा। राधिकाकान्त ने कहा—"मैं तो आप ही की खोज में आया हूँ! अच्छा हुआ जो यहीं मिल गये। दस बजे की गाड़ी से लौट चलेंगे।"

अजीत ने अधीर होकर पूछा—"बाबू जी की तबियत कैसी है? मेरे विषय में कुछ कहते थे?"

रा०—"कल सबेरे मैं आपके घर गया था। उस समय उन की अवस्था विशेष चिन्त्य तो नहीं थी। मैं सात बजे सबेरे वाली गाड़ी से नहीं आ सका, नहीं तो कल शाम ही को आप से भेंट हो जाती और इस समय हम सब प्रयाग में होते।"

अ०—"नहीं, आप से और हम लोगों से फिर शायद भेंट ही न होती।"

रा०—"क्यों?"

अ०—"आप को सब कारण बतलाऊँगा। जलपान आदि करने के बाद बातचीत की जायगी।"

इस बातचीत के बाद तीनों एक खाली डब्बे में बैठ गये। अजीत और राधिकाकान्त ने आमने-सामने बिस्तर लगा लिये। श्यामलाल कुछ दूरी पर लेट रहा।

गाड़ी सीटी देकर चलने लगी। राधिकाकान्त और अजीत की बातें होने लगीं।

राधिकाकान्त ने पूछा—"अजीत बाबू, क्या आप कल आजमगढ़ में नहीं थे, जो आप से भेंट न होती।"

अ०—"कल हम लोग आजमगढ़ शहर में नहीं थे। आजमगढ़ जिले में थे।"

रा०—"किस प्रसङ्ग से ?"

अ०—"जिस प्रसङ्ग से यहाँ आजमगढ़ शहर में आये थे।"

रा०—"जान पड़ता है, कमलाशङ्कर से शहर में भेंट नहीं हुई, वे गाँव पर गये होंगे और मेरा अनुमान है कि उन्हीं से मिलने आप आये होंगे।"

अ०—"आपका अनुमान बिलकुल सत्य है।"

रा०—"कहिए, कुछ सफलता भी हुई ? नरसों तो उनके यहाँ काशी के पं० सदाशिव मिश्र की कन्या का तिलक चढ़ेगा। देखिए न, 'स्वाधीन जीवन' में छपा है।"

यह कह कर राधिकाकान्त ने अखबार सूटकेस में से निकाल कर अजीत के हाथ में दे दिया।

पढ़ने के बाद अजीत ने कहा—"मास्टर साहब, मैंने बड़ा भारी धोखा खाया।"

रा०—"इसमें क्या सन्देह ? कमलाशङ्कर ने आपका गला काट लिया। मेरी समझ में नहीं आता कि कोई अपने स्वार्थ के सामने दूसरों की क्षति की परवा क्यों नहीं करता ? मेरे पास उन्होंने जो पत्र भेजा है, उसे मैं आपको दिखाने के लिए लेता आया हूँ।"

यह कह कर राधिकाकान्त ने सूट केस में से पत्र को

निकाला। उसे खोल कर अजीत पढ़ने लगा। उसमें इस प्रकार लिखा था--

आजमगढ़

श्रद्धेय राधिका बाबू, १८।६।९७

नमस्ते।

मैं सकुशल आजमगढ़ पहुँच गया। मार्ग में विन्ध्यदेवी और बाबा विश्वनाथ के मन्दिर का दर्शन किया। काशी में तो कई दिन ठहर जाना पड़ा। पं० हरिहर सुकुल ने ऐसी चाल चली कि उनसे मुझे हार माननी ही पड़ी। पं० सदाशिव मिश्र की लड़की चंचला को देख कर तो मेरी मां मुग्ध हो गयीं और उसके साथ विवाह स्वीकार करने के सम्बन्ध में मेरे साथ अटल सत्याग्रह कर बैठीं। सुकुल जी ने मेरे और प्रतिभा के प्रेम की चर्चा भी इस प्रकार की कि मां घबरा गयी हैं। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में प्रतिभा अब मेरे लिए आकाश-कुसुमवत् अप्राप्य है! आप जरा अजीत बाबू से भेंट करके मेरी कठिनाइयों को समझाइएगा। मैंने उन्हें भी पत्र लिख दिया है।

आपका प्रेमी

कमलाशंकर

अजीत ने पत्र पढ़ कर वापिस कर दिया और थोड़ी देर तक वे गम्भीर विचार-सागर में डूबे रहे।

राधिकाकान्त ने मौन-भंग करते हुए कहा—"अब तो कई दिनों से मैं मिस घोष को पढ़ाने नहीं जाता।"

अजीत ने बातचीत के इस नवीन विषय से उल्लसित होकर कहा—"क्यों, क्यों, आप पर तो वह बड़ी भक्ति रखती है।"

रा०-"भक्ति और श्रद्धा कहीं कुछ नहीं, वह केवल यह

चाहती है कि कोई मेरे चक्कर में पड़ा रहे। वह पढ़ती-पढ़ाती भी तो कुछ नहीं। जो समय गणित के प्रश्नों को हल करने में लगाना चाहिए उसे वह प्रेम की समस्या समझने में व्यतीत कर देती थी। ऐसे अटपटे प्रश्न पूछ बैठती थी कि मैं थोड़ी देर के लिए उसकी स्वच्छन्दता पर आश्चर्य करने लग जाता था। और फिर भी उसका यह कहना है कि मैं किसी हिन्दू से ही विवाह करूँगी। शायद आप को वह किसी समय बहुत चाहती थी और यदि आपने विवाह न किया होता तो वह आपकी पत्नी होती।"

अजीत ने मुसकराकर कहा—"मास्टर साहब वह स्वतंत्र रमणी किसे चाहती है और किसे नहीं चाहती, यह तो मैं नहीं कह सकता, लेकिन एक समय मेरे चित्त में यह बात आयी अवश्य थी कि आप का विवाह उसके साथ हो जाय और इसके लिए वह आर्य्यसमाज के अनुसार शुद्ध करके हिन्दू समाज में फिर गृहीत कर ली जाय। लेकिन आपने तो जल्दी कर दी, पढ़ाना ही छोड़ दिया।"

राधिकाकान्त बड़े जोर से हँसे, फिर बोले—"यदि आप का यह विचार कार्य्य-रूप में परिणत हो जाता तो आपको तमाशा तो खूब देखने को मिलता। क्योंकि मैं गरीब आदमी अपने परिवारवालों पर अत्याचार करके सारी आमदनी मिसेज़ राधिकाकान्त के हवाले कर देता और वे ठाठ—बाट के साथ साइकिल पर अठिलाती हुई अनेक रसिकों का मनोरंजन करती फिरतीं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मैंने उसे वेदान्त को शौकीन समझकर ही पढ़ाना शुरू किया था। मैं सोचता था कि यदि यह सचमुच सहृदय स्त्री है तो मुझे इसके सम्पर्क से कुछ सुख मिलेगा। यह भी सच है कि कुछ दिनों तक मैं उसके

चक्कर में पड़ा रहा। सच पूछिए तो अभी चार-छः दिनों पहले भी मेरा भ्रम समाप्त नहीं हुआ था।"

अजीत ने फिर मुसकराते हुए कहा—खैर मिस घोष में बुराइयां भले ही हों, परन्तु उसने एक अच्छा काम यह तो किया कि आप को सूट पहनना सिखला दिया, सिनेमा आदि का अनुराग आपके हृदय में अंकुरित कर दिया और अनेक अङ्गरेजो महिलाओं से आप का परिचय करा दिया।"

राधिकाकान्त ने अजीत के इस व्यंग को ताड़ते हुए उत्तर दिया—"अजीत बाबू, बहुत सी बातों में मेरा आप से मतभेद है, परन्तु इस मतभेद के बने रहने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि दो में से एक झूठा अवश्य हो। सच बात यह है कि दो सच्चे आदमियों में ही मतभेद होता है, झूठे और बेईमान लोग तो बात-बात में एक दूसरे की हां में हां मिलाते हैं। वेदान्ती होने के कारण मैं किसी विपक्षी का अस्तित्व नहीं मानता। सभी प्रेमी हैं, सभी मित्र हैं, भेद-भाव मन की सृष्टि है, उसमें पूर्ण सत्य नहीं है। केवल मर्य्यादा के भेद से अन्तर समझ पड़ता है। मैं सचमुच ईसाई और अंग्रेज महिलाओं से परिचय प्राप्त करना चाहता था। लो, मिसघोष की बदौलत उसमें जितना सुख है उसे भी अनुभव कर लिया और जितनी अपूर्णता है उसे भी जान ली। भौंरों के लिए तो एक चम्पा का फूल होता है जिसके पास वह नहीं जाते, परन्तु मेरे लिए इस संसार की कोई भी वस्तु अस्पृश्य नहीं है।"

अ०—"मिस घोष से आपको अरुचि क्यों हुई? क्या आप उससे साधारण मित्रता भी नहीं निभाये चल सकते थे?"

रा०—"यों तो मैं किसी से द्वेष नहीं रख सकता और यदि क्षणिक उत्तेजना के वश में होकर द्वेषयुक्त हो भी जाता हूँ

तो भी उसे अधिक काल तक स्थायी नहीं बना सकता। परन्तु, एक बात ऐसी हो गयी जिससे उसका सम्पूर्ण चरित्र ही मेरो आँखों के सामने चित्रवत स्पष्ट हो गया और इस चित्र में न वह तड़क-भड़क थी, न वह आन-बान थो, और न वह हावभाव था जिसके कारण पहले मिस घोष इतनी आकर्षक प्रतीत होतो थी। मुझे ऐसा मालूम होने लगा जैसे मिस घोष का सारा सौन्दर्य्य नाटक के पात्रों के रूप की तरह नकली था।"

राधिकाकान्त को चुप होते देखकर अजीत ने कहा—"और वह बात क्या थी जिसने ऐसा महत्वपूर्ण परिणाम उत्पन्न किया?"

रा०—"मैं बता रहा हूँ। मेरा खयाल था कि वह एक व्यक्ति को बहुत अधिक आदर और प्रेम की दृष्टि से देखती है। उसकी बातचीत, मुखमुद्रा आदि से यह निष्कर्ष निकालना ही पड़ता था। किन्तु बाद को मैंने देखा कि उसी प्रेमपात्र को संकट में डालनेवाला काम करने में वह प्रमुख भाग ले रही है। यह देख कर मैं स्तम्भित रह गया। मैंने सोचा, जिस समय यह रमणी किसी से हँस हँसकर बातें करने लगती है उस समय उस व्यक्ति को जान पड़ता है कि बस इसके हृदय का सारा प्यार मेरे लिए ही है। किन्तु उस व्यक्ति की आँख की ओट में उसके विरुद्ध जो चरित्र इस नायिका के हो सकते हैं उन्हें वह देखे तो उसका माथा ठनके। वह किसी को मित्र नहीं समझती।"

अजीत का चेहरा गम्भीर हो गया। उन्होंने कहा—"मास्टर साहब! किसी बात को छिपाइए मत। यदि आप किसी की सहायता करना चाहते हैं तो उसे परिस्थिति समझने का

अवसर दीजिए। मैं यह जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ कि मिस घोष की अकृपा का पात्र मैं तो नहीं हूँ?"

रा०—"निस्सन्देह मैं एक बार कह भी तो चुका हूँ कि मिस घोष आप को चाहती थी और मेरा खयाल है कि उसका प्रेम वासनामूलक ही रहा होगा। उसकी वर्तमान प्रवृत्तियों को देख कर मैं चकित, विस्मित और विरक्त हुए बिना नहीं रह सका!"

"क्या मैं जान सकता हूँ कि अब वह मुझ पर कौन सी विपत्ति लाना चाहती है?"—अजीत ने घबराहट के स्वर में पूछा।

राधिकाकान्त ने माधुर्य्यपूर्ण व्यंग के ढंग पर कहा—"मुझे जान पड़ता है, अब वह आप से सर्वथा निराश है। वह समझती है कि अजीत बाबू मेरे चंगुल में नहीं आवेंगे। शायद आपने कभी उससे प्रेम का विषय भी तो नहीं छेड़ा; कभी उसके रूप-लावण्य की प्रशंसा भी नहीं की। मिलते-जुलते भी कम रहे क्या यह किसी नायिका के प्रति साधारण अपराध है? अब अपना संगीन अपराध भी सुन लीजिए।

मिस्टर घोष की आकस्मिक मृत्यु से मिस घोष की बड़ी हानि हुई है। वह आशा करती थी कि वसीयतनामे में मिस्टर घोष उसे कुछ देंगे। वे देते या न देते, किन्तु अब तो उसे यह कहने को होगया कि इस हत्या के कारण मैं वञ्चित हो गयी। उसका यह मत है कि अजीत बाबू ने ही बशीर अहमद को हत्या के लिए उभाड़ा। किसी समय जितना ही अधिक उसके हृदय में आप के प्रति प्यार था, अब उतनी ही अधिक घृणा है। इस समय वह यह प्रयत्न कर रही है कि बशीर अहमद सरकारी गवाह बना लिया जाय और वही आप को

फँसा दे। उसकी इस नीति में कितना गहरा स्वार्थ है, वह कितनी चालाक स्त्री है, इसका अनुमान आप तब कर सकेंगे जब इस उद्योग के समस्त परिणामों पर आप दृष्टिपात करेंगे। मिस घोष एक पत्थर से दो शिकार करना चाहती है—वह अपने कल्पित स्वार्थहन्ता से बदला लेने के साथ-साथ मिस्टर मार्क को प्रसन्न करने की चेष्टा भी कर रही है।"

अजीतसिंह बड़े ध्यान से ये सारी बातें सुन रहे थे। उन्हें यह सब किसी औपन्यासिक रचना से कम नहीं जान पड़ा। राधिकाकान्त के शान्त हो जाने पर उन्होंने कहा-"क्या यह सत्य है? क्या मिस घोष मेरे ऊपर इतना अधिक रुष्ठ हैं? मिस घोष को मैं ऐसी नहीं समझता था। यही नहीं, उसके कहने का मेरे ऊपर बहुत बड़ा प्रभाव था। अपनी बहिन का कमलाशंकर पर अनुराग देख कर मिस घोष के कहने से ही मैंने उन दोनों के विवाह पर इतना जोर दिया था। अब मेरी समझ में यह नहीं आता कि यह सब क्या और क्यों हो रहा है? कमलाशंकर ने मुझे धोखा दिया, मिस घोष धोखा देने की तैयारी कर रही है—इसका क्या अर्थ है? मित्र और हितैषी समझ कर जिनका विश्वास किया वे एक एक करके मेरे साथ वञ्चना कर रहे हैं। रहा वशीर अहमद, सो उसका ही कौन विश्वास करूं? जब वे लोग जो पग-पग पर अपने सुशिक्षित और सभ्य होने की डींग हाँका करते हैं, जरा सी आँच में पिघल जाते हैं तब बेपढ़ा, गरीब बशीर अहमद अगर दबाव फुसलाव में पड़कर सरकारी गवाह बने और मेरे सर्वनाश पर उतारू हो जाय तो आश्चर्य ही क्या है? राधिका बाबू, संसार बड़ा जटिल जान पड़ता है, यह सब देख कर अब सभी पर अश्रद्धा हुई जाती है।"

राधिकाकान्त ने कहा—"नहीं, संसार में सभी एक से नहीं हैं। यहां भूठे, धोखेबाज़, बेईमान हैं, तो सच्चे, परोपकारी, और ईश्वर-भक्त भी हैं। अभी आपने अपने विश्वास-पात्र मित्रों से धोखा खाया है, अब एकाध बार ऐसे लोगों की भी परीक्षा कर लीजिए जिन्हें आप अपना विपत्ती समझते हैं।"

अ०—"उदाहरण के लिए?"

रा०—"उदाहरण के लिए? उदाहरण के लिए हरिहर सुकुल।"

अ०—"मास्टर साहब! आप को तो मैं मान सकता हूं, परन्तु सुकुल जी ने मेरी बड़ी क्षति की है, मुझे तो इस पाखण्डी ब्राह्मण को देख कर क्रोध आ जाता है।"

रा०—"परन्तु, आप यह नहीं जानते कि यह पाखण्डी ब्राह्मण आप के सम्बन्धी इन श्यामलाल की अपेक्षा कहीं अधिक आपका हितैषी है। इन महाशय से तो आप बहुत अधिक सावधान रहिए। ये आप को उलटे छुरे से मूँड़ते हैं और आप इनकी चालों को समझ नहीं पाते।"

अ०—"अभी इसका प्रमाण मुझे नहीं मिला।"

रा०—"आह छद्म वेश में रात्रि के समय इधर-उधर घूमिए तो आप को अपने मित्रों और शत्रुओं को पहचानने में सुविधा हो। अस्तु अब आपको मेरी यह निश्चित सलाह है कि प्रतिभा का विवाह बाबू रामलखनसिंह से होने दीजिए। मिस्टर मार्क और मिस घोष के प्रपञ्चों से भी आप को उस अवस्था में बहुत कुछ बचाव रहेगा।"

रा०—"मास्टर साहब, मैं इतना दीन नहीं हो सकता कि इस बचाव के लालच से उक्त विवाह में सहयोग करूँ। अपनी गलती के प्रायश्चित्त-स्वरूप ही मैंने यह निश्चय कर लिया है

कि अब इस सम्बन्ध में पिता जी को परेशान नहीं करूगा। यही नहीं, उनके पैरों पर पड़ कर रो रो कर मैं क्षमा मागूँगा।" इसी तरह बड़ी देर तक दोनों में बातें होती रहीं।

[४१]

राधिकाकान्त और अजीत बातों में ऐसे उलझे रहे कि उन्हें समय का बीतना समझ ही नहीं पड़ा। धीरे धीरे मऊ का स्टेशन आगया। अजीत ने श्यामलाल को जगाया और तीनों व्यक्ति प्रयाग जाने वाली गाड़ी में जा बैठे। यही गाड़ी सीधी प्रयाग पहुँचती थी, अतएव इसमें निश्चिन्तता के साथ बिस्तर लगाया जा सकता था। विशेष सुविधा की बात यह थी कि डब्बा छोटा और इञ्जन के पास होने के कारण उसमें दूसरे यात्री नहीं आते थे। श्यामलाल ने फिर खर्राटे लेने शुरू किये। राधिकाकान्त को भी रात को अच्छी नींद नहीं पड़ी थी, इसलिए उन्होंने भी बिस्तर लगाकर सोना शुरू किया। अजीत बाबू भी लेट गये, यद्यपि वर्तमान समस्याओं की उलझन तथा भविष्य की आशङ्का ने उन्हें किसी प्रकार नींद नहीं लेने दी। औंढ़ियार पहुँचने तक वह तरह तरह के संकल्प-विकल्प में डूबे रहे। वहाँ गाड़ी पौन घंटे तक ठहरी। सब ने पूड़ियां और मिठाइयां मोल लेकर खायीं। गाड़ी छूटते छूटते अखबार वाला दिखाई पड़ा। राधिकाकान्त और श्यामलाल को तो अपनी निद्रा पर पूरा भरोसा था। अतएव समय काटने के लिए उन्होंने 'स्वाधीन जीवन' की एक प्रति खरीद ली। इस पत्र का एक पृष्ठ खोलते ही जैसे उनको बिच्छू ने डंक मार दिया। अखबार पैर के पास गिर पड़ा। उन्होंने फिर साहस करके उसे उठा लिया और ध्यान से देखा। किन्तु आँखें कब तक धोखा दे सकती थीं? बाबू जगजीवन सिंह के स्वर्गवास का समाचार और उनके जीवन-कार्यों

का प्रशंसा-पूर्ण परिचय "स्वाधीन जीवन" में छपा था। अजीत का मस्तिष्क इस आघात को सहन नहीं कर सका। वह बेहोश होकर गिर पड़े। राधिकाकान्त और श्यामलाल इस समय गहरी निद्रा में निमग्न थे तथा रेलगाड़ी फक् फक् करती और लम्बे डग भरती हुई प्रयाग की ओर चली जा रही थी।

१५-२० मिनटों में अजीत सिंह होश में आये; परन्तु शीघ्र ही उन्हें अनुभव हो गया कि बेहोशी की हालत कहीं अधिक अच्छी थी। इस समय उन्हें ऐसा जान पड़ रहा था जैसे किसी ने उनके कलेजे को कुचल डाला हो या काट कर बाहर निकाल लिया हो। वे अपने आप से ही पूछते थे—क्या बँगले में बाबू जी की भव्य मूर्ति अब नहीं दिखलायी पड़ेगी? क्या उनकी बैठक अपने शानदार स्वामी को खोकर निर्जीव और उदास हो गयी होगी? आह! इस समय वे उनकी सारी डाट-फटकार को चूँ किये बिना सुनने और उनके चरणों पर गिर कर क्षमा की याचना करने को तैयार थे, यदि केवल वही बात, जो इस समय सर्व्वथा असम्भव थी, हो सकती, अर्थात बाबू साहब अपने रईसी ठाट में बँगले पर दिखायी देते। संसार का अब उन्हें जैसा अनुभव हो गया था, परोपकार करने की धुन में उन्होंने अपने को जिस वञ्चना का शिकार बनाया और सहृदय पिता पर जो अत्याचार कर डाला था उसने उनके सम्पूर्ण कट्टर-पन की तनी डोर को ढीली कर दिया। अब उन्हें अपने आदर्श पर अभिमान नहीं था, अपने जीवन के उद्देश्य का गर्व नहीं था। उन्हें इन दोनों पर अश्रद्धा हो गयी थी। उनकी धारणा थी कि जहाँ सचाई है वहाँ विजय होनी ही चाहिए, लेकिन उन्होंने अनुभव करके देखा कि बात ऐसी नहीं है, जो झूठा है बेईमान

है, कपटी है, कुचक्री है, संसार में उसी की जीत होती है।

रह रहकर अजीतसिंह के सामने विकराल दैत्य की तरह यह प्रश्न खड़ा होता था—अब मैं क्या करूँ? जैसे किसी की मणि खो जाय और वह विक्षिप्त सा होकर उसे ऐसे ऐसे स्थानों में भी खोजता फिरे, जहाँ उसके होने की कोई सम्भावना नहीं हो सकती, वैसे ही अजीत अधीर और कातर होकर अपने मुँह की लाली रखने का कोई उपाय जानना चाहते थे। परन्तु हाय! सम्मान और यश के प्यासे इस शक्तिशाली युवक को अपनी गौरवरक्षा का कोई ढंग दिखायी नहीं पड़ता था। एक दो मनुष्यों को समझाना हो तो समझाया जा सकता है, परन्तु, जहाँ लाखों मनुष्यों के प्रश्नों का उत्तर एक ही मनुष्य को देना हो वहाँ उसकी क्या दशा होगी? अभी तीन ही चार दिनों पहले वे लोकमत का उपहास करते थे, परन्तु, अब उसी लोकमत के सामने उनका दोषी हृदय रह रह कर पीपल के पत्ते की तरह काँप उठता था।

वे सोचने लगे—पुत्र के रहते हुए माता को अन्त्येष्टि संस्कार करना पड़ा, इसे जो कोई सुनेगा वह मेरी निन्दा क्यों न करेगा? माँ का उदार-हृदय, सम्भव है, मुझे क्षमा भी करदे किन्तु घर में पद्मा के व्यङ्गों की बौछार और बाहर अगणित लोगों की टीका-टिपणी को मैं कैसे सहन करूँगा? प्रिंसिपल राघवशरण, पं० हरिहर सुकुल तथा अन्य छोटे बड़े कितने ही लोग जब मुझे उपदेश देने लगेंगे और भीषण अपराध के कारण मेरे मुँह में ताला लगा रहेगा तब क्या जीवित रहना मुझे अच्छा लगेगा? प्रयाग में चारों ओर अपमान के सिवा अब मेरे लिए और क्या है? मैं सब की दृष्टि से गिर गया, नौकर-चाकर मुझे हेय समझेंगे, ऊपर से विनय-भाव दिखलावेंगे,

किन्तु भीतर से यही कहेंगे कि यह व्यक्ति पतित प्राणी है—यह अवहेलना, उपेक्षा, घृणा का भाव क्या मुझे दहकती अग्नि के अंगारों से कम दाहक होगा ? इस समय अजीतसिंह का चित्त आँवाँ की तरह धधक रहा था और उनका सारा धैर्य्य, सारा उत्साह, आशा, उमंग और जीवन की ऊँची से ऊँची आकांक्षा उसी में तिनके की तरह भस्म हो रही थी।

अजीत के हृदय में न जाने किस ओर से एक आवाज़ आयी–अपमान-पूर्ण जीवन की अपेक्षा मौत अच्छी है। उन्होंने देखा कि शत्रुओं को छकाने और स्वयं भी कष्टों से मुक्त होने का दूसरा कोई उपाय नहीं है। निराशाजनक घटनाओं ने अपने कुचक्रों द्वारा उनके जिस अहङ्कार-पूर्ण व्यक्तित्व को कुचल डालने का षड्यन्त्र रचा था उसकी शायद यह अन्तिम ललकार थी। यश और प्रशंसा ही उनके जीवन की खूराक थी और इस खूराक के बिना अजीतसिंह के जीवन की आशा करना वैसा ही था जैसे किसी मरुभूमि में लता और फूल आदि के उगने-पनपने की। उन्होंने फिर एक बार अपने भविष्य की ओर दृष्टि दौड़ायी। चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार था और इस अन्धकार में मार्क, रामलखन, मिस घोष आदि की महा भयानक दैत्याकार आकृतियाँ विकराल मुँह बाये उन्हें निगल जाने के लिए उतावली कर रही थीं, कमलाशंकर, हरिहर सुकुल, राघवशरण आदि के विकृत मुख पैशाचिक प्रसन्नता से और भी विकृत होकर अट्टहास कर रहे थे, और वे स्वयं लज्जा और ग्लानि से विकल होकर इनकी दृष्टि से बचने का कोई मार्ग नहीं पा रहे थे। इस अन्धकार में उन्हें जुगनू की रोशनी मिल गयी, किसी ने उनके हृदय में फिर बड़े धीमे स्वरों में कहा, मैं तुम्हें बताता हूँ, मेरा कहना मानकर तुम अपने निन्दकों, उपहासकों और शत्रुओं की पहुँच के बाहर हो जाओ।

इस आवाज में वह माधुर्य्य था, वह मादकता थी, वह सरस सान्त्वना थी कि अजीतसिंह को उनकी ओर अधिकाधिक मात्रा में आकर्षित होना ही पड़ा। अजीत नारी का उपासक नहीं था, धन की कामना उन्हें जीवन में कभी नहीं हुई। संसार में कुछ कर गुजरना चाहते थे। उनकी लालसा थी कि भारतीय समाज में नवीन राजनैतिक और सामाजिक विचारों का प्रचार करने का श्रेय उन्हें प्राप्त हो। जब उनकी यह एक मात्र लालसा ही नष्ट कर दी गयी, जब उनका सर्वस्व ही लुट गया तब उन्हें जीवन से ही विदा माँगते समय हाथ पकड़कर रोकने वाला कौन था? उन्होंने उसी अन्धकार में देखा कि इस चिर विश्राम के पीछे लालायित होकर चल देने में वृद्धा, विधवा मां, और अभागिनी 'दुलारी बहिन का करुणाजनक अश्रुप्लावित मुखमण्डल और नन्हीं सी शान्ता की प्यारी तोतली बातें ही प्रधान रूप से बाधक हो रही हैं। उन्होंने दबी जुबान में अपने आप से पूछा—क्या समस्त अपमान, निन्दा, अवहेलना और कष्ट सहन करके भी मां और बहिन के विदीर्ण हृदय को सान्त्वना देना उचित नहीं है? क्या शान्ता की एक स्वर्गीय मुसकान मेरी समस्त दुर्दशा का आवश्यक से अधिक पुरस्कार नहीं है? इन प्रश्नों ने उन्हें दुविधा में डाल दिया। कर्त्तव्य का भुलाना तो सम्भव था, विशेषकर उस अवस्था में जब उन पर संसार की सारी विपत्तियां एक साथ ही टूट पड़ी हों; परन्तु, शान्ता के एक बार टूटे-फूटे स्वरों में दादा कह कर पुकारने में जो अनूठा रस है उसके उपभोग की लालसा से चित्त को विरत करना ही कठिन हो रहा था। जीवन को समाप्त कर देने पर भी यह रस कहीं मिल सकेगा—यदि कोई इसकी गारंटी अजीत को दे देता तो उनके मार्ग में कोई रुकावट नहीं थी, संसार से मोह कराने

वाला कोई प्रभोलन नहीं था। वे एक ठण्डी साँस भर के रह गये।

परन्तु शान्ता के लिए इतना बड़ा स्वार्थ-त्याग करने पर भी समस्या हल नहीं होती थी। अजीत ने अपने शत्रुओं की भीषण भविष्य कार्य्यवाहियों का तुरन्त ही जो चित्र खींचा उसमें भी प्रायः वही करुणा जनक परिणाम अङ्कित था—शान्ता का वियोग। क्योंकि, उन्होंने सोचा, यदि बशीर अहमद सरकारी गवाह हो गया और यदि सरकार ने मेरे ऊपर राजद्रोह का अभियोग चलाया तो क्या मैं दस वर्ष के लिए भी कारावास-सेवी न होऊँगा? और, यह सब तो बाद को होगा, पहले सैकड़ों प्रकार के असह्य कष्टों को भी सहन करना होगा। ऐसी दशा में उन्होंने देखा कि शान्ता को भी भुलाना ही होगा। जैसे पाँव में चुभे हुए काँटे को निकाल देकर यात्री सुख से यात्रा करता है, वैसे ही शान्ता को सदा के लिए भुलाकर अजीत अपनी महायात्रा से मिलनेवाली मुक्ति की कल्पना करने लगे। एकाएक हृदय के एक आवेग के वशीभूत होकर अपने स्थान पर से उठे और डब्बे के दरवाजे के पास खिड़की के बाहर सिर निकाल कर देखने लगे। इस समय उन्हें ऐसा जान पड़ा जैसे दुःखिनी माता, म्लानमुखी प्रतिभा प्रार्थना कर रही है—भैया हमको अनाथ न कर दे। अजीत ने निर्दयतापूर्वक इन्हें अपने सामने से हटा दिया। घोर निराशा में एक पैशाचिक बल होता है। इसी बल से बलवान होकर अजीत ने बेचारी बच्ची शान्ता को भी, जो उसकी धोती का अंचल पकड़कर गोद में आने के लिए हठ कर रही थी, निर्दयतापूर्वक भूमि पर ढकेल दिया। अजीत की उत्तेजित कल्पना ने अनधिक काल में ही उनके संसार को ऐसा संकुचित कर दिया कि अब उन्हें अपने सिवाय दूसरा

कोई दृष्टि में नहीं आता था। अब वह यह सोचने लगे कि किस प्रकार जल्दी छुटकारा हो।

खिड़की के पास तीन-चार मिनट तक खड़े रह कर अपार अन्धकार में निरुद्देश्य दृष्टि डालते हुए अजीत ने सोचा कि यदि चलती गाड़ी में से बाहर कूद भी पड़ूँ तो मृत्यु होने की कोई पक्की गारण्टी तो है ही नहीं। अधिक सम्भव यह है कि मैं इसी स्थान में पड़ा रह जाऊँगा, और गाड़ी मौज के साथ चली जायगी। हत्या का समाचार गूँज जाय और ऐसा पत्र लिख जाऊँ जो इस देश के समस्त समाचार पत्रों में प्रकाशित हो तथा उनकी टिप्पणियों से पठित समाज इस बात से अवगत हो जाय कि इस देश में देशभक्ति का मार्ग कितना कंटकाकीर्ण है। यही तय करके पेन्सिल से उन्होंने कागज पर क्या जाने क्या जल्दी-जल्दी लिखा और फिर डब्बे के भीतर ही वे गले में फाँसी लगाने का प्रबन्ध करने लगे। इस समय जितना ही अधिक यह कार्य सम्पूर्णता को प्राप्त होता जा रहा था उतना ही वे घबराते थे कि कहीं श्यामलाल या राधिकाकान्त में से कोई जाग न जाय। वे मन ही मन मना रहे थे कि हे भगवान्! पाँच मिनट के लिए इनकी आँखों में अटूट निद्रा का निवास हो जाय। वे बारम्बार सोचते थे कि यदि मेरा कार्य पूरा हो जाने के बाद इन लोगों की निद्रा टूटेगी तब तो ये अत्यन्त प्रभावित होंगे, तथा इन लोगों को यह विदित हो जायगा कि मेरे भग्न हृदय में अपार वेदना थी, अनन्त परिताप था। लो, अत्याचारी मार्क! मायाविनी मिस घोष!! और असत्य के अवतार कमलाशङ्कर!! तुम भी जान जाओगे कि इस संसार में अजीतसिंह भी कोई था, जब तक जिया तब तक अपने प्रताप से दुष्टों के हृदय में आतङ्क उत्पन्न करता रहा और जब जीवन में कोई ऐसी वस्तु शेष नहीं रही जो उसे सम्मान प्रदान करे तब उसने सरस से सरस स्मृतियों को कुचल कर प्राणों को सदा के

लिए त्याग दिया। अपनी एक धोती से फाँसी का सामान तैयार कर लेने के बाद उन्होंने एक बार अपने अतीत जीवन की ओर सिंहावलोकन किया, माता को प्रणाम किया और बहिन तथा स्त्री को आशीर्वाद देने के बाद मन ही मन कहा—"तुम तीनों मुझे भूल जाओ। मेरे जैसे प्राणी को आत्महत्या के अतिरिक्त दूसरा कोई चारा नहीं। मुझे यदि अब शान्ति मिल सकती है तो केवल प्राण त्याग से। इसलिए मेरी शान्ति के लिए तुम शुभ कामना करो और प्राणान्तक कष्टों से मुझे जो मुक्ति मिल रही है उसके लिए स्वार्थत्याग पूर्वक आनन्द का अनुभव करो। तुम्हारे लिए शान्ता को थाती की तरह छोड़े जाता हूँ।"

एक ओर तो ये विचार उनके चित्त में एक-एक कर के आ रहे थे, दूसरी ओर उनकी आँख अपनी दोनों साथियों को क्षण-क्षण की अवस्था को देखती जाती थी। उन्होंने अपनी चिट्ठी को सूट केस के नीचे दबा कर रख दिया। इसके बाद वे एक कुर्सी पर चढ़ अपने गले को धोती से बनायी हुई फाँस के समीप ले गये, किन्तु फाँस को गले में डालने के पहले राधिकाकान्त को करवट बदलते देखकर चुपचाप बहुत धीरे से फर्श पर उतर कर कुर्सी पर बैठ गये। राधिकाकान्त उठ बैठे, बोले—"मैं तो बहुत सोया अजीत बाबू, अभी प्रयाग पहुँचने में कितनी देर है? कितने स्टेशन शेष हैं?"

अजीत ने भर्राये हुए स्वर में कहा—"अभी तो साढ़े दस ही बजे हैं। बदली न होती तो रात ऐसी घनी न मालूम होती। अभी आप चाहें तो दो घण्टे और सो सकते हैं; क्योंकि गाड़ी प्रयाग में बारह बजे के लगभग पहुँचेगी।"

रा०—"नींद आ जायगी तो आप ही सो जाऊँगा। अब जाग गया हूँ तो जबर्दस्ती नींद को क्यों बुलाऊँ?"

अजीत बाबू हाथ मल कर रह गये।

रा०—"यह किसकी धोती है जो विचित्र ढंग से टँगी हुई है। क्या यह आप की है?"

अ०—"हाँ, है तो यह मेरी ही।"

रा०—"क्या यह भीग गई है? लेकिन यदि हो भी तो यह तो धोती सुखाने का कोई ढंग नहीं है। मुझे तो किसी और ही बात का सन्देह हो रहा है। मुझको और श्यामलाल को सोते पाकर जान पड़ता है, आप ने कोई शोकजनक काण्ड कर डालना चाहा था। अजीत बाबू, जब आप इतनी थोड़ी सी कठिनाइयों से व्याकुल हो जाते हैं तब देश का—भारतवर्ष ऐसे दुखी देश का—कुछ कार्य नहीं कर सकते। देखते हैं, पं० सदाशिव मिश्र ने कितने संकट झेले हैं, वे कितनी निराशाएँ पार कर चुके हैं। उस वीर पुरुष को किसने सहारा दिया? इस पतित देश में अब अपने भाई, मित्र, और विश्वास-पात्र लोग ही तो एकान्त पाकर गर्दन मरोड़ते हैं। घबराना न चाहिए, निस्वार्थ भाव से काम किये जाना चाहिए।"

अजीतसिंह को आज झूठ बोलने की इच्छा हुई। लेकिन उन्होंने देखा कि झूठ अधिक देर तक नहीं ठहर सकेगा। इसलिए राधिकाकान्त की शंका का कोई समाधान करने की चेष्टा न करते हुए उन्होंने कहा—"मैं जीवन से ऊब गया, राधिका बाबू!"

रा०—"यह तो स्पष्ट है; क्योंकि, जीवन से ऊबे हुए बिना कोई आत्म-हत्या नहीं करता। परन्तु यह ऊबना तो कमजोरी है। एक बार असफलता होने पर इस तरह अस्त्र-शस्त्र न फेंक देना चाहिए।"

अ०—"मास्टर साहब! मेरे दुःखों का अन्त नहीं है। दादा का स्वर्गवास हो गया।"

'दादा का स्वर्गवास हो गया!' चौंककर राधिकाकान्त ने इन्हीं शब्दों को दुहराया। "आप को कैसे मालूम हुआ?"

अ०—"'स्वाधीन जीवन' में उनके स्वर्गवास पर एक लेख ही छपा है। मेरी समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूँ। बीमारी की अवस्था में उन्हें छोड़कर अन्यत्र चले जाना—यह मुझसे एक ऐसा अपराध हो गया है कि मेरा चित्त लज्जा, ग्लानि और वेदना से व्याकुल हो रहा है। यदि आप दो-तीन मिनट और न जगे होते तो मेरी आत्मा शान्ति पा गयी होती।"

रा०—"अजीत बाबू, आप दूर तक दृष्टि नहीं डालते। और अगर आप में थोड़ा सा धार्मिक भाव भी होता तो आप को इतनी बड़ी निराशा न होती। क्षमा कीजिएगा, मैं यह अवसर पाकर अपने मत को आप पर लादने की कोशिश नहीं कर रहा हूँ, किन्तु मेरा यह दृढ़ मत है कि सच्ची ईश्वर-भक्ति से ही सच्चा आनन्द मिलता है। इस देश में अँगरेजियत के फैल जाने से देशभक्ति का एक ऐसा भाव यहां प्रचार पा गया है जिसमें न पूरा-पूरा त्याग का भाव है और न पूरा पूरा क्षात्रियत्व ही है। लोग चाहते हैं कि हम त्यागी रूप में प्रसिद्ध हों, साथ ही हमारे अमुक स्वार्थ की भी सिद्धि हो—यह स्वार्थ अनेक प्रकार का होता है, धन-कामना से लेकर सूक्ष्म से सूक्ष्म यश-कामना तक में इसका प्रसार होता है। हमारे नवयुवक ही नहीं, प्रौढ़ मति और वय वाले भी इस दोष से मुक्त नहीं हैं। फल क्या है—असफलता, उपहास, निराशा, विषाद! आप सही मानें या न मानें, परन्तु मेरा तो यह पक्का विचार है।"

अजीत ने कुछ उत्तर नहीं दिया। बहस करने की आज उनमें शक्ति नहीं थी।

राधिकाकान्त ने कहा—"इस संसार का नियामक ईश्वर है, जो न्याय और अन्याय, हर्ष और विषाद, दुख और सुख को सदैव ही समतोलित रखता है। उनमें श्रद्धा रखने से, उनकी सत्ता पर भरोसा रखने से उसी के नियमों के अनुसार चलने से अज्ञान पास नहीं फटकता और अज्ञान के न होने से दुःख नहीं होता। ईश्वर-भक्त को तो आत्म-हत्या करने के लिए अवकाश नहीं।"

कहने को तो राधिकाकान्त यह सब कह ले गये, किन्तु शीघ्र ही उन्होंने यह अनुभव किया कि इस समय मेरा यह कथन उचित नहीं था। अतएव उसे मृदु करने के लिए उन्होंने कहा—"अजीत बाबू! बाबूसाहब आप के ही वियोग में विशेष दुखी होकर मरे हैं। यदि आपने उनसे इतनी प्रतिकूलता न ठानी होती तो अभी वे सांसारिक सुखों में डूबे रह कर बहुत दिनों तक जीवित रहते। मैं इस समय जो बहुत कुछ अण्ट-शण्ट बक गया हूँ सो इसी कारण कि अव्यवहारिक आदर्शवाद के फेर में पड़ कर आपने अपनी अपरिमित हानि तो कर ही ली, अपने मित्रों के लिए भी एक विषाद का कारण उपस्थित कर दिया। खैर जो हुआ सो हुआ। बाबूसाहब के परलोक-गमन को तो अब त्रिलोक की कोई भी शक्ति पलट नहीं सकती, किन्तु इतना अवश्य हो सकता है कि उनकी आत्मा को शान्ति पहुँचाने का सद्प्रयत्न किया जाय। इसका अर्थ यह है कि आप अपनी गृहस्थी को सँभाल लें, प्रतिभा का विवाह बाबू रामलखन के साथ कर डालें और अपनी रियासत के सुप्रबन्ध के साथ ही साथ संसार का जितना उपकार कर सकें करें। आपका खयाल है कि बाबूसाहब चापलूस और डरपोक थे। और भी बहुत से लोग आप की राय का समर्थन कर सकते हैं। परन्तु यह

किसी व्यक्ति के चरित्र का केवल एक पहलू देखना है। बाबूसाहब में गुणों की मात्रा अवगुणों की अपेक्षा बहुत अधिक थी। वे दयालु थे। शिकार खेलते थे, लेकिन यह इस कारण कि लड़कपन से ही उनका वह अभ्यास हो गया था, जल्दी छूटता न था। विक्टोरिया कालेज उनकी सहायता के बिना एक ही दिन में बैठ जाता। धार्मिक उत्साह तो उनका दिन प्रति दिन बढ़ता ही जाता था।"

चार पाँच दिन के पहले यदि राधिकाकान्त ने ये ही बातें कही होतीं तो अजीत ने इनका खण्डन अवश्य ही किया होता। परन्तु आज उन्हीं विशेषताओं की चर्चा आने पर, जिन्हें तब वे अवगुण ही सिद्ध करते, उनकी आँखों से आँसू बहने लगे, और अन्तिम दिनों में उन्होंने उनके लिए जिस हद दर्जे का स्वार्थ-त्याग किया था उसका स्मरण करके तो वे फूट फूट कर रोने लगे। राधिकाकान्त की आँखें भी भर आयीं और अजीत के करुण रुदन से द्रवित होकर वे भी रोने लगे।

इसके बाद दोनों में से किसी ने कुछ बातचीत नहीं की। जब तीन चार स्टेशन रह गया तब राधिकाकान्त ने श्यामलाल को जगाया। उस बेचारे को यह क्या मालूम था कि परिस्थिति में कितना अन्तर हो गया है और न प्रयाग के रामबाग स्टेशन पर पहुँचने तक किसी ने उससे कुछ कहा। लेकिन रेलगाड़ी के डब्बे में से निकलते ही जब भगवान चपरासी और जंजाली ने अजीत बाबू को ढूँढ़ लिया और उनका पैर पकड़ कर अत्यन्त कातरता के साथ रोना शुरू किया तब श्यामलाल की कूट-नीतिपरायण बुद्धि को यह समझने में देर नहीं लगी कि बाबूसाहब इस लोक में नहीं हैं। जितने शोक के प्रकाशन से यह सिद्ध हो सकता था कि श्यामलाल अजीतसिंह और उनके

परिवार का सच्चा हितैषी है उतना व्यक्त करने में उन्होंने विलम्ब नहीं किया। आश्चर्य के साथ पूछताछ भरके, आहें भरके, आँसुओं को दो-चार बूँदें ढार के उन्होंने ऐसा भाव प्रकट किया, मानो उस के पिता मर गये हों।

स्टेशन से बँगला दूर नहीं था। थोड़ी ही देर में घोड़ा-गाडी बँगले में पहुँच गयी। अजीतसिंह को उतार कर कोचवान राधिकाकान्त और श्यामलाल को कर्नलगञ्ज पहुँचाने के लिए गाड़ी ले गया। अजीतसिंह ने आह भरते हुए भीतर प्रवेश किया। लक्ष्मी, प्रतिभा, पद्मा सभी अभी तक प्रतीक्षा कर रही थीं। माँ के पैर पकड़ कर अजीत इस प्रकार रोने लगे जैसे अबोध बच्चा रोता है। लक्ष्मी का रोना और भी करुणा-जनक था। इन दोनों के रोने से प्रतिभा और पद्मा भी रोने लगीं। शीघ्र ही जानकी महरिन भी आ गयी। उसके आ जाने की आहट पाकर विवशतापूर्वक मूलचन्द को साथ लिए हुए महाराजिन को भी जाना पड़ा। वहाँ का रोना देख कर मूलचन्द भी बड़े जोर से रोने लगा। उसी कमरे में शान्ता सोती थी। वह भी जाग पड़ी और चिल्लाने लगी। पद्मा को तो अपना रोना शान्त करके लड़की को सुलाने की चेष्टा करनी पड़ी। महाराजिन मन ही मन महरिन को कोसने लगी कि न यह आती न मुझे मूलचन्द को लेकर आना पड़ता और न यह जी छोड़ कर चिल्लाता।

लड़का चोर हो, बदमाश हो, डाकू हो, सैकड़ों अपराधों का करने वाला हो, परन्तु माँ की गोद सदैव माँ की गोद है। क्या जाने कितनी क्षमा, कितनी सहन-शक्ति, कितना त्याग, कितनी ममता देकर इस सृष्टि का संचालन करने वाले ने माँ को इस संसार में भेजा है। लक्ष्मी ने अजीतसिंह के कारण

क्या कष्ट नहीं पाया ? जन्म से लेकर आज तक उनकी रक्षा करने के लिए उन्होंने क्या जाने कितने संकट, कितनी वेदनाएँ सहीं। उनकी समझ ही में नहीं आता था कि उनके एक मात्र पुत्र प्यारे अजीतसिंह में भी कोई दोष हो सकता है। लक्ष्मी के हृदय में कोई व्यक्ति यह धारणा अंकित नहीं कर सकता था कि अजीतसिंह अपने दादा को नहीं चाहता। और आज अजीत के करुण रुदन से उनको पक्का विश्वास हो गया कि जो लोग उसके पितृ-प्रेम में सन्देह करते थे वे गलती करते थे। यदि अजीतसिंह ने ऐसा न किया होता तो बाबूसाहब की मृत्यु न होती—इस प्रकार के तर्क के लिए उनके हृदय में स्थान न था। वे प्राचीन सभ्यता के उपासक परिवार की कन्या थीं। उनका तो यह अटल मत था कि जो कुछ होता है पूर्व जन्म के कर्मों के फलस्वरूप होता है।

इस समय लक्ष्मी देवी ने प्रतिभा, पद्मा आदि को जाकर सोने के लिए कहा। महराजिन और महरिन को भी उन्होंने इसी तरह विदा कर दिया।

अजीतसिंह ने कहा—"माँ, मैं बड़ा अपराधी हूँ। दादा से भेंट नहीं हुई। कमलाशंकर ने मुझे बड़ा धोखा दिया, अम्मा !"

आँख के निरन्तर अश्रुप्रवाह को आँचल से रोकती हुई लक्ष्मी बोलीं—"बेटा, तुम्हारा और मेरा दुर्भाग्य ! इसमें किसी का कोई दोष नहीं हैं। सब ईश्वर की इच्छा से होता है। जैसा होनहार रहता है वैसी ही मनुष्य की मति भी हो जाती है। कमलाशंकर ने क्या धोखा दिया ?"

अजीत ने रोते हुए सारा हाल मां से निवेदन कर दिया। लक्ष्मी देवी भी सिसक सिसक कर रोने लगीं। थोड़ी देर बाद

धीरज धरके उन्होंने अजीत से कहा—"भैया, इनकी तबियत अच्छी अवश्य हो जाती, किशनलालजी जी जान से दवा करने में लगे थे। परन्तु किसी शत्रु ने ठाकुर रणधीरसिंह से न जाने क्या कहा-सुना। उन्होंने प्रतिभा के साथ रामलखन का विवाह इनकार करते हुए बड़ी हो अपमानजनक चिट्ठो लिखो। जानते ही हो, तुम्हारे दादा सब सहन कर सकते थे, लेकिन अपमान नहीं सह सकते थे। अपमान ही ने उनके प्राण ले लिए। लेकिन किसी शत्रु को भी क्या दोष दूँ, यही कहना चाहिए कि सब हमारे कर्मों का फल है। चलो भैया, सोओ अब बड़ी रात बीत चुकी। मैं भी यहीं लेटती हूं।"

[४२]

जिस समय बाबू साहब के बँगले में यह शोक-जनक दृश्य उपस्थित था उसी समय बाबू रामलखन सिंह श्रीमती घोष को साथ लेकर सिविल लाइन के सिनेमा घर में लैला मजनूँ का फिल्म देख रहे थे। खेल समाप्त होने पर जब दोनों गाड़ी में बैठ कर घर की ओर चले तो दोनों के हृदय में यौवन का उन्माद और प्रेम का नशा भरपूर था। रामलखन सिंह ने कहा—"श्रीमती घोष ! प्रेम के बिना यह संसार सूना है। क्या यह सच नहीं है ?"

श्रीमती घोष ने उत्तर दिया—"अवश्य ही, बगल में बैठे हुए किसी सुन्दर प्रेमी के मुख से ये उद्गार सुनने को मिलें तो दुखा से दुखो स्त्री के लिए संसार सूना नहीं है। मेरा तो संसार सूना हो गया था, किन्तु अब मेरे जीवन में पहले की अपेक्षा भी कहीं अधिक मिठास और रस है।"

"सो कैसे श्रीमती घोष ?"—रामलखन ने अधिक स्पष्टता के उद्देश्य से पूछा, यद्यपि वे श्रीमतो का आशय समझ गये थे।"

कभी कभी प्रेमिक गण भावों को समझ कर भी न समझने का छल करते हैं, और ऐसा करते हैं वे रस की स्वाद वृद्धि के लिए।

श्रीमती घोष ने मिस्टर रामलखन के गले में हाथ डाल कर कहा—"मैंने मिस्टर घोष को खोकर आप को पाया। शायद उतनी बड़ी कीमत न देने पर आप न मिलते।"

रामलखन ने कहा—"श्रीमती घोष! क्या ऐसा भी कोई उपाय है जिससे हम लोगों का जीवन एक दूसरे के अधिक निकट आ सके? हम लोग कब तक प्यास से तड़पते रहेंगे?"

यह कह कर रामलखन ने श्रीमती घोष के मक्खन जैसे सफेद गालों पर अपने अधरों को रख दिया।

श्रीमती घोष ने रामलखन के इस व्यवहार पर स्वीकृति की मुहर लगाते हुए कहा—"आप हिंदू हैं, आप ही के सामने सौ अड़चनें होंगी, आप ही सोचिए कि क्या ऐसा कोई उपाय हो सकता है और यदि वह हो भी तो क्या उसका आधार लेने का नैतिक साहस आप में है?"

रामलखन सिंह गम्भीर हो गये। कठिनाइयों से पूर्ण भविष्य उनकी आँखों के सामने खड़ा हो गया। वे बड़ी देर तक कुछ न बोले।

श्रीमती घोष ने व्यंगपूर्ण स्वर में कहा—"क्या सोच रहे हैं लखन बाबू? क्या आप डर गये कि यह स्त्री आप को इंग्लैं-एड उड़ा ले जाना चाहती है। नहीं, नहीं। यह बात नहीं। आप प्रसन्नता से किसी सुन्दरी हिन्दू लड़की से अपना विवाह कीजिए। हाँ, यदि आप मुझे बिल्कुल न भूल जायँगे तो मैं भी अपने को कृतार्थ समझूँगी। साथ ही एक बात का वादा मैं आप से अवश्य कराना चाहती हूँ। एक बार मैं आपको इंग्लैण्ड

ले चलूँगी और अपनी माँ से आपका परिचय कराऊँगी। आप को देखकर वे बड़ी प्रसन्न होंगी।"

ये गुदगुदी पैदा करने वाली बातें रामलखन पर जादू का असर डाले बिना नही रह सकीं। उनकी आँखों के सामने एक सुनहला संसार अपने अपार प्रभोलनों को लेकर खड़ा हो गया। उन्होंने उमंग में आकर उत्तर दिया—"श्रीमती घोष! आप मुझे नैतिक साहस में कम न पाएँगी। मैं बहुत शीघ्र अपना निर्णय पक्का कर लूँगा और तब आप को सूचना दूँगा, मैं तो यहाँ तक सोच चुका हूँ कि यदि हिन्दू होकर आप को नहीं पा सकूँगा तो ईसाई धर्म को स्वीकार करके तो पाऊँगा। मां हैं नहीं; एक मात्र पिता जो ऐसे हैं जिनका मुझे कुछ लिहाज है। किन्तु उनको भी मैं यह अधिकार सौंप नहीं सकता कि वे मेरे सुखमय जीवन को दुखमय बनावें।"

मार्ग में इस प्रकार का आश्वासन देते हुए मिस्टर रामलखन श्रीमती घोष को उनके बँगले पर पहुँचा आये। श्रीमती घोष को गाड़ी में से उतरते देखकर अब तक जागती रहने वाली मिस घोष ईर्ष्या-द्वेष की अग्नि में जल कर राख सी हो गयी।

[४२]

अजीत ने दाह का अशौच स्वयं लेकर माँ को उसके कृत्यों से मुक्त कर दिया था। स्नान करके वे घण्ट में दीपक जलाने जा रहे थे कि इसी समय राधिकाकान्त आ गये।

अजीत ने नमस्कारादि के अनन्तर कहा—"मास्टर साहब! आपने तो मिस घोष के चरित्र का बहुत निकट रह कर अध्ययन किया होगा। बताइए तो सही, यह कैसी स्त्री है। आजकल

रामलखन सिंह से उसकी दोस्ती हो रही है। यह तो आपको मालूम होगा !"

राधिकाकान्त ने कहा—"मुझे मालूम तो नहीं; परन्तु, यदि ऐसा हुआ हो तो मुझे तनिक भी आश्चर्य नहीं है। मिस घोष एक अत्यन्त स्वार्थी और वासना-लोलुप स्त्री है—संक्षेप में मेरा यही कथन है। जो उसके स्वार्थ को सिद्ध करे वही उसका प्रेमी है और जो उसे निराश करे वही उसका शत्रु है। उसको अच्छी सलाह देना भी उसकी दृष्टि में शत्रुता ही करना है।"

अ०—"मास्टर साहब ! स्वार्थी कौन नहीं है ? संसार में मुझे तो सभी स्वार्थी जान पड़ते हैं और उपकार में रक्खा ही क्या है जो स्वार्थ-साधन छोड़ कर कोई उपकार को ओर अपना चित्त लगावे ? अब तो मैं भी स्वार्थी बनूँगा। जिस तरह दादा रहते थे बस उसी तरह रहूँगा। अज्ञान और अविचार में पड़ कर मैंने अपने सिर पर सैकड़ों संकट खड़े कर लिये।"

रा०—"निस्सन्देह आप अपने दादा का पदानुसरण कीजिए। ईश्वर से डरते हुए, अखिल ब्रह्माण्ड में उसकी ही व्यापक सत्ता है, वही सब कर्मों को कराता हैं, वही उनका भोग और संहार करता है, उसकी प्रेरणा के बिना एक तिनका भी नहीं हिल सकता—इस सत्य में श्रद्धा रखते हुए, दुखों में धैर्य और सुखों में गाम्भीर्य को हाथ से न जाने देते हुए, स्वार्थ और परमार्थ दोनों का सामञ्जस्य करके गृहस्थ-धर्म का पालन कीजिए।"

अ०—"परन्तु मास्टर साहब। हम लोग जो पाप करते हैं, असत्य आचरण करते हैं, विश्वासघात करते हैं, क्या उसमें भी ईश्वर की प्रेरणा नहीं है ! यदि वह चाहे कि हम अच्छे रहें

तो भी क्या हम अच्छे नहीं रह सकते ? मुझे तो जान पड़ता है कि ईश्वर को संसार की सारी पाप लीला पसन्द है।"

रा०—"वास्तव में यह जगत तो उसकी लीला का क्षेत्र है ही। उसकी क्रीड़ा की प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि अज्ञान का प्रसार हो; क्योंकि जब अज्ञान फैलेगा, उसके कष्ट मिलेगा तभी तो ज्ञान की उपलब्धि होने पर लोकोत्तर रस मिलेगा। सृष्टि को एक प्रकार का समुद्र-मन्थन समझिए। इस मन्थन से विष, वारुणी, रम्भा आदि के साथ साथ अमृत, कौस्तुभ मणि और लक्ष्मी की भी प्राप्ति होती है। सृष्टि में देवता और दैत्य दोनों हैं। किसी को अमृत मिलता है, किसी को विष मिलता है।"

अ०—"तो जो ईश्वर इतना अधिक लीलाप्रिय है वह अपनी लीला का अन्त करना क्यों चाहेगा ? मेरी समझ में फिर तो अज्ञान को मिटाने का प्रयत्न करना ईश्वर को अप्रसन्न करना है; क्योंकि उससे उसकी लीला ही को इतिश्री हो जायगी। मैं प्रायः सोचा करता था कि दैत्य विजयी क्यों होते हैं और देवताओं को उनसे हारना क्यों पड़ता है। सो अब समझ में आ गया। बात यह है कि दैत्यगण ईश्वर की लीला को जारी रखने की कोशिश करते हैं और देवतागण सांसारिकता की समाप्ति करके उसे परिमित काल से अधिक नहीं चलने देना चाहते।"

अजीत का मस्तिष्क इस समय किधर जा रहा है, इसे राधिकाकान्त समझ गये। उनकी हठधर्मी का खयाल करके वे चुप तो रह गये, लेकिन इस विचार-श्रेणी को पहले की विचार-श्रेणी से अधिक भयङ्कर समझ कर और उससे उत्पन्न होने वाले सम्भव कुपरिणामों की कल्पना करके उनका हृदय काँप उठा। इस समय उन्हें कमलाशंकर और मिस घोष पर

बड़ा क्रोध आया, जिन्होंने अपने विश्वासघात द्वारा अजीत जैसे उपकारपरायण और उत्साही युवक के विचारों में एकदम से ऐसी क्रांति उपस्थित कर दी थी कि अब उसका शमन करना नितान्त कठिन था। शोक का अवसर समझ कर विवाद को अधिक बढ़ाना उन्होंने विशेष करके अनुचित समझा। थोड़ी देर तक और बैठे रह कर वे घर चले गये।

अजीतसिंह अब हृदय से चाहते थे कि एक बार परिस्थिति पहले जैसी उनके अनुकूल हो जाती और फिर वे इतनी कठिनाई से प्राप्त अनुभव के अनुसार जीवन भर चलते। वे वीर युवक थे। प्रशंसा और प्रोत्साहन पाकर वे हँसते-हँसते अपने प्राणों का उत्सर्ग कर सकते थे। परन्तु वर्तमान परिस्थिति में रह रह कर जब वे मार्क की चालों, मिस घोष की षडयन्त्र—परा-यणता और रामलखन सिंह के अधिकार-दुरुपयोग आदि सम्भव बातों को सोचते तब उनका सारा धैर्य हाथ से छूट जाता और वे अपने कष्टों को अनिवार्य्य समझ कर कातर और दुर्बल हो जाते थे। उनके हाल के अनुभवों ने जीवन के प्रति उनकी धारणा को ही बदल दिया था। अब उनके चित्त में यह बात अच्छी तरह जम गयी थी कि जीवन में जिसे हम पाप और अनुचित कर्म्म कहते हैं वह केवल दुर्बलों के लिए है; जो सबल हैं, शक्तिशाली हैं उन्हीं की यह वसुन्धरा है, और उनकी भोगलालसा की पूर्ति के पथ में कोई व्यवधान नहीं है। दुर्बलों का काम है या तो उनकी इच्छा पूर्ति में सहायक होना या उनके क्रोधानल में पतङ्गवत भस्म हो जाना। ईश्वर के प्रति उनके हृदय में यह विश्वास दृढ़ होगया कि वह भी दुर्बलों पर दया नहीं करता; जिनमें शक्ति है, बल है उन्हीं का पक्ष-समर्थन वह भी करता है। देश भक्ति का अब उनकी समझ

में वह अर्थ नहीं रहा जो पहले था; उनकी दृष्टि में वह और को ठगने के लिए चतुर लोगों के एक हथकण्डे के अतिरिक्त और कुछ नहीं रही। अब उपकार कर्तव्य नहीं रहा; वह दया और करुणा का पर्यायवाची हो गया। इस विचार-श्रेणी से अजीत के हृदय में एक बड़ी प्रचण्ड लालसा ने प्रवेश किया—क्या यह संभव नहीं कि मैं लाखों मनुष्यों को अपने पराक्रम से दलित करके उन पर शासन करूँ, मेरी भृकुटि-भंगी को देख कर सहस्रों मनुष्य थर थर काँपें, मेरे एक सरोष स्वर से कितनों ही के प्राण कंठगत हो जायँ, मेरी इच्छा के सामने सिर झुकाना संसार की सुन्दरी रमणियाँ अपना अहोभाग्य समझें? कर्तव्य की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने अब तक अपनी समझ में जो अपार स्वार्थत्याग किया था उसके कारण अब उनके हृदय में असीम पश्चात्ताप का प्रसार होरहा था। अजीत का यह आन्तरिक परिवर्तन अनेक रूपों में प्रकट हुआ करता था। कभी माता के किसी प्रश्न के उत्तर के रूप में, कभी किसी नौकर पर झुँझलायी हुई डाट-फटकार के वेष में अभिवयक्त होकर वह एक ओर सुमति-संचार का परिचय देकर संतोष की सृष्टि करता था तो दूसरी ओर असंतोष भी उत्पन्न करता था। कोई कहता था—"अजीत बाबू अब घर का काम काज सँभाल लेंगे, अब वे बड़े गम्भीर हो गये हैं।" और कोई कहता था—"अजीत बाबू इतने कठोर कभी नहीं थे, अब तो कोई आज्ञा देनी होती है तो बाबू साहब से भी अधिक रोब दिखाने की चेष्टा करते हैं। बाबू साहब को तो दया भी आ जाती थी, ये तो निष्ठुर हो जाते हैं। क्या किसी के माँ-बाप मरते नहीं? पर इस तरह किसी का चिढ़ना स्वभाव नहीं हो जाता। पहले हमीं लोगों से हिल मिल कर हँसते बोलते और बातें करते थे। कभी कभी तो ऐसा अट्टहास करते थे कि बाबूसाहब बैठक में से निकल आते

और क्रोध भरी दृष्टि से देखकर चले जाते थे। लेकिन अब तो अजीत बाबू हम लोगों के सामने सदैव नाक-भौं सिकोड़े रहते हैं, आदि आदि।

लगभग छः बजे संध्या समय अपने बाग में एकान्त में बैठे हुए अजीत अपने आप को कोस रहे थे। आह ! मैंने कितने आनन्दमय अवसरों को हाथ से निकल जाने दिया है। आज जो मिस घोष रामलखन के हाथों का खिलौना हो रही है उसे, आदर्शों के मिथ्या भ्रम में पड़े रहकर, मैंने अपने से कितना अलग कर दिया। उसके मनोहर रेशम जैसे सुनहले पतले बालों की उलझनों में उलझने के लिए उतावले मन को मैंने कितनी निर्दयता के साथ कुचल करके विरत किया था। उसकी मद-भरी आँखें, लाली भरे गोरे गोरे कपोल, लावण्य की खानि सी नासिका, अमृत के सिंधु को अपने उदरस्थ किए हुए कुम्भज सरीखे अधर, यौवन और मदन की विजय वैजयन्ती फहराने वाले उरोजों की उभार से पीड़ित कटिभाग, उसकी मस्तानी चाल, परिहास, व्यंग आदि से पूरित रसीली बातचीत—इन सब को मेरे ऊपर कहीं अनिवारणीय प्रभाव न पड़ जाय, इसके लिए मैंने अपने आपको कितनी रुकावटों में डाला था ! आह यह नियन्त्रण, यह त्याग किस काम आया ? कितने ही मूर्ख आधी को छोड़ कर सारी के लिए दौड़ते हैं और सारी के न मिलने पर आधी के लिए विलाप करते हैं। मैं उनसे भी बहुत बड़ा मूर्ख हूँ ; क्योंकि सम्पूर्ण प्राप्त वस्तु को पैरों से ठुकरा कर अब व्यर्थ ही मैं पश्चात्ताप कर रहा हूँ। रामलखन को मैं बुरा कहता था। किन्तु आज उसकी बुद्धिमत्ता और महत्ता को मुझे स्वीकार करना पड़ेगा। मिस घोष ने उचित ही किया है जो मुझे और मास्टर साहब दोनों ही को सनकी समझ कर उसने

शक्तिशाली रामलखन से मित्रता कर ली है। मिस घोष! मैं तुम्हें बिलकुल ही बुरा नहीं कहता। तुमने वही किया जो तुम्हारी ही स्थिति में किसी दूसरी स्त्री को करना चाहिए। आज मुझे तुम्हारे ऊपर क्रोध नहीं है, क्रोध है अपने अदृष्ट के ऊपर जिसने मुझे अपना सम्पूर्ण हृदय समर्पित करके तुम्हें हृदयेश्वरी बनाने से रोका। और कमलाशङ्कर! मैंने तुम्हें भी क्षमा किया। तुम समझदार आदमी हो, मेरी तरह मूर्ख नहीं हो। इस संसार में जो अपना लाभ देख कर न चले उसके लिए यहां कोई स्थान नहीं। हरिहर सुकुल! मैंने तुम्हें बहुत बुरा भला कहा, परन्तु, अब से तुम्हें भी कुछ नहीं कहूँगा।

इस समय अजीत को ऐसा मालूम हुआ जैसे उनके पिता सामने खड़े हों और कह रहे हों—"बेटा यदि मेरे प्राणों का कलेवा करके भी तुम्हारी बुद्धि न सुधरती। तो बड़े अचरज की बात होती। खैर जो हुआ सो हुआ। मैंने तुम्हें क्षमा किया। अब सचेत होकर गृहस्थी चलाओ और लोगों के धोखे में पड़ के बरबाद मत हो जाओ। संसार में जिस तरह से सम्भव हो, बलशाली होकर सुख का भोग करो। जो उचित समय पर इन्द्रियों की क्षुधा का निवारण नहीं करता उससे इन्द्रियां बदला लिये बिना नहीं रह सकतीं। तुम क्षत्रिय के लड़के हो, यदि तुम्हीं भोग से विरत हो जाओगे तो वसुन्धरा के अभिशाप से तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती। रहे तुम्हारे वर्तमान संकट, सो यदि तुम बुद्धि से काम लोगे तो तुम्हारे कुचक्री शत्रुओं के समस्त षड्यन्त्र निष्फल हो जायंगे।" अजीत अत्यन्त विनीत भाव से पिता के चरणों में अपना सिर रखने के लिए उठे, किन्तु इतने में बाबूसाहब की मूर्त्ति अन्तर्धान हो गयी। अजीत अवाक् होकर पाषाण-खण्डवत् निश्चल बने रहे। मैं स्वप्न

देख रहा हूँ या सचेत अवस्था में हूँ—इन दो अवस्थाओं में से किसी का वह निश्चय नहीं कर सके। अजीत को इस समय किसी पर विश्वास नहीं था। उनका वर्तमान निर्णय यह था कि कोई भी व्यक्ति किसी भी समय धोखा दे सकता है। इस अविश्वास की मात्रा इतनी बढ़ गयी थी कि उस समय उन्हें स्वयं अपने ऊपर विश्वास नहीं था। जब उनका चित्त तनिक शान्त हुआ तब उन्होंने मन ही मन कहा—देखो न, मेरी इन्द्रियां भी तो मेरा साथ नहीं दे रही हैं। मेरी विपन्नावस्था में वे भी मेरे साथ कटु परिहास और व्यंग कर रही हैं। हाय वञ्चनाशील जगत ! तुम्हारे इस निर्दय स्वभाव का परिचय मुझे अभी तक न था।

अजीत ने सोचा—थोड़ी देर के लिए मान लिया जाय कि मैंने बशीर अहमद को हत्या के लिए उभाड़ा। किन्तु जब हत्या करने वाले को क्षमा दी जा सकती है तो क्या उभाड़ने वाले का अपराध सर्वथा अक्षम्य है ? मैं भी अदालत में कह दूँगा कि मैंने गलती की, इसके लिए मुझे अत्यन्त खेद है। और भविष्य में ऐसा न करने का मैं आश्वासन देता हूँ। यह सब कहने के साथ ही साथ चार छः महाशयों को इस हत्या-षड्यन्त्र में सम्मिलित बता दूं तो और मजा आये। कमलाशङ्कर, हरिहर सुकुल आदि को फँसा सकूं तो कैसा ! दोनों महाशयों को लेने के देने पड़ जायं। इसके लिए सबसे पहले रामलखन से मित्रता करनी होगी। क्या हर्ज है ? अपने मतलब के लिए सब कुछ कर लूंगा। यही न होगा कि कुछ लोग कहेंगे—अजीत ने क्षमा माँग ली। अजीत ने देश के साथ विश्वासघात किया !! इससे मेरा क्या बनता बिगड़ता है ? उनकी प्रशंसा पाने के खयाल ही ने तो मुझे चौपट कर दिया। अब कब तक इसी तरह चौपट होता रहूँगा।

यह सब सोच-विचार कर उन्होंने बाबू रामलखनसिंह से मिलने का निश्चय किया और सब से पहले पत्र-द्वारा अपना विचार प्रगट करना उचित और सरल समझ कर कागज और कलम-दावात लाने के लिए जंजाली को आवाज दी। फिर तुरन्त ही उसे मना करके कहा—"कोचवान से कहो, शीघ्र ही गाड़ी तैयार करे।"

नंगे पैर, नंगे सिर, शरीर पर एक दुपट्टा डाले अजीत अपने हृदय के कम्पन को नियंत्रित करते हुए बाबू रामलखन सिंह के बँगले की ओर चले। कोचवान ने बँगले के भीतर गाड़ी रोक कर एक चपरासी से पूछा, बाबूसाहब बँगले में हैं ? उत्तर मिला—"नहीं।" अजीतसिंह के हृदय की धड़कन अभी उनका साथ नहीं छोड़ रही थी। इस उत्तर से उन्हांने जहां एक ओर निराशा हुई, वहां हृदय को इस आन्तरिक उथल-पुथल से भी छुटकारा हुआ ? सबेरे मिलने का निश्चय करते हुए वे अपने बँगले की ओर आये। किन्तु गाड़ी में से निकलते ही फाटक पर थानेदार और कान्स्टेबुलों के साथ रामलखन सिंह को देख कर वे चकित-स्तम्भित हो गये। अभी वे इसी भाव में मग्न थे कि एकाएक तीन ओर से कान्स्टेबुलों ने उन्हें घेर लिया और रामलखन सिंह ने आगे बढ़कर दीपक के प्रकाश में वारण्ट दिखाते हुए उन्हें गिरफ्तार कर लिया।

अजीत ने कहा—"क्या आप पाँच मिनट के लिए मुझे घर में न जाने देंगे ?"

श्यामलाल—"क्यों आवश्यकता क्या है ?"

अ०—"घर वालों से विदा तो हो लूं। क्या जाने कब उनके दर्शन होंगे।"

रामलाल—"यह तो बहुत आवश्यक कार्य नहीं है।"

एकाएक अजीत को याद आया कि हवालात में जाने के पहले मां को शुद्धि-विधान का कार्य सौंप दूं। उन्होंने कहा—"आप जानते हैं कि पिता जी का दसवां अभी नहीं हुआ। जब तक वह न हो जाय तब तक मैं अपने कर्तव्य से मुक्त नहीं हो सकता।"

रामलखन—"आप का कर्तव्य अब यही है कि हवालात में चलें। शुद्धि-विधान का कार्य जो लोग घर पर रहेंगे वे कर लेंगे। पिता के प्रति तो आपने कर्तव्य का पालन बहुत अधिक मात्रा में किया है, अन्य लोगों के प्रति भी आपने खूब कर्तव्य-पालन किया। अब अपने परिश्रम का पुरस्कार भी ले लीजिए।"

अजीत का शिर लज्जा, ग्लानि और वेदना से नीचा हो गया। दो-तीन मिनटों के बाद उन्होंने फिर कहा—"आप स्वयं हिन्दू हैं, क्षत्रिय हैं, मेरी स्थिति को आप समझ सकते है। कृपा करके मुझे पाँच मिनट के लिए घर में जाने दीजिए?"

रा०—"जाइए, शीघ्र आइए।"

इस घटना का शोकजनक वृत्तान्त घबराये हुये नौकरों ने बहुत पहले ही घर के भीतर पहुँचा दिया था। लक्ष्मी ने तुरन्त ही जंजाली को डाक्टर किशनलाल के पास भेज दिया था। जब अजीत घर के भीतर पहुँचे तो लक्ष्मी का धैर्यशील हृदय भी काबू में नहीं रहा। वह फूट फूट कर रोने लगीं। प्रतिभा अलग ही सिसक रही थी। शान्ता दूध के लिए रो रही थी। पद्मा ने उसे गोद से भूमि पर जोर से गिराकर कहा—"ले अभागिनी, अब तू खूब दूध पिया करना।" अजीत से शान्ता का यह अपमान नहीं देखा गया। तिरस्कृता बालिका को गोद में लेकर अनाथ शिशु की तरह वह कातर रुदन करने लगा। परन्तु आह! आज अजीत

को जी भर रोने की स्वतन्त्रता भी तो नहीं थी। पाँच मिनट का समय कितना होता ही है! अन्त में माँ से यह कह कर कि माँ मैं शीघ्र ही आऊँगा वे बाहर चले आये और मोटर में बैठ कर थाने की ओर चले।

× × × ×

डाक्टर किशनलाल से जितना जल्दी हो सका वे अजीत की जमानत करने के लिए मोटर पर आ गये। भगवान चपरासी ने नेत्रों से अश्रु वर्षा करते हुए उनसे सब हाल बताया। तुरन्त ही उन्होंने थाने की ओर मोटर मोड़ दी।

डाक्टर साहब के बहुत अधिक प्रयत्न करने पर भी अजीत की जमानत मंजूर नहीं हुई। अन्त में विवश होकर उन्होंने अभियुक्त से मिलने की अनुमति थानेदार से माँगी। पन्द्रह मिनट तक बात-चीत करने की आज्ञा मिल गयी।

अजीत के पास जाकर डाक्टर साहब ने कहा—"अजीत बाबू, आपकी जमानत तो किसी प्रकार नहीं हो सकी।"

अ०—"डाक्टर साहब! इसको कोई चिन्ता न कीजिए। सम्भव है, मैं यहाँ घर की अपेक्षा अधिक शान्ति पाऊँगा। वहाँ तो मेरा चित्त जैसे चिन्ता की चिता में जला करता था। यहाँ शरीर को कुछ कष्ट मिलेगा तो चित्त कुछ देर तो उसमें बहला रहेगा। घर पर रह कर तो मैं शायद पागल हो गया होता।"

डा०—"माँ से क्या कह दूँगा।"

अ०—"यही कह दीजिएगा कि वे घबराएँगी मत; मैं शीघ्र ही मुक्त हो जाऊँगा।"

[४४]

अन्धकार में अकेले बैठे-बैठे एकाएक अजीत एक कागज पर पेन्सिल से यों लिखने लगे—

मेरी किसी समय की प्यारी स्नेहमयी मिस घोष,

यह पत्र देख कर तुम आश्चर्य करोगी। सोचोगी पागल, मूर्ख, अभागे अजीत ने किस मतलब से यह पत्र लिखा है। लो तुम्हें बताये ही देता हूँ।

क्या तुम्हें अब उस दिन की याद है जब चार-पाँच वर्ष हुए तुमने मेरे बालों में कंघी करने के बाद गले में भुजाएँ डालकर अपने अधर मेरे अधरों पर रख दिये थे। मैं तुम्हें अपनी बहिन की तरह मानता था। उसी भाव से विवश होकर मैं उस दिन तुम्हारे पास से चला ही गया था। जिस विचार शृङ्खला की वह झिझक एक अङ्ग थी वह आज कटु सांसारिक अनुभवों के आघात से टूट कर चकनाचूर हो गयी है और अब मैं पछता रहा हूँ कि मैंने व्यर्थ ही मिथ्या भावनाओं से प्रेरित होकर तुम्हें त्याग क्यों दिया? अब मेरी समझ में आ रहा है कि यदि मैंने तुम्हें निराश न किया होता तो हम लोगों का जीवन अत्यन्त आनन्दमय हो गया होता। बाल्य काल में मेरे प्रति तुम्हारा प्रेम कितना घनिष्ट था, यह मुझे भूला नहीं है। सम्भव है लड़कपन से ही तुमने मेरी जीवन-सङ्गिनी बनने का विचार भी किया हो। परन्तु एक तो मेरा उस ओर ध्यान ही नहीं गया, क्योंकि मैं अपनी स्त्री के रूप में तुम्हारी कल्पना नहीं कर सकता था, दूसरे यदि ऐसा हुआ भी होता तो सम्भवतः मैं तब उतनी उद्दण्डता न कर पाता जितनी इन दिनों करने लगा था। जो हो, मुझे अब इस बात का दुःख है कि मैंने तुम्हें कष्ट पहुँचाया। इसी कारण तुमने मेरे ऊपर जो अत्याचार किया है उसे क्षन्तव्य समझता हूं। तुम्हारी अवस्था में पड़ कर कोई भी आत्म-सम्मान रखने वाली युवती अपने उपेक्षाशील प्रेमी को इसी प्रकार का दण्ड देगी। पद्मा से भी तुमने अच्छा बदला लिया! उसने मुझे तुमसे अलग

किया था और अब अज्ञात अवधि तक के लिए तुमने मुझे उससे विलग कर दिया ! क्या करूं ? तुम्हारे जिस चुम्बन का मैंने एक बार तिरस्कार किया था वही यदि मुझे अब मिल जाता तो उसके रस का पान करके मैं आज अपने जीवन को सफल मानता। हाय मिस घोष ! हाय मिस घोष !! इस जीवन में अब तुमसे भेंट नहीं हो सकती। जिस ज्वालामुखी पहाड़ की अग्नि ने मुझे तुम्हारी ओर प्रेरित किया है। उसी ने मुझको भस्म कर डालने का भी संकल्प सा कर लिया है। अब क्या हो सकता है ? अब तो तुम सदा के लिए मेरे हाथ से निकल गयीं। जाओ जाओ, अब भाग्यवान रामलखन के हृदय को शान्त करो।

किन्तु मिस घोष ! मेरी प्यारी मिस घोष !! क्या तुम ऐसा करोगी ? क्या अपनी किशोरावस्था के स्नेह-पात्र को एक गलती के कारण इस प्रकार ठुकरा दोगो ? याद रखो तुमने मेरे ऊपर अब तक जो अत्याचार किया है उसके लिए तो मैंने तुम्हें क्षमा किया, नहीं, नहीं उतना करना तो तुम्हारे लिए सर्वथा उचित और स्वाभाविक था। परन्तु इतने अनुताप के बाद भविष्य में होने वाले अन्याय को मैं सहन नहीं करूँगा। इस पृथ्वी पर यदि कहीं भी रह कर मैंने यह जाना कि तुमने रामलखन से प्रेम किया तो यह स्मरण रखो कि तुम मेरे घोर अभिशाप और घृणा की पात्रा होगी। और तब मैं तुम्हें क्रूर ही नहीं कहूँगा, पिशाचिनो भी कहूँगा, कल्पना में तुम्हारी तस्वीर को पैरों के तले रौंद कर; उस पर थूकूँगा, और उसकी परछाहीं पड़ने पर अपनी देह को अशुद्ध समझूँगा।

तुम्हारा किसी समय का प्रेमपात्र
अजीतसिंह

[४५]

पं० हरिहर सुकुल का सम्मति तार जाने पर पं० सदाशिव मिश्र इलाहाबाद आ गये। उनके साथ चंचला भी थी। अजीत की गिरफ़ारी सुन कर उसने पिता के साथ आने का ऐसा हठ किया कि मिश्र जी को उसकी इच्छा पूरी करनी ही पड़ी। फिलहाल उन्हें चंचला के विवाह की तिथि भी आगे बढ़ा देनी पड़ी।

बाबूसाहब के उदास बँगले में चंचला की मुसकान ने एक अलौकिक स्फूर्त्ति का संचार किया। अभी वह ऐसा फूल थी जिसमें कीड़े का प्रवेश नहीं हुआ था, ऐसा हीरा थी जो वेधा नहीं गया था; उत्साह, उल्लास, चहल-पहल चंचलता आदि ही अभी उसके हृदय-प्रसून पर भ्रमर-भ्रमरी की तरह गुञ्जार कर रही थीं। उसके निश्चिन्त जीवन की इन विशेषताओं ने बाबूसाहब के बँगले में आनन्द का आलोक-संचार करने की बड़ी कोशिश की, किन्तु जैसे थके माँदे धूप से हैरान आदमी की एक चम्मच पानी से प्यास नहीं जाती वैसे ही विषाद में डूबा हुआ वह भवन प्रफुल्ल-वदन न हो सका। उलटा उसका नैराश्यभाव सहृदयतामयी चंचला को प्रभावती कर बैठा। चंचला इतना तो जानती थी कि बाबूसाहब के शरीरान्त के समय अजीत बाबू घर पर नहीं थे; किन्तु वह यह न जानती थी कि वे ऐसी गम्भीर परिस्थिति में भी पिता को छोड़ कर प्रतिभा के साथ कमलाशंकर का विवाह कराने के लिए आजमगढ़ गये थे। किसी से सारी बातें स्पष्ट रूप से पूछने का साहस उसे नहीं होता था, कारण यह कि सभी के हृदय में जैसे फोड़ा सा हो गया था, प्रतिभा, पद्मा, लक्ष्मी ही नहीं, नौकर-चाकर भी उदासी में डूबे हुए थे। यहां तक

कि पालित पशुओं और पक्षियों की भी वेदना उनके चेहरे पर अङ्कित जान पड़ती थी। इस वातावरण में चंचला को क्लेश होने लगा। अधिकतर वह प्रतिभा के साथ उठती-बैठती और उसके मन की थाह लेने की कोशिश करती रही, किन्तु अपार व्यथा के अतिरिक्त अन्य किसी बात का चंचला को पता नहीं लगा। प्रथम दो दिन तो ऐसे ही बीत गये, तीसरे दिन दोपहर को न जाने किस अच्छे मुहूर्त में चंचला पद्मा के कमरे में गई और पद्मा ने उसे बड़े आदर से बैठाने के बाद मुसकराते हुए पूछा—"क्यों बीबी! कमला बाबू पर तुमने छापा मार दिया, अब हमारी प्रतिभा बीबी क्या करेंगी?"

चंचला ने सरलता के साथ पूछा—"भला प्रतिभा बहन का कमला बाबू से क्या काम?

पद्मा ने चंचला पर अविश्वाससूचक स्निग्ध दृष्टिपात करते हुए कहा—"बीबी इतनी भोली न बनो, हम सभी जानती हैं कि तुम बनारस की छबीली हो और जहां इलाहाबाद की कुमारियाँ सौ तीर चला कर भी सफल नहीं होतीं वहां तुम्हारा लक्ष्य-वेध एक बार ही में हो जाता है।"

चंचला ने उत्तर दिया—"नहीं, नहीं, भाभी! मैं सच कहती हूँ, मुझे कुछ भी नहीं मालूम और मालूम करने के लिए मैं तड़प रही हूँ। मुझ पर कृपा कर के तुम आज इस रहस्य को थोड़ा सा समझा दो।"

पद्मा ने गम्भीर होकर कहा—"जिनसे तुम्हारा विवाह होने वाला है, अर्थात कमलाशङ्कर, वे हमारी प्रतिभा बीबी के प्राण-प्यारे हैं और उन्हीं के प्रेम की वेदी पर उन्होंने पिता, भाई आदि सबका बलिदान किया है।

"परन्तु वे तो ब्राह्मण हैं, उनके साथ प्रतिभा दीदी का विवाह

भी तो नहीं हो सकता था"—चंचला ने सहज भाव से कहा।

पद्मा ने मुसकराते हुए उत्तर दिया—"जान पड़ता है बीबी अभी बिलकुल अनसूँघी और अछूती कली ही हो। क्या तुम्हें यह बतलाने वाला प्रेमी आज तक नहीं मिला कि मदन देव के राज्य में जाति-पाँति का भेद-भाव नहीं है। तुम तो पढ़ी लिखी हो रानी, कहीं किसी पुस्तक में भी यह सब नहीं पढ़ा ? हमारे पड़ोस में यहां एक ईसाइन लड़की रहती है, मिस घोष उसका नाम है। उससे काम-शास्त्र की चाहे जितनी बातें पूछ लो। हमारी प्रतिभा बीबी ने भी उससे बहुत सी बातें सीखी हैं। कहो तो उससे तुम्हारी मुलाक़ात करा दूँ। तुम भी इलाहाबाद आयी हो तो कुछ सीखती जाओ।"

चंचला ने पद्मा के इन रसिकतापूर्ण भावों को प्रोत्साहन न देते हुए कहा—"भाभी! मैं यह सब सीखने के लिए तो इलाहाबाद नहीं आयी। हाँ, जिन भाई साहब के सम्बन्ध में अखबारों में बहुत कुछ पढ़ा करती थी उन्हीं का दर्शन करने यहाँ आयी हूँ।"

किन्तु पद्मा इस समय परिहास करने की वृत्ति में थी। उस गम्भीरता की ओर वह चलना नहीं चाहती थी जिधर उसे चंचला ले जाने का प्रयत्न कर रही थी। उसने तनिक सा मुसकराते हुए कहा—"बीबी, तुमसे एक बात कहूँ, नाराज़ तो न होगी ?"

चंचला ने आँखों में रस भर कर कहा—"भाभी, तुम भाई साहब की प्राणप्यारी हो तो मेरी भी तो प्राणप्यारी हुईं। ऐसी दशा में मैं तुमसे भला कैसे नाराज़ हो सकती हूँ ?"

पद्मा—"बहुत अच्छा। तो फिर मेरा एक कहना मानो। मैं तुम्हारी प्राणप्यारी हूँ तो मेरे पति देव तो तुम्हारे प्राणप्यारे

हुए ही। ऐसी दशा में तुम अपने प्राणप्यारे के साथ ब्याह करके कमला बाबू को हमारी प्रतिभा बीबी के हवाले कर दो तो बहुतों का कल्याण हो जाय। क्या मैं कोई बेजा बात कहती हूँ?"

"नहीं, नहीं, तुम भला कभी बेजा बात कह सकती हो!" मुँह से हलकी मुसकराहट के साथ यह कहते हुए चपल नयनों की भाषा में चंचला ने कह डाला कि तुम्हारे जैसी शरारत से भरी भाभी होना कठिन है।"

पद्मा ने कहा—"मैं तो सब के उपकार की बात ही कह रही हूँ, बीबी!"

चंचला—"अच्छा! लेकिन सो कैसे, क्या भाई साहब से वञ्चित हो जाने में तुम्हारा अहित नहीं है?"

पद्मा ने दृढ़ता के साथ कुछ गम्भीर स्वर में कहा—"मेरा तो अहित हो ही नहीं सकता। तुम्हारे रूप और तुम्हारी उम्र को देख कर क्या जज लोग तुम्हारे पतिदेव पर कुछ दया नहीं करेंगे और फिर तुम मोटर में बैठ कर सिफारिश भी तो करने जाओगी। फिर उनके छूटने में क्या संदेह? भला यह सब काम कहीं मुझसे हो सकता है, बीबी! लेकिन तुम्हारे ऐसा करने से मुझसे अधिक भला तो प्रतिभा बीबी का हो जायगा, उनके प्राणसर्वस्व किसी दूसरे के न होकर उन्हीं की गोद में बने रहेंगे। इतना काम तुम कर दो छबीली, तो हम लोग तुम्हारी बिना मोल की दासी बनी रहेंगी। क्या मेरा कहना मान लोगी?"

चंचला ने फिर उत्तर दिया—"तुम तो दिल्लगी करती हो, भाभी और इस कला में मैं अभी तुम्हारा सामना नहीं कर सकती। लेकिन अगर तुम्हारी बात में कुछ गम्भीरता भी हो और मेरे विवाह के कारण प्रतिभा दीदी का जीवन नष्ट हो रहा हो तो मैं

इस विवाह से इनकार कर सकती हूँ। सच बात यह है कि मैं तो विवाह ही नहीं करना चाहती, और चाहती भी हूँ तो किसी देश-भक्त पुरुष के साथ। सुना है, कमला बाबू देश भक्ति की ओर कुछ झुकाव रखते हैं। इसीसे इस विवाह का विरोध भी मैंने नहीं किया।"

पद्मा—"तुम देश-भक्त चाहती हो तो देश-भक्त तो तुम्हारे भाई साहब से अधिक कोई मिलेगा नहीं। तुम्हें पाकर शायद वह भी सुधर जायँ। इस तरह भी मेरा भला हो जायगा।"

चंचला ने बनावटी रोष का भाव दिखाते हुए कहा—"भाभी तुम मुझे अपने पास बैठने नहीं दोगी। लो मैं जाती हूँ।"

पद्मा ने चली जाती हुई चंचला का हाथ पकड़ कर बैठाया और कहा—"अब मैं तुमसे दिल्लगी नहीं करूँगी, गंभीर से गंभीर होकर तुमसे बातें करूँगी।"

इसी समय लक्ष्मी देवी ने चंचला को अपने पास बुलाया। चंचला पद्मा से विदा माँग कर चली गयी।

लक्ष्मी ने चंचला को बहुत आदरपूर्वक बैठाया और कहा—"बेटी, मैंने तुझे एक काम के लिए बुलाया है। आशा है, तू उसे अवश्य कर सकेगी।"

"माँ, अपनी शक्ति भर करने का यत्न करूँगी, कहो"—चंचला ने उत्तर दिया।

लक्ष्मी ने कहा—"तुम्हें शायद मेरे घर का इस समय का सारा हाल न मालूम होगा। बात यह है कि प्रतिभा के दादा उसका ब्याह यहां के पुलिस सुपरिंटेंडेंट बाबू रामलखन सिंह के साथ करना चाहते थे। किंतु बच्चा को यह नापसंद था। वे जानते थे कि प्रतिभा और कमलाशंकर में प्रेम है; इसलिए इन

दोनों के जीवन को प्रफुल्ल बनाने के लिए उन्होंने इनका विवाह कर डालना चाहा। बच्चा का यह काम मुझे भी नापसंद था। लेकिन क्या करती ? अकेला लड़का, आंखों का तारा, उसे झिड़क नहीं सकती, मार नहीं सकती, घर से निकाल नहीं सकती। जहां तक हो सकता, नाराज़ पिता को समझाने-बुझाने की ही कोशिश करती थी। लेकिन बात बढ़ती ही गयी और घर चौपट हो गया। तुम तो अपने ब्याह से संतुष्ट हो न बेटी ?"

चंचला ने उत्तर दिया—"अभी तो असंतोष के लायक कोई बात नहीं दिखायी दी।"

लक्ष्मीदेवी ने कहा—"माता-पिता जहां ब्याह कर दें वहीं लड़की को चुपचाप चली जाना चाहिए; हिंदुओं का यही प्राचीन आदर्श है; तुम इसका पालन कर रही हो, यह देख कर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। घोष की शैतान लड़की ने बबुई को न बहकाया होता तो मेरे घर में भी उपद्रव न खड़ा होता, बेटी।"

चंचला ने इन बातों के लिए 'हां' या नहीं कुछ भी न कर के कहा—"माँ, वह काम बताओ, जिसके लिए तुमने मुझे बुलाया है।"

लक्ष्मी देवी बोलीं—"हां, बेटी, वह काम यह है कि तुम किसी तरह बबुई को विवाह के लिए राज़ी करो। तुमने तो सुना ही होगा कि बाबू रामलखनसिंह घोष की रांड़ चुड़ैल के चक्कर में पड़ कर ईसाई हो गया और ठाकुर रणधीर सिंह को बच्चा के दादा की जान लेने का अच्छा बदला मिल गया।"

चं०—"हां, यह सब तो मुझे बाबू जी से मालूम हो चुका है।"

ल०—"तो अब रामलखन सिंह के साथ विवाह करने की तो जड़ ही कट गयी। मैं एक दूसरे बहुत अच्छे आदमी से बात चीत कर रही हूँ। वे गुणी पुरुष हैं, सज्जन हैं, प्रेमिक हैं। उसके योग्य वे बहुत अच्छे बर हैं। लेकिन बबुई तो कहती है कि मैं ब्याह नहीं करूँगी। इसी खब्त को यदि तुम दूर कर सको तो करो। बात यह है कि अगर बबुई का ब्याह न होगा तो बाबूसाहब की आत्मा को स्वर्ग में भी शान्ति नहीं मिलेगी। मेरा कलेजे का टुकड़ा इस समय हवालात में बन्द है; सरकार न जाने कैसा दण्ड उसे देगी। यह सब चिन्ता होते हुए भी जो छाती पर पत्थर रख कर मैं बबुई के विवाह के लिए यत्न कर रही हूँ, उसका कारण यही बाबू साहब का ख़याल है।

[४६]

दो तीन दिनों के बाद घोष-हत्या-अभियोग की कार्यवाही शुरू होने का समय आया। अभी सेशन्स जज नहीं आये थे, किन्तु उनकी अदालत में भीड़ के मारे अभी से बैठने के लिए तिल-भर जगह नहीं थी। अख़बारों के संवाददाताओं तक को कठिनाई पड़ रही थी। अजीत की भव्य मूर्ति का दर्शन करने के लिए प्रयाग के नवयुवकों की मण्डली टूट पड़ी थी। ज्योंही पुलीस ने अदालत के कमरे में उसका प्रवेश कराया और उत्कंठित नेत्रों ने अजीत को देखा त्योंहि अजीत बाबू की जय-घोष से कमरा गूँज उठा। अपनी प्रशंसा में इतनी उच्च, इतनी सच्ची, इतनी प्रभावशालिनी जन-गर्जना अभी तक उसने नहीं सुनी थी। आज उसने निश्चय कर लिया था कि सरकार से क्षमा माँग कर मैं अपने शत्रुओं के लिए भयंकर बनने का उद्योग करूँगा, परन्तु इस जय—जयकार ने उसके हृदय के अन्तरतम में सिकुड़ कर

बैठे हुए पद दलित अहङ्कार—भाव को फिर जाग्रत कर दिया। उसके चेहरे पर एक नूतन दीप्ति प्रकट हुई, उसका शिर ऊँचा हुआ। उसने मन ही मन कहा—पतित और प्रवञ्चित अजीत की इस लोकप्रियता का रहस्य क्या है? कहां तो मुझे यह आशंका थी कि सारा प्रयाग शहर मेरे मुँह में कालिख लगावेगा और कहाँ यह उलटी ही बात हो रही है। हाँ एक बात है—ये सब के सब नवयुवक हैं, सम्भवतः इनके चित्त में भी अभी वही भावनाएँ, वही कल्पनाएँ काम कर रही हैं जिनका कुपरिणाम इस समय मैं भोग रहा हूँ। अजीत ने अपने भक्त नवयुवक के भविष्य की कल्पना की और अपनी जैसी उनकी भी दशा होने का चित्र खींच कर कल्पना के नेत्रों से अत्यन्त एकाग्रता-पूर्वक उन्हें देखने लगा। कोई रो रहा था, कोई अपने आपको कोस रहा था, कोई ईश्वर को गालियाँ दे रहा था, कोई पत्थर की मूर्तियों को तोड़ रहा था और कोई क्रोध के मारे अपने नेताओं को अपशब्द कह रहा था। इस कल्पना और विचार श्रेणी ने स्वल्पकाल ही में अजीत के अधरों पर क्षीण हास्य की एक रेखा खींच दी। इस समय जिस किसी ने अजीत को मुसकराते देखा उसने यही कहा—देखो संकटकाल में भी अजीत बाबू कितने प्रसन्न हैं!

जो हो, क्षमा मांगने में बुद्धिमानी का जो अंश था उसके सम्बन्ध में अजीत को कोई शंका नहीं थी। परन्तु वह यह भी समझ रहा था कि यह विशाल जन समूह मेरी क्षमा-प्रार्थना का भाषा-चमत्कार देखने के लिए यहां नहीं आया है। ये लोग केवल मेरा तेजस्वी रूप देखने के लिए आये हैं। अब मैं क्या करूँ? क्या क्षमा-प्रार्थना करके इन्हें एकदम से निराश कर दूँ? अजीत बहुत बड़ी दुविधा में पड़ गया। उसके हृदय में इतना

तो कोई बारम्बार कह रहा था कि कुछ लोगों की मानसिक उत्तेजना के नशे की परितृप्ति के लिए जान बूझ कर अपना सर्वनाश नहीं किया जा सकता। किन्तु फिर थोड़ी ही देर में किसी ओर से यह आवाज भी आती थी—क्या लोक-मत के विरुद्ध आचरण करने का साहस तुम में है? इतने दिन तो लोक-मत की तुमने कोई परवाह नहीं की, क्या अब उसे मूर्खतापूर्ण और क्षणिक उत्तेजनाओं के अधीन रहने वाला जान कर भी उसके सामने तुम अपना सिर झुका दोगे? उसके नव जाग्रत अहम्भाव ने अपने सम्पूर्ण आवेग का बल क्षमा प्रार्थना के साथ साथ एक ऐसा भाषण करने के पक्ष में डाल दिया जिसमें नवयुवकों के बहुत शीघ्र प्रभावित होकर अनर्गल कार्य कर बैठने तथा अन्त मे पछताने की चर्चा भी की जाय। यह निश्चय करके अजीत स्थिर-चित्त हो गया।

इतने में राधिकाकान्त, हरिहर सुकुल, पं० सदाशिव मिश्र, काशी के कई वकील, डाक्टर किशनलाल, बाबू रामलखन सिंह तथा प्रयाग के प्रसिद्ध सरकारी वकील बाबू रतनचन्द्र आदि एक साथ ही अजीत को दिखायी पड़े। इन सब को देख कर और यह सोच कर कि इनमें से प्राय: सब मेरी सहायता के लिए प्रस्तुत हैं उसके शरीर में जैसे बिजली की शक्ति का संचार हो गया।

विशेष करके पं० सदाशिव मिश्र को तो देखना ही मानो निर्भयता का पाठ पढ़ना था। उनके मस्तक पर गौरव अङ्कित था और आँखों में तेजस्विता दीप्तिमान् हो रही थी। उनके चारों ओर सब लोग इस तरह खड़े थे जैसे सिंह के इधर उधर कुञ्जर-शावक खड़े हों। साधारण वेष-भूषा, साधारण शरीर, परन्तु इस एक व्यक्ति ने विचित्र तार्किक लेखन-शैली और अनुपम वक्तृत्व-शक्ति द्वारा भारत सरकार को कितना

हैरान कर रक्खा है । सदाशिव ! दादा के मरने के बाद से तुम्हीं मेरे दादा बन गये हो । मुझे जेल से छुड़ाने की उतनी चिन्ता शायद उन्हें न होती जितनी तुम्हें है । हरिहर सुकुल में दूसरे ऐब भले ही हों, परन्तु वह सीधा और सच्चा ब्राह्मण है, मेरी गिरफ्तारी का हाल सुना होगा तो शोक से विकल हो गया होगा । वाह रामलखनसिंह ! तुमने दिखा दिया कि ऐसे मनुष्य भी हो सकते हैं जिनका हृदय पत्थर का होता है । आह राधिकाकान्त ! मैंने अपने हृदय में तुम्हारे विरुद्ध कैसी मिथ्या धारणाओं को स्थान दिया था । मैं यह क्या जानता था कि तुम इतने त्यागी और सज्जन हो । और यह रतनचन्द ! मेरे घर से हजारों रुपये की फीस खाने वाला रतनचन्द, पैसे पर अपने आपको बेचने वाला नमकहराम रतनचन्द अब मुझे काले पानी भिजवाने की कोशिश करेगा । हाय री हृदय-शून्य व्यवहार-बुद्धि ! अजीत इन्हीं विचारों में डूबे हुए पुलीस की देख रेख में एक ओर बैठे थे ।

सब से पहले बाबू रतनचन्द ने अपने अभियोग का आरोपण किया । उन्होंने कहा—"अजीत साधारण राज-विद्रोही नहीं है । उसका युवक समाज पर बड़ा प्रभाव है । वह व्याख्यान-दाता और लेखक दोनों है । अपनी समस्त शक्तियों का प्रयोग उसने सरकार के विरुद्ध द्वेष का भाव फैलाने में किया है । यदि इस युवक की क्रियाशीलता बन्द नहीं की गयी तो यह निश्चित है कि इन प्रान्तों ही के नहीं, सम्पूर्ण देश के नवयुवक संहारात्मक प्रवृत्तियों से प्रभावित हो जायँगे और समाज की तथा सरकार की अपरिमित हानि होगी ।"

इस कथन के पश्चात् उन्होंने अजीत के राजविद्रोहात्मक कार्य्यों का उल्लेख किया, किसानों और मजदूरों के संगठन में उसके भाग लेने के रहस्य का उद्घाटन करने की चेष्टा की ।

जिस समय बाबू रतनचन्द अपना वक्तव्य पढ़ रहे थे उस समय पं० सदाशिव के चेहरे पर रह रह कर मुसकराहट आ जाया करती थी। मुसकराहट में निर्भयता और कष्ट के प्रति उदासीनता का भाव स्पष्ट रूप से अङ्कित था। उसे देख कर अजीत का पूर्व निश्चय आँच पाकर मोम की तरह पिघल गया। उन्होंने सोचा—मैं क्षमा नहीं माँगूँगा, अपनी हँसी तो उसमें होगी ही किन्तु वैसा करने से पं० सदाशिव के मुख में भी कालिख पुत जायगा। स्वार्थ का इतना अधिक भार अभी तो मेरा हृदय नहीं सहन कर सकता।

बाबू रतनचन्द ने घोष-हत्याकाण्ड को उपस्थित करते हुए कहा—"हुजूर, मिस्टर घोष की जिस शोचनीय हत्या का प्रत्यक्ष कारण बशीर अहमद नामक अभियुक्त है, उसके भीतर बड़े बड़े रहस्य हैं। हर्ष की बात है कि बशीर अहमद जो राजविद्रोहियों की मण्डली के फेर में पड़ गया था और अब अपनी मूर्खता के लिए पछता रहा है, इस मामले की तह तक पहुँचने में पुलीस की यथेष्ट सहायता कर रहा है।"

अजीत ने बड़ी उत्कण्ठा के साथ बशीर अहमद की ओर देखा। थोड़े ही दिनों की कैद की अवस्था में उसे पहचानना कठिन हो रहा था।

बाबू रतनचन्द ने फिर कहा—'अजीतसिंह राज-विद्रोही षड्यन्त्रों का मंत्री है और उसीने बशीर अहमद को उसकी स्त्री के सम्बन्ध में उलटी-सीधी बातें सुझा कर भड़काया तथा उसके हाथों मिस्टर घोष और मिस्टर मार्क की हत्या का प्रयत्न कराया। अतएव यह स्पष्ट हो जाता है कि वास्तव में ये राजनैतिक हथकंडे हैं और इनके लिए प्रधान रूप से अजीत सिंह ही उत्तरदायी है। यदि अराजकता के बीजारोपण से इस देश को बचाना है तो

अशान्ति का पाठ पढ़ाने वाले आन्दोलकों के संगठन को समूल नष्ट करना होगा और उसे नष्ट करने का एक मात्र सरल उपाय अजीत सिंह की क्रियाशीलता को नियन्त्रित करना है। अब मैं अपने कथन के समर्थन में हुजूर के सामने प्रमाण उपस्थित करने का प्रयत्न करूँगा। सब से पहले आप बशीर अहमद का बयान सुन लीजिए।"

इस समय रतनचन्द की निराधार मिथ्या बातों को सुनकर अजीत ने बड़ी कठिनाई से अपने क्रोध को सँभाल पाया। बशीर अहमद की बातों को सुनने के लिए उनका जी बेचैन होने लगा।

बशीर अहमद ने अजीत सिंह की ओर एक बार आग्नेय नेत्रों से दृष्टिपात करके कहा—"मैं लगभग साल भर से मिस्टर घोष के कारखाने में काम करता था! मैं बाबू अजीत सिंह के यहाँ प्रायः आया जाया करता था। वे भी मेरे यहां आया जाया करते थे। जब जब मेरी उनकी भेंट होती थी तब तब वे सरकार के विरुद्ध बातें किया करते थे। एक बार उन्होंने मुझसे कहा कि यह मिस्टर घोष और मार्क सरकार के बड़े चापलूस हैं और मेरे साथियों के मार्ग में ये इतनी अधिक बाधाएं उपस्थित करते हैं कि इनको संसार से विदा कर देना आवश्यक हो गया है। ये मेरी स्त्री पर मिस्टर मार्क के अत्याचार की कल्पित कहानियाँ गढ़ कर, मजदूरों में स्वयं और दूसरे सहकारियों द्वारा उन्हें फैला कर एक ओर तो मिस्टर मार्क के विरुद्ध मुझे भड़काते थे और दूसरी ओर मेरी स्त्री के साथ स्वयं भी अनुचित सम्बन्ध स्थापित करने का षडयन्त्र रचते थे! मेरी स्त्री मरी तो किसी रोग में किन्तु एक कल्पित पत्र द्वारा उसकी मृत्यु को अजीत बाबू ने आत्म-हत्या के रूप में परिणत

करके मेरी भावुकता को खूब ही उभाड़ा। फल यह हुआ कि उन्हीं की पिस्तौल लेकर मैंने यह काण्ड कर डाला जिसमें मेरा केवल इतना ही अपराध है कि मैं एक बेपढ़ा लिखा आदमी एक षडयंत्र प्रवीण के चक्कर में पड़ गया। अभी मार्क साहब ने परसों मुझे उस पत्र को दिखाया जिसे अजीत बाबू ने मेरी स्त्री के नाम लिखा था तब इनकी सब करतूत मेरी समझ में आ गई। मैंने तो हुजूर, बड़ा गहरा धोखा खाया। अब मालिक से विनती है कि मेरे ऊपर दया करें।"

बशीर अहमद के इस बयान को सुन कर अजीतसिंह की समझ में यह भलीभाँति आ गया कि कुछ देर पहले बशीर अहमद की दृष्टि से आग की चिनगारियां क्यों बरस रही थीं। अजीत निर्बल क्रोध के कारण कलेजा पकड़ कर रह गये।

इतनी कार्यवाही के पश्चात् जज साहब ने प्रथम दिवस का कार्य समाप्त कर दिया।

[४७]

अगली पेशी में सरकारी गवाह पेश हुए। यों तो सभी ने अण्ट शण्ट बातें कहीं, परन्तु मिस्टर मार्क, श्रीमती घोष, रामलखन सिंह आदि ने विशेष रूप से विष उगला। सरकारी गवाहों में श्यामलाल को देख कर और बाद को उसकी गवाही सुन कर तो अजीत की ऐसी दशा हो गयी कि उसे अपनी ही आँख, अपने ही कान, और अपने ही हृदय पर विश्वास नहीं रह गया। चारों ओर अंधेरा सा छा गया पृथ्वी क्या जाने कहां बेतहाशा उड़ती सी जाती हुई जान पड़ने लगी और उन्हें ऐसा मालूम होने लगा जैसे मैं अनन्त ऊँचाई से तल-रहित गर्त्त में ढकेल दिया गया हूँ।

पं० सदाशिव मिश्र ने इन सब से जिरह की और प्रायः

सभी गवाहों को खूब हैरान कर के अपने मतलब की बात निकाल ली और उसकी अनन्तराम वैद्य तथा अन्य अनेक गवाहों की गवाहियों से पुष्ट किया। उनकी ओजस्विनी वक्तृता अदालत के कमरे में किसी देव-दूत की वाणी के समान गूँज कर देशभक्ति-पूर्ण श्रोताओं को कभी पुलकित, कभी सजल-नयन और कभी ऊँची कल्पनाओं से उत्साहित करने लगी। उनके व्याख्यान में एक ओर तो साहित्य की छटा थी और दूसरी ओर कानूनी ज्ञान का वह प्रतिभाशाली प्रदर्शन था कि बाबू रतनचन्द्र और सेशन्स जज भी चकित, लज्जित से हो गए। इसके बाद जिरह का हवाला देते हुए प्रबल युक्तियों और तर्कों द्वारा अभियोग की निस्सारता को सिद्ध करके उन्होंने अजीत को हत्याकाण्ड में सर्वथा निर्दोष बताया। उनकी बहस कई दिनों तक लगातार चलती रही।

अन्त में बाबू रतनचन्द ने पं० सदाशिव के तर्कों का खंडन करके इजलास से प्रार्थना की कि यह अभियोग साधारण नहीं है और पं० सदाशिव मिश्र के व्याख्यान में अधिकतर थोथी, निस्सार और क्षुद्र दलीलों का आश्रय लिया गया है। अपने तर्कों को दुहराते हुए उन्होंने अभियुक्त को उचित दण्ड देने का अनुरोध किया।

जज ने दो दिन बाद निर्णय सुनाने की घोषणा करके उस दिन की कार्यवाही समाप्त कर दी।

[४८]

निर्णय सुनाने के दिन अदालत के कमरे में अन्य दिनों की तरह ठसाठस भीड़ थी। परन्तु, आज विशेषता यह थी कि सैकड़ों आदमी स्थान न मिलने के कारण बाहर भी खड़े थे। सब के चेहरों पर अद्भुत चिन्ता और उत्कण्ठा का भाव था।

पं० सदाशिव ने जिस अनूठी दक्षता के साथ बहस की थी उसका खयाल करके यदि कोई कहता था कि अजीत को साधारण कैद के अतिरिक्त और कोई दण्ड नहीं मिलेगा तो कोई कहता था—नहीं साहब, अजीत बाबू सरकार की आँखों में काँटे की तरह खटकते हैं, उन्हें वह कभी नहीं छोड़ेगी। ऐसे अनुमानों का अन्त तभी हुआ जब जज साहब आये। उनकी गम्भीर मूर्ति को देखकर उपस्थित लोगों में से जो अजीत बाबू से सहानुभूति रखते थे उनकी छाती धड़कने लगी। ज्यों ज्यों समय बीतता था त्यों त्यों हृदय आवेग से विकल होता था। अजीत ने तो सारी आशाओं को तिलाञ्जलि दे दी थी। अपने विश्वास-पात्र मित्रों में से कई के विश्वासघात से चुटीला होकर अब उनका हृदय इतना मजबूत हो गया था कि आजीवन कालेपानी की आज्ञा से भी उसे कष्ट होने की आशंका नहीं रह गयी थी। क्लेश सहन करने की प्रचण्ड शक्ति का उसमें उदय हो गया था।

अजीत ने अपने मन में कहा—"श्यामलाल ने सरकारी गवाही क्यों दी ? बशीर अहमद रामलखन के हाथों का खिलौना क्यों बन गया ? बाबू रतनचन्द ने मेरे पिता के सुपरिचित होने पर भी मुझे क्यों फँसाया ? इन प्रश्नों का उत्तर उन्हें यही मिलता था कि ये सब अपने स्वार्थ के साधक हैं। उनकी वर्तमान विचार-शृङ्खला ने उनके मस्तिष्क को फिर वहीं पहुँचा दिया जहाँ से उन्हें अनुभव होने लगा कि जनता के जयजयकार से मुग्ध और पं० सदाशिव मिश्र आदि का लिहाज करके सरकार से क्षमा-प्रार्थना करने से विरत होना फिर मेरे लिए हानिकर हो गया। क्या सरकार मुझे किसी भी शर्त्त पर छोड़ नहीं सकती थी ? वह मुझे जितना झुकाती मुझे उतना झुक जाना चाहिए

था। और फिर बाद को यहीं प्रयाग में रहकर मैं अपनी स्वार्थपरायणता की पराकाष्ठा दिखाकर इन नीच स्वार्थियों को भी एक बार नीचा दिखाने का अवसर पा जाता! किन्तु आदर्श की खोज ने, सौजन्य के व्यवहार ने जैसे संस्कार उत्पन्न कर दिये हैं उनके कारण चित्त में जो भीरुता और संकोचशीलता आ गई है वह तो जल्दी जा नहीं सकती। आह! मेरी मन्द बुद्धि कब तक मेरा पीछा न छोड़ेगी?

अब अजीत बाबू अत्यन्त गम्भीर होकर यह सोचने लगे कि भूतकाल में जो गलती हुई सो तो हुई, भविष्य में मेरा क्या मार्ग होना चाहिए। इस समय किसी संकोच, झिझक और आगापीछा के सामने सिर झुकाने को वह तैयार नहीं थे। आज उन्होंने दृढ़ निश्चय कर किया कि अब मैं संसार की समस्त विभूतियों को प्राप्त करने की चेष्टा करूँगा और उनके सम्यक् भोग से कभी विरत न हूँगा। निराकार ईश्वर स्वयं भी तो इस संसार का रस चखने के लिए मनुष्य का अवतार धारण करते हैं। भगवान् कृष्ण ने सोलह सहस्र गोपियों के साथ रमण किया। स्वयं महादेव को देखो न; पुराणों में उनके अनन्त विहार के वर्णन भरे पड़े हैं। क्षीरसागर में निवास करने वाले नारायण ही को लीजिए। समुन्द्र-मन्थन के पश्चात् निकलने वाले रत्नों में से लक्ष्मी, कौस्तुभमणि आदि बढ़िया चीजों को ही उन्होंने ग्रहण किया!

राजनैतिक जीवन में पड़ कर जिन अजीत ने ईश्वर को मूर्खों के मस्तिष्क की उपज, धर्म को ढोंग आदि कहना शुरू किया था, व्यभिचार-कथाओं से भरे पुराणों को जो सौ सौ गालियाँ देते थे, दुराचार-रत सनातनधर्म्मावलम्बियों की परछाईं से जिन्हें घृणा था वही अब थोड़े ही दिनों के फेरफार

से ईश्वर-भक्त, शंकर के, कृष्ण के प्रेमी और सनातन धर्म्म के नाम पर भारत भर के साम्प्रदायिक अखाड़ों और मन्दिरों में उस समय जो विकट मदनाराधना फैली हुई थी उसके प्रचण्ड पृष्ठ-पोषक हो गये। वह सोचने लगे—अंगरेजों में कितनी विलासिता है! ऐसा कौन सा अँगरेज पुरुष वा अँगरेज नारी होगी जिसने अपने यौवन-काल में नाच के क्लबों में मद्यपान से उन्मत्त होकर इच्छा के अनुसार जोड़े बनाकर नृत्य न किया हो। मुसलमानों में अकबर को देखो, अलाउद्दीन को देखो; हिन्दुओं में रणजीतसिंह को देखो, कहीं भी देखो, सभी ओर शक्ति-सम्पन्न पुरुष और स्त्रियाँ संसार के आनन्द का स्वच्छन्दता-पूर्व्वक उपभोग कर अपने जीवन को सार्थक करती हैं। हाँ, शर्त यही है कि भोग के साथ साथ शक्तिसञ्चय भी किया जाय। शक्ति के बिना भोग की सत्ता ही असम्भव है, क्योंकि ईश्वर के किसी गुप्त कानून के अनुसार कायरों को, निर्बलों को, और मूर्खों को भोग के पदार्थ मिल ही नहीं सकते। भोग से भोगने को जो शोचनीय प्रवृत्ति हिन्दू समाज में फैल गयी है, उसका कारण मूर्खता और कायरता है।

इधर अजीत अपने नव अनुभव के प्रकाश में सत्य की विवेचना में रत होकर अपना भावी कार्य्यक्रम निर्धारित कर रहे थे। उधर जज साहब ने अपना निर्णय सुनाना शुरू कर दिया; उन्होंने अजीत के पक्ष और विपक्ष की सभी मुख्य बातों का विश्लेषण करने के अनन्तर घोषित किया कि घोष-हत्या-काण्ड और राजविद्रोह दोनों के लिए अजीत को छः छः वर्ष का सपरिश्रम कारावास मिले, तथा दोनों सजाएँ साथ साथ चलें।

अधिकांश श्रोतागण इस कठोर दण्डाज्ञा की निन्दा करते

हुए तथा अजीतसिंह का दर्शन प्राप्त करके अपने अपने घर को चले। इस विपत्तिकाल में, जब अजीत स्वयं अधीर हो कर अपने चरित्र के सद्‌गुणों को एक एक कर के त्यागने का विकट निश्चय कर रहे थे; जन-समूह का उन्हें देखने के लिए उमड़ना आनन्द-वर्द्धक नहीं जान पड़ता था। वास्तव में वह उसे निरर्थक और केवल कौतूहल-रसिकता-द्योतक समझ कर प्रायः घृणा की दृष्टि से देखते थे। जनता को उनके इस मानसिक परिवर्तन का हाल क्या मालूम, वह तो केवल यही देखकर चकित थी कि इस युवक देशभक्त में कितनी निस्पृहता है, कीर्ति और प्रशंसा के प्रति कितना विरक्ति-भाव है, कितनी गम्भीरता है! आह! किसी को इस बात का क्या पता था कि कितने ही दिनों से अजीत का मस्तिष्क भट्ठी की तरह जल रहा है और जिन गुणों के कारण वह धन्य, धन्य कहा जा रहा था उन्हीं का संहार करने का उग्र संकल्प उसने कर डाला था।

उस दिन रात को अजीत एक काल कोठरी में, जिसमें दिन और रात दोनों समान समझे जाते थे, रखे गये। वह अपने इस निस्सार, प्राण-शोषक संकटमय जीवन और उससे किसी प्रकार मुक्ति मिलने की असम्भावना से बेतरह घबरा कर बड़ी देर तक चुपचाप सिसिक, सिसिक कर रोते रहे। रोते ही रोते वह सो गये और सो जाने की अवस्था में उन्होंने एक विचित्र स्वप्न देखा। उन्हें ऐसा जान पड़ा जैसे वह तरह-तरह के उपाय करके काल-कोठरी में से किसी प्रकार निकल गये।

जेल से निकलने के बाद वह थोड़ी दूर तक दबे पाँवों आकर फिर जोर जोर से चले। फिर सोचने लगे कहाँ

जाऊँ? घर तो अब घर नहीं रह गया था, क्योंकि वहीं से अत्यन्त सरलतापूर्वक वह फिर उसी जेल में पहुँचा दिये जा सकते थे जहाँ से, इतनी कठिनाइयों को पार करके उन्होंने मुक्ति पायी थी। परन्तु आज भी किसी अज्ञात प्रेरणा से प्रेरित होकर उनके पैर घर ही की ओर बढ़े। घोर अन्धकार था, आकाश में डेरा डाले हुए काले बादलों ने अन्धकार को और भी भयंकर बना दिया था। थोड़ी देर में अजीत अपने बँगले के फाटक के सामने आ गये। एक पेड़ के तने की ओट से उन्होंने देखा कि माली और कोचवान अपनी चारपाई बाहर निकाले सो रहे हैं। अजीत ने सोचा—डर किस बात का है, यही न कि फिर पकड़ लिया जाऊँगा। जब ओखली में सिर डाल ही दिया है तो मूसलों से क्या डर है? चलो, माँ से कहा था कि जल्दी ही आऊँगा, सो उसके दर्शन कर लूँ, दु:खिनी बहन को सान्त्वना दे दूँ, शान्ता के मुख को एक बार चूम लूँ। पद्मा की मैंने सदा से उपेक्षा की है, उसकी भोग-विलास की भावनाओं को कभी तृप्त नहीं किया है, उससे क्षमा माँग लूँ और यह कह कर कि अब जब ईश्वर फिर मिलावेगा तब मिलूँगा, तथा अपने प्यारे घर को अन्तिम नमस्कार करके किसी अज्ञात और अनिश्चित घर को प्रयाण करूँ। यह सोचते सोचते उसकी आँखों में आँसू आ गये। एक दिन वह भी था जब उन्होंने बँगले को त्याग कर कर्नलगञ्ज में किराये के मकान में रहना शुरू किया था। उस दिन उन्हें इस बँगले का वियोग तनिक भी नहीं अखरा था। किन्तु आह! आज तो न जाने कितनी भावुकता, मधुरता, सहृदयता से कोमल और सरस होकर लोहे और पत्थर से बना हुआ यह जड़ पदार्थ प्रेम के बन्धनों से कस कर अजीत को विवश बना रहा था। अपनी दशा देख कर उन्होंने सोचा—जो मुझे दूर ही से इतना

व्याकुल कर रहा है वह उस अवस्था में मेरी क्या दशा करेगा जब उसके प्रभाव को बढ़ाने में ममतामयी माता, बहन, बच्ची, स्त्री आदि का करुणा-जनक क्रन्दन सहयोग करने लगेगा ? आह ! मैं अभागा इन लोगों के अन्तिम दर्शन से भी वञ्चित रहूँगा।

इसी समय अन्धकार में अजीत सिंह को दिखाई पड़ा जैसे उनके दादा आधी धोती पहने और आधी को शरीर में लपेटे हुए, खड़ाऊँ पर खड़े खड़े उनसे कह रहे हैं—अभागे अजीत ! अब इस घर की चिन्ता तू क्यों कर रहा है ? तू ने तो उसे अपनी इच्छा से त्याग दिया था। मेरे प्राण लेने वाले हत्यारे ! जा अब तेरे लिए संसार में कहीं शान्ति से सोने के लिए भी स्थान नहीं है । मेरी अपार पीड़ाओं को अवज्ञा की दृष्टि से देखने वाले भ्रान्त युवक ! भाग जा, भाग जा, इसी में तेरा कुशल है। मेरी बातों को अब भी मान, नहीं तो पुलीस के कुत्ते तेरी बोटी बोटी नोच डालेंगे।"

इस कथन के साथ ही साथ एक विकट अट्टहास करके छायामूर्ति अन्तर्धान हो गयी।

अब अधिक सोच-विचार का समय नहीं था। घर के मोह-मय बन्धनों को शिथिल करके तथा निराशा के बल से बलवान होकर अजीत बाबू एक ओर को एकाएक दौड़ पड़े और उस घने तिमिर में न जाने कहाँ जाकर उन्होंने अपना घर बनाया।

सवेरा होते होते पुलीस ने अजीत के बँगले को चारों ओर से घेर लिया । साथ साथ बाबू रामलखनसिंह भी थे। सब के सब घबरा उठे। सोचने लगे—क्या अब और भी कोई विपत्ति आने वाली है । लक्ष्मी निस्संकोच भाव से रामलखन सिंह के सामने निकल आयीं और बोलीं—"अब तुम्हारी क्या इच्छा है ?

एक बूढ़े की हत्या से तुम्हारी तबियत नहीं भरी थी तो मेरे निरपराध बच्चे को जेल में चक्की पीसने के लिए ले गये। अब तुम क्या चाहते हो? तुम्हारे सन्तोष के लिए अब कौन सा बलिदान काफ़ी होगा? अँगरेजों को सब ने नाहक ही बदनाम कर रक्खा है, तुम्हारी तरह निर्दयी वे नहीं हो सकते।"

रामलखनसिंह ने हतप्रभ होकर कहा—"माँ, अजीत सिंह इस समय जेल में नहीं हैं। मुझे सन्देह है कि वे घर भाग आये हैं। मैं तलाशी लेना चाहता हूँ। सरकारी काम में रिआयत करना कठिन है।"

ल०—"तो मैं तुमसे दया की भीख नहीं माँगती हूँ। ठहरो, डाक्टर किशन लाल के आये बिना यदि पुलीस का कोई भी सिपाही मेरे मकान के भीतर पैर रखेगा तो मैं उसकी नाक काट लूँगी। वे पास के एक बँगले में हैं। उन्हें खबर देने के लिए मैं आदमी भेजे देती हूँ।"

लक्ष्मी के नेत्रों में वह तेज था, उसकी वाणी में वह बल था जो दुःख और आघात से उत्पन्न होता है। घोड़े पर चढ़े हुए हट्टे कट्टे रामलखन सिंह, दारोगा और सिपाही सभी इस वृद्धा के दृढ़ और ओजस्वी स्वरों से काँप से गये।

घोड़े के मुँह को फाटक की ओर फेरते हुए रामलखन ने अपने साथियों से कहा—"चलो, अजीतसिंह यहाँ नहीं है। तलाशी लेना व्यर्थ है। किसी स्त्री को इस तरह गरजते हुए मैंने कहीं नहीं देखा।" स्वप्न लोक के असंगत स्वच्छन्द विचरण में न जाने कहाँ और कैसे ये बातें अजीत सिंह के कान में भी पड़ गयीं। वह आनन्द का अनुभव कर ही रहे थे कि उनकी आँखें एकाएक खुल गयीं। जाग कर उन्होंने देखा कि मैं ज्यों का त्यों जेल की कालकोठरी में पड़ा हूँ। वह

बड़ी देर तक यही सोचते रहे कि क्या स्वप्न की बातें सच नहीं हो सकतीं ? क्या मैं स्वतन्त्र नहीं हो कसता ? क्या मेरे जीवन में अब सदा के लिए पतझड़ आ गया ? क्या अब उसमें वसन्त की नूतनता, मनोहरता, स्निग्धता और सुकुमारता का फिर संचार नहीं हो सकता ? क्या अपने प्रिय परिजनों के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन कर के पूर्व उपेक्षाओं, अपराधों और वर्तमान तथा भावी कष्टों के बदले में उचित रूप से क्षतिपूरण करने का अवसर अब मुझे किसी प्रकार नहीं मिल सकता ? मेरी किशोरावस्था में जब समय समय पर प्रीति-भोज दिये जाते थे तब शहर भर के रईसों, साहबों, मेमों आदि का जमघट होने से जो विचित्र चहल-पहल हो जाती थी क्या अब वह स्वप्न ही की बात हो गई। हाय ! क्या मेरा घर अब श्मशान ही बना रहेगा ? उसी समय उनके कानों में कहीं से यह आवाज आई —

जिन दिन देखे वे कुसुम गई सु बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब की अपत कटीली डार॥

साथ ही घने अन्धकार में दादा की अस्थिपञ्जरावशिष्ट मूर्ति देख कर और उसका विकट अट्टहास सुनकर उनका वीर हृदय भी काँप उठा। उन्होंने फिर अपनी आँखें मूँद लीं। परन्तु मुँदी हुई आँखों के परदे को चीरकर भी वह मूर्ति उनकी दृष्टि पर आरूढ़ हो जाती थी।

[४६]

लक्ष्मी देवी जब कभी हँसी करती थीं तो अपनी सरलता के कारण यह नहीं सोचती थीं कि जिससे मैं हँसी कर रही हूँ वह मेरी पौत्री होने के बराबर है। संध्या को जब चंचला उनके पास जाकर बैठी और पङ्खा झलने लगी तब उन्होंने कहा—"क्यों

बेटी, अपने ब्याह में मुझे कोई चीज भेंट करेगी या नहीं; अब सभी बातें उलटी होने लगी हैं तो लड़कियों को औरों से भेंट न लेकर स्वयं ही उन्हें देनी चाहिए। कुछ अनुचित तो नहीं कह रही हूँ ?"

चंचला ने कहा—"नहीं अम्मा, तुम अनुचित काहे को कहोगी, लेकिन तुमने किससे सुना है कि मेरा ब्याह होने जा रहा है ?"

"क्या कहा ? तेरे बाप से सुना है, और किससे सुना है ? क्या अब भी कोई बात छिपी है ?"—लक्ष्मी देवी ने चंचला के प्रश्न के स्वर से चौंक कर कहा।

चंचला ने कहा—"अम्मा, तुमने गलत सुना है। प्रतिभा दीदी का विवाह हुए बिना मैं विवाह नहीं कर सकती। मेरे विवाह की तिथियां एक बार टल कर अब टलती ही चली जायँगी। विवाह तो उत्साह से होता है, मुझे तब तक उत्साह का अनुभव नहीं हो सकता जब तक मैं प्रतिभा दीदी का प्रफुल्ल बदन नहीं देखती।"

लक्ष्मी देवी बहुत घबरा गयीं। कहीं सदाशिव मिश्र यह न सोच बैठें कि लड़की को लेकर यहाँ आये तो एक नयी बला गले पड़ी। वे बोलीं—"नहीं, नहीं बेटी ! तुम ऐसी बात मत कहो, कुछ पहिले या कुछ पीछे, बबुई का विवाह भी हो ही जायगा, उसके साथ साथ तुम भी एक अड़चन न खड़ी कर दो। नहीं तो, बेटी ! इसमें हमारी बड़ी बदनामी होगी, मिश्र जी हम लोगों से नाराज हो जायँगे। हम लोगों में बहुत दिनों का रब्त-जब्त है। मेरी प्यारी चंचला ! तुम ऐसी पागलपन की बातें करके हमारा अब तक का प्रेम खटाई में न डालो। देखो, मेरी बात मान जाओ। मान गयीं न ?"

चंचला ने उत्तर दिया—"मानने वाली बात कहो तो मान जाऊँ, अम्मा ! पर तुम तो ऐसी बात कह रही हो जो मेरे जी में जमती ही नहीं। विवाह का वह उत्सव दर्शनीय होता जिसमें बाबूसाहब अजीत बाबू और आप लोग प्रसन्नतापूर्वक सम्मिलित होतीं, किंतु, अब क्या होगा ? भाई साहब जेल में पड़े हैं और आप लोग अधमरी सी हो रही हैं। ऐसी दशा में आपने जो समाचार पाया है वह गलत ही हो सकता है।"

चंचला की इन सहृदयतापूर्ण बातों को सुनने पर लक्ष्मी देवी की आँखों से आँसुओं की धार बहने लगी।

× × × ×

संध्या समय सदाशिव मिश्र काशी जाते समय लक्ष्मी देवी से बोले—"देवी जी, बाबू साहब की अनुपस्थिति में प्रतिभा और चंचला को मैं अपनी बड़ी और छोटी लड़की समझता हूँ। किंतु यदि चंचला ने मुझे स्मरण न कराया होता तो निस्संदेह मैं प्रतिभा के प्रति अपने कर्तव्य को भूला जा रहा था। जो हो यह मैंने निश्चय कर लिया है कि पहले प्रतिभा का विवाह हो लेगा तब चंचला का होगा और आप लोगों को इस गाढ़े समय में धीरज बँधाने के लिए मैं चंचला को यहाँ छोड़े जाता हूँ। यह देखिए चंचला की चिट्ठी। लक्ष्मी देवी साधारण हिन्दी तो पढ़ ही सकती थीं। चंचला ने इस प्रकार लिखा था:—

पूज्य पिता जी;

यह आप कैसी बात कर रहे हैं कि प्रतिभा दीदी का विवाह हुए बिना ही मेरा विवाह कर रहे हैं ! आप को भले ही यह रुच रहा हो, पर मुझे तो अच्छा नहीं लगता। जिस समय भाई साहब जेल की काल कोठरी में बन्द हों और प्रतिभा दीदी शोक के मारे घुली जा रही हों, उस समय मेरा विवाह हुआ ही तो उसमें

क्या सरसता रहेगी ? पिता जी ! कृपा करके आप मेरे इस निश्चय से नाराज न हों कि प्रतिभा दीदी का विवाह होने के पहले मैं अपना विवाह नहीं करूँगी।

आप की पुत्री
चंचला

पत्र पढ़ने पर लक्ष्मी देवी की आँखों से प्रेमाश्रुधारा बहने लगी। मिश्र जी गाड़ी पर बैठ कर स्टेशन की ओर चले गये।

[५०]

अजीत की सजा हाईकोर्ट से भी बहाल रही। इस निर्णय से अजीत के घर वालों को तो जो आघात पहुँचा उनकी कल्पना नहीं की जा सकती। किन्तु हरिहर सुकुल, डा० किशनलाल, पं० सदाशिव मिश्र, बाबू राधिकाकान्त आदि को भी कम कष्ट नहीं हुआ। परन्तु इसका क्या कारण कि अजीत को संकट के दलदल में फँसाने वाली मिस घोष भी व्याकुल होकर रो रही थी ?

मिस घोष अजीत से अपने निराश प्रेम का बदला लेना चाहती थी। क्रोध के आवेश में उसने अजीत को अधिक से अधिक कष्ट मिलने की कामना की। किंतु आज जब उसने सुना कि अजीत बाबू को छः वर्षों के कारावास का दण्ड हाईकोर्ट द्वारा समर्थित कर दिया गया तब उसका कठोर हृदय भी विचलित हो गया। वह उस समय श्रीमती घोष के यहां बैठी थी। उसकी आँखों से झर झर आँसू झड़ने लगे और वह उन्हें रूमाल से छिपाने का उद्योग करने लगी। उसका पीड़ित हृदय आज अपने प्रियतम के लिए खुल कर रोना चाहता था। वह तेजी से अपने घर चली आयी और कमरा बन्द करके फूट फूट कर रोने लगी।

"मैंने अजीत बाबू को सताने में इन राक्षसों का इतना क्यों साथ दिया ? मुझ पर यह कैसा भूत सावर हो गया था ?"—

मिस घोष ने अपने आप से पूछा। बशीर अहमद की स्त्री के साथ उनका जो अनुचित सम्बन्ध हो गया था, क्या उसी अपराध के लिए मैंने उन्हें इतना अधिक दण्ड दिया है ? किंतु यदि मैंने उन्हें यह दण्ड दिया तो पागलपन में डूब कर रामलखनसिंह को आत्म-समर्पण कर देने के कारण अपने को अब कौन सा दण्ड दूँगी ? हाय मैं कितनी अभागिनी हूं, मेरी बुद्धि कितनी विकृत हो गयी है ! मैं अपने ही हाथों उस पर कुल्हाड़ी मारती हूं जो मेरे जीवन का आधार है !

मिस घोष की दशा आज उस जुआरी की सी थी जो अपने पागलपन में तो यह समझता हो कि मैं जीतता ही चला जा रहा हूं, लेकिन जिसे अन्त में समझ पड़े कि मैं तो सरबस हार गया। वेदना की पराकाष्ठा में उसने देखा, मानो जेल की पोशाक पहने अजीत बाबू उसके सामने खड़े हैं और कह रहे हैं—मिस घोष ! मुझे मिस्टर मार्क और रामलखन सिंह के षड्यन्त्र का खेद नहीं है, किंतु उस षड्यन्त्र में तुम्हारे सम्मिलित होने का बहुत बड़ा कष्ट है। क्या सच्चा प्रेम इसी को कहते हैं ? मुझमें अनेक त्रुटियां भले ही रही हों, लेकिन क्या निस्वार्थ स्नेह की आराधिका नारी अपने प्रेमपात्र की दुर्बलताओं को क्षमा नहीं कर सकती ? तुमने क्षमा करना तो दूर, इतनी अधिक क्रूर हिंसा का परिचय दिया और मेरे घातक शत्रु की प्रेयसी बन जाने में भी संकोच नहीं किया। ऐ पिशाचिनी ! पवित्र प्रणय के मर्म को न समझने वाली ऐ मन्द-भाग्ये ! क्या यह जघन्य कर्म करके तू शांति की आशा रखती है ? अधम नारी ! तू और शांति तो दो विरोधिनी वस्तुएँ हैं ! मैं तो छः वर्ष के कारावास का क्लेश झेल कर फिर घर पर आ जाऊँगा, लेकिन तू जीवन भर अशांति की ज्वाला से जलती रहेगी । तेरा किसी

प्रकार भी उद्धार सम्भव नहीं है। मिस घोष ने देखा कि यह कह कर क्रोध से उन्मत्त अजोत बाबू अपने चेहरे से मिस घोष के प्रति अत्यधिक घृणा का भाव व्यञ्जित करते हुए चले गये। मिस घोष मूर्छित हो गयी।

[५१]

एक दिन मिस्टर मार्क का चाभियों का गुच्छा मेज पर ही छूट गया। कारखाने से उनके लौटने में देर समझ कर मिस घोष ने आज कौतूहलवश चाभियों से बक्सों को खोल कर उनमें रखी चीजें देखनी शुरू कीं। एकाएक दो बहुत ही अमूल्य चीजें उसके हाथ लगीं। यह मिस्टर घोष की डायरी में लिखित एक टिप्पणी और मिस्टर मार्क के नाम लिखी उनके मित्र की एक चिट्ठी थी।

मिस्टर घोष की टिप्पणी इस प्रकार थीः—

"मेरी लड़की इजाबेला का वास्तविक जीवन-रहस्य जिस दिन प्रगट होगा उस दिन इलाहाबाद के हिन्दू समाज और ईसाई समाज में सनसनी फैल जायगी। एक ईमानदार ईसाई की हैसियत से मुझे इस लड़की को अपने पास रखने का कोई अधिकार नहीं था। क्योंकि इसके पिता ने इसे पाने की बड़ी कोशिश की और उस कोशिश का हाल मुझे मालूम है। ईसाई तमाम हिन्दुस्तान को ईसाई बना डालना चाहते हैं। उनकी यह इच्छा कहां तक उचित है, मैं नहीं कह सकता। मैं स्वयं ऐसा ही चाहता हूँ, इसलिए इसके औचित्य, अथवा अनौचित्य पर ठीक ठीक विचार नहीं कर सकता। किन्तु, इतना मैं कहूँगा कि इस लड़की को अपने पास रख कर मैंने पाप किया है—वह पाप जिसका प्रायश्चित करने की शक्ति मुझमें नहीं है। यदि मेरे जीवन के बाद अपना सच्चा परिचय प्राप्त करके यह

लड़की (हिन्दू नाम उषा देवी) अपने भविष्य का स्वरूप आप ही निर्धारित करे, तो सम्भव है, सामयिक संस्कारों से मुक्त मेरी आत्मा को शान्ति ही मिले।"

इस पत्र को पढ़ कर मिस घोष उछल पड़ी।

किन्तु दूसरे पत्र को भी पढ़ने की उत्कण्ठा ने उस समाचार से मिलने वाले आनन्द को थोड़ी देर के लिए दबा दिया। वह उसे पढ़ने लगी। उसमें मार्क साहब के मित्र महोदय ने लिखा था:—

प्रिय मिस्टर मार्क;

रज़िया पर अधिकार करने के मार्ग में आप की समझ में जो कठिनाइयां हैं वे मेरी दृष्टि में नगण्य हैं। बशीर को कहीं काम से भेज कर रज़िया के पास हम सहज ही पहुँच सकते हैं। यही नहीं, रज़िया से हम अपने मतलब की कारवाई भी कर सकते हैं। उससे हम एक ऐसा पत्र लिखा सकते हैं जो अजीत को भी फँसा दे।

आप का

वही

इस पत्र ने मिस घोष की आँखें खोल दीं और उसे मिस्टर मार्क के घर में एक मिनट भी रहना खलने लगा। उसने तुरन्त ही चंचला के नाम एक पत्र लिखा।

इसके बाद उसने चपरासी भेज कर बशीर को बुलवाया और मिस्टर मार्क के कपट की कहानी उसे सुनायी। उसे सुन कर वह चुपचाप चला गया, लेकिन मिस घोष ने देखा कि उसका रास्ता वह नहीं था जो कारखाने की ओर जाता था।

[५२]

प्रतिभा के विवाह के संबन्ध में हरिहर सुकुल को लक्ष्मी

की चिन्ता से मुक्त नहीं होने देगी ? अविवाहित लड़कियों के सामने कितने संकट रहते हैं, क्या तुम उन्हें नहीं जानती हो बेटी ?"

प्रतिभा ने कहा—"अम्मा तुम्हारी जो आज्ञा हो सो मैं करूँ। लेकिन घर मेरे ही कारण सत्यानाश हो गया और अब क्या यह उचित होगा कि मैं विवाह करके तुम्हें यहाँ अकेली वेदना की ज्वाला में जलने के लिए छोड़ जाऊँ ? अम्मा, मैंने तुम्हारा इतना अपकार किया है, क्या उस अपकार के दण्ड-स्वरूप ही मुझे तुम अपने चरणों से भी पृथक कर दोगी ? कहीं ऐसा न हो कि तुम से अलग होकर मेरे प्राण भी मुझसे अलग हो जायँ।"

यह कह कर प्रतिभा फूट फूट कर रोने लगी। लक्ष्मी देवी के पास कोई तर्क न था। वे निराश होकर हरिहर सुकुल के मुख की ओर देखने लगीं।

हरिहर सुकुल की वाणी को जैसे लकवा मार गया।

प्रतिभा ने फिर कहा—"अम्मा, तुम्हें संदेह होगा कि मैं अपने दिन कैसे पार करूँगी ? सो मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि आग में तप कर ही सोना खरा होता है। अपने सोने से घर के सर्वनाश में मुझे जीवन की खरी से खरी शिक्षा ज्वलन्त अक्षरों में लिखी हुई मिली है। मैं तुम्हारी सेवा करूँगी, भाभी की सेवा करूँगी, शान्ता की सेवा करूँगी, अन्य दुखी जनों की सेवा करूँगी। क्या इन्हीं कार्य्यों में मेरा यह जीवन पार न हो जायगा ? यह विश्वास रक्खो, माँ, कि जो कुछ हो गया, सो हो गया किन्तु भविष्य में तुम्हारी प्रतिभा तुम्हारा शिर नीचा नहीं होने देगी। उसे एक अवसर और दो माँ, केवल एक अवसर।"

लक्ष्मी देवी ने कहा—"और चंचला का क्या होगा ? उसके

अविवाहित रहने से तो मेरे हृदय पर बड़ा भरी बोझ पड़ा रहेगा, बेटी ! उस बोझ को उतार कर क्या तुम मुझे हलका न होने दोगी ?"

"चंचला को मैं समझाऊँगी"—प्रतिभा ने उत्तर दिया।

लक्ष्मी देवी ने कहा—'अच्छा जाओ'।

प्रतिभा चली गयी।

हरिहर सुकुल इस बीच में प्रतिभा के उस चेहरे और चाल ढाल से आज के चेहरे और चाल ढाल की तुलना कर रहे थे जब उन्होंने उसके हाथ की रेखाएँ देख कर बाबूसाहब को उनका प्रभाव बताया था। थोड़े ही समय के भीतर कितना गहरा परिवर्तन ! इस तुलना से आज उन्हें प्रतिभा के व्यक्तित्व की महत्ता का ऐसा परिचय मिला जिससे उन्हें दृढ़ विश्वास हो गया कि उनका चरित्र बहुत उच्च है और वह अपने जीवन में एक आदर्श हिन्दू नारी सिद्ध होगी।

लक्ष्मी देवी ने कहा—"सुकुल जी ! देखा आपने इस लड़की का हाल ? इसकी व्यथा को देख कर मैं अपनी व्यथा भुलाती हूँ, उस ईसाइन लड़की के चक्कर में पड़ कर इसने एक गलती कर डाली, लेकिन उस गलती के लिए इसके हृदय में कितना परिताप है, कितनी वेदना है, यह आप देख ही रहे हैं।"

सुकुल जी—"देवी जी, मेरी सम्मति है कि प्रतिभा की प्रार्थना स्वीकार कर लें। वास्तव में वह आप के लिए बहुत बड़ा त्याग कर रही है। अन्य कोई भी साधारण लड़की इन घटनाओं पर इस प्रकार दृष्टिपात न करती, और न इतनी व्याकुलता का ही अनुभव करती । मुझे यह जान

पड़ता है कि इसके विवाह में जबर्दस्ती करना भी अनिष्ट का कारण होगा।"

लक्ष्मी देवी ने कातर स्वर में कहा—"किन्तु चंचला के लिए मैं क्या करूँ? वह तो प्रतिभा से बहुत छोटी है और अनुभव भी उसका बहुत कम है।"

सुकुल जी कुछ कहने ही वाले थे कि भगवान चपरासी ने कुछ दूर ही से कहा—"हुजूर, पण्डित जी को बाबू रामलखन सिंह का आदमी ढूँढ़ता ढूँढ़ता यहाँ आया है।"

लक्ष्मी देवी ने प्रणाम किया और यह कह कर कि फिर शीघ्र ही मिलिएगा, उनको बिदा किया।

आदमी ताँगा लेकर आया था। सुकुल जी उस पर बैठ कर बाबू रामलखन सिंह के यहाँ चले।

[५३]

बाबू रामलखन सिंह अपनी पत्नी श्रीमती मेरी की सभी बातों को पसन्द करते थे। परन्तु उसकी स्वच्छन्दता उनकी आँखों में काँटे की तरह खटकती थीं। कहीं कलेक्टर के साथ कहीं जज के साथ कहीं कमिश्नर के साथ वह घूमने जाती तो आधी रात और कभी उससे भी अधिक देर कर के आती थी। यह बात अँग्रेजी शिष्टाचार के विरुद्ध भले ही न हो लेकिन रामलखन तो यही समझते थे कि पति का पूरा अधिकार मुझे नहीं प्राप्त है। हृदय के भीतर ये भाव बहुत समय तक पड़े रह कर सन्देह, और असन्तोष की जड़ मजबूत करते रहे। इसी बीच ठाकुर रणधीर सिंह की मृत्यु का समाचार और उनका एक पत्र घर के एक आदमी ने एक साथ ही उन्हें दिया। पत्र में रणधीर सिंह ने लिखा था:—

मेरे प्यारे पुत्र;

बाबू जगजीवन सिंह की आत्मा को दुखी करने का फल मुझको मिल गया। आज या कल मैं इस संसार से कूच कर जाऊँगा। अब तुम दो एक और मेमों के साथ ब्याह करके अपने कुल का मुख उज्ज्वल कर देना। न मैंने तुम्हें अपनी बीमारी का समाचार दिया और न मरने का समय समीप आने पर तुमसे यही कहूँगा कि अपना मुँह दिखा जाओ।

तुम्हारा

रणधीर सिंह

इस पत्र ने और साथ ही मृत्यु-समाचार ने रामलखन के मस्तिष्क में आग सी लगा दी। उन्हें पिता की बहुत सी भलाइयाँ याद आयीं और उनकी आँखों से आँसू के रूप में शायद वह पागलपन थोड़ा थोड़ा निकलने लगा। जिसके वशीभूत होकर उन्होंने मेरी के साथ ब्याह किया था।

× × × ×

अस्पताल से मुक्त होने पर मिस्टर मार्क शीघ्र ही हट्टे-कट्टे हो गये। श्रीमती मेरी अकसर उनसे मिलने आया करती थीं। मिस्टर मार्क भी उनसे मिलने प्रायः जाया करते थे। वे जब जाते तब यही रोना रोते थे कि आप के चले आने से बँगले में तबियत नहीं लगती। यह सुन कर श्रीमती मेरी मुसकरा देती थीं।

एक दिन मिस्टर मार्क ने श्रीमती मेरी को अपने यहाँ बुलाने का षड्यन्त्र रचा। सबेरे से ही कारखाने में काम करने के लिए न जाकर उसने बीमारी का ढांग रचा और रात के दस बजे मेरी के पास निम्नलिखित पत्र लिखाः—

मान्य माता जी;

आज सबेरे से ही बीमार पड़ा हूँ। रह रह कर आपकी याद आती है। कृपा कर के एक बार देख जाइए। दिन तो किसी तरह कट गया किन्तु रात आप के आये बिना सकुशल नहीं बीतेगी। मिस घोष से मैं कोई भी सहायता नहीं पा रहा हूँ। आशा है, इस पत्र को देखते ही आप आवेंगी।

आप का

ई. मार्क

यह पत्र चपरासी के हाथ से पाने पर जब श्रीमती मेरी ने मिस्टर मार्क के पास जाना आवश्यक समझ कर बाबू रामलखन से यह चर्चा छेड़ी तब वे एक दम से आग बबूला हो उठे और बोले—"तुम चाहे मिस्टर मार्क के यहाँ जाओ, चाहे भाड़ में जाओ। तुम्हारे यारों के मारे तो मेरी नाक में दम हो गया।"

इन शब्दों को सुनते ही मेरी के क्रोध का पारा बहुत ऊँचे चढ़ गया। वह स्वतन्त्रतापूर्वक प्रत्येक स्त्री-पुरुष से मिल सकना अपने अधिकार की बात समझती थी। विवाहिता पत्नी होते हुए भी वह स्त्रियों अथवा पुरुषों में चाहे जिससे मित्रता का सम्बन्ध रख सकती थी और इसमें पति को हस्तक्षेप करने की तनिक भी गुञ्जाइश नहीं थी—यह मेरी का मत था। मेरी इंग्लैण्ड की लड़की थी, जहाँ इस स्वतन्त्रता पर आक्षेप करने वाला व्यक्ति होश हवास में रहने पर भी पागल करार दे दिया जाय। रामलखन की ओर एक दृष्टिपात करते हुए—जिसका स्पष्ट अर्थ था कि तुम बिलकुल ही असभ्य और अशिक्षित जान पड़ते हो—उसने अंगरेजी में कहा—"आप ने जो शब्द अभी कहे हैं, उनसे आप का क्या मतलब है? क्या आपने मुझे रंडी समझ लिया

है जो मेरे लिए यारों की कल्पना आप कर रहे हैं? मार्क मेरा लड़का है या मेरा यार है? अभी आपको शिष्टाचार—सम्बन्धी शिक्षा की बहुत आवश्यकता है। मैंने गलती की जो आपके साथ विवाह किया।"

यह कह कर मेरी ने मोटर तैयार होने के लिए आज्ञा दी। रामलखन सिंह सन्न रह गये। मेरी के उग्र रूप में भविष्य के न जाने कितने संकटों की छाया देख कर वे श्रीहत हो गये। अपने से ऊँचे पदाधिकारी के सामने वे कभी ऐसे हतप्रभ नहीं हुए थे जैसे आज दिखायी पड़े। उनको इसी अवस्था में छोड़ कर श्रीमती मेरी मोटर पर मिस्टर मार्क के यहाँ चल पड़ीं।"

रामलखन सिंह बड़ी देर तक विचार में डूबे अपनी गलती पर पछताते रहे। सारी रात उन्होंने मेरी की प्रतीक्षा में काटी, किन्तु मेरी सबेरे तक न आयी। सबेरा होने पर जब वे चारपाई पर से उठे और अपने ही आपसे बोले—"क्या करूँ? उसी समय शायद उनका मजाक उड़ाने के उद्देश्य से कोयल भी बोल उठी 'कू'।

[५४]

चंचला प्रतिभा के कमरे में जा ही रही थी कि जंजाली ने कहा—"छोटी दीदी, आपके नाम मार्क साहब की बहिन का यह पत्र एक चपरासी लाया है। जवाब के लिए खड़ा है। चंचला ने लिफाफा खोल कर पढ़ा। मिस घोष ने लिखा था:—

प्रिय बहिन चंचला!

तुम्हारे करुणामय स्वभाव के भरोसे ही मैं आज तुमसे एक प्रार्थना कर रही हूँ। वह यह कि बाबू राधिका-

कान्त से मेरा परिचय करा दो। तुम शायद इसे दिल्लगी समझोगी क्योंकि तुम्हें यह मालूम होगा ही कि राधिका बाबू मुझे पढ़ाते थे। निस्संदेह शिष्या मिस घोष रूप में मैं उनकी परिचिता हूँ, लेकिन उनकी सगी छोटी बहिन उषा देवी के रूप में नहीं। इसके प्रमाण स्वरूप मिस्टर घोष की डायरी का एक पृष्ठ मैं तुम्हारे देखने के लिए भेज रही हूँ। आशा है, इस पत्र का उचित उत्तर देकर तुम मुझे कृतार्थ करोगी।

तुम्हारी बहन
उषा देवी

इस पत्र को पढ़ कर चंचला अचम्भे में डूब गयी। शीघ्र ही उसने इसे श्रीमती लक्ष्मी देवी, पद्मा, और प्रतिभा आदि को दिखाया। लक्ष्मी देवी ने पं० हरिहर सुकुल को बुलवाया और उनसे पूछा कि इसमें कोई छल-कपट तो नहीं है। सुकुल जी ने मिस्टर घोष की लिखावट पहिचानी और कहा—"इसमें कोई शक नहीं कि उषा देवी का उद्धार होना अत्यन्त आवश्यक है। आज संध्या समय दोनों को बुला कर परिचय करा दीजिए।"

ल०—"केवल परिचय कराने से तो काम नहीं चलने का। क्या राधिका बाबू उसे अपनी बहन के रूप में स्वीकार करेंगे? और अगर न करें तो क्या शास्त्रों की आज्ञा से उन्हें करना चाहिए?"

सु०—"देवी जी, उषा अपने अपराध से ईसाई कुटुम्ब में नहीं गयी थी और अब यदि अपनी इच्छा से अपने घर में आना चाहती है तो उसे कौन मना कर सकता है? राधिका

बाबू उसे क्यों न स्वीकार करेंगे ? मैं अभी उनके पास जा रहा हूँ । संध्या समय यहाँ आने के लिए उनसे कह दूँगा।

ल०—"अच्छी बात है ।"

× × × ×

लक्ष्मी देवी की अनुमति से चंचला ने मिस घोष के पत्र का निम्नलिखित उत्तर दिया—

प्रिय बहन उषा देवी,

आपका कृपा पत्र मिला। इधर कुछ समय से आप हम लोगों से बहुत दूर जा पड़ी थीं। हर्ष है कि आप बहुत मनोहर रूप में प्रगट हो रही हैं। मैंने संध्या समय राधिका बाबू को बुलाया है। वे अवश्य ही आवेंगे। उसी समय आप भी आ जायं! मेरी समझ में आप कुछ सबेरे ही चली आवें।

आपकी छोटी बहन
चंचला

चंचला ने यह पत्र जंजाली को दे दिया। उसने उसे बरामदे में जाकर चपरासी के हवाले किया।

चंचला का उत्तर पढ़ कर मिस घोष को बहुत संतोष हुआ। उसने चार बजे बाबूसाहब के बँगले पर जाने का निश्चय किया।

[५५]

सूर्य्यास्त होने के बाद राधिकाकान्त आये। पं० हरिहर सुकुल ने उन्हें केवल इतना बताया था कि संध्या को उन्हें अजीत बाबू के घर पर जाना चाहिए। इसलिए वे सहज भाव से आकर बरामदे में बैठे।

चंचला को राधिकाकान्त के आने का समाचार ज्यों ही मिला वह मुसकराती हुई उनके पास आयी और बोली—"भाई

साहब, अगर मैं अपनी बड़ी बहन श्रीमती उषा देवी से आप की भेंट करा दूँ तो आप मुझे मिठाई खिलाएँगे या नहीं ?"

राधिकाकान्त ने चौंक कर कहा—"उषा देवी ! उषा देवी कौन ? तुम्हारी बड़ी बहन अब तक कहाँ थी ? मैं तो अब तक यही जानता हूं कि तुम्हारे कोई बड़ी बहन नहीं है ।"

यह कहते समय राधिकाकान्त का ध्यान एकाएक प्रतिभा की ओर चला गया। उन्होंने सोचा कि प्रतिभा ही को यह अपनी बड़ी बहन कहती होगी। परन्तु विषादमयी प्रतिभा से भेंट कराने के लिये चंचला मिठाई क्यों माँगेगी ? चंचला की बातों का सम्बन्ध हृदयगम न होने से राधिकाकान्त संकल्प-विकल्प में पड़ गये।

चंचला ने कहा—"भाई साहब, आप मिठाई खिलाने तक के लिए हामी नहीं मारते, फिर मैं आप से उस बहन की भेंट कैसे कराऊँ, जिसे आप ने अठारह-उन्नीस वर्षों से न देखा होगा।"

राधिकाकान्त को अपनी उस छोटी सी बहन उषा देवी का स्मरण हो आया जिसका पता लगाने के लिए उनके पिता ने कुछ उठा न रक्खा था, किन्तु जो खोई जा कर फिर कभी न मिल सकी। उन्होंने अधीर होकर कहा—"चंचला ! क्या तुम सच कहती हो ? क्या तुम मेरी उस नन्हीं सी उषा बहन से मिला दोगी। यदि यही बात हो, तो देर न करो, मैं बहुत उत्कंठित हूं।"

मिस घोष पास ही दीवाल की ओट में खड़ी होकर राधिकाकान्त की बातें सुन रही थी। चंचला भीतर गयी और उसे लिवा कर चली आयी। मिस घोष ने राधिकाकान्त के चरणों पर गिर

कर प्रणाम किया। इसके बाद सिर नीचा कर के वह एक ओर को खड़ी हो गयी।

राधिकाकान्त ने कहा—"चंचला, तुम तो खड़ी हो। जाओ उषा देवी को लिवा आओ।"

"उषा देवी आपके सामने खड़ी हैं"—चंचला ने कहा।

राधिकाकान्त अधिक विस्मय में न पड़े, इस उद्देश्य से मिस घोष ने मिस्टर घोष की डायरी का वह पृष्ठ जो उसके पास था, उनके हाथों में रख दिया। उसे पढ़ने के बाद राधिकाकान्त की आंखों में आँसू भर आये।"

उषा ने कहा—"भाई साहब! अजीत बाबू का मैंने जो कुछ विरोध किया उसका कारण मिस्टर मार्क का षड्यन्त्र था।"

यह कह कर वह फूट फूट कर रोने लगी।

इस करुण दृश्य को सहन करने में असमर्थ होकर राधिकाकान्त वहां से उठ कर बाहर चले गये और इस बहन के परिचय से जो नवीन समस्या उनके सामने खड़ी हो गयी थी उस पर विचार करने लगे।

[५६]

मुकुन्द जी ने शास्त्र-विधि से एक दिन मिस घोष का संशोधन संस्कार किया। लक्ष्मी देवी ने उषा को ग्रहण करने में जो उदारता दिखायी उससे सभी लोग चकित हो गये। किन्तु यह जो कुछ हुआ उसे, उनकी विवशता ही समझनी चाहिए। उनका पूर्व संस्कार कहता था कि यह ईसाई के घर में पली हुई लड़की है, इसे अपने घर में कैसे रहने दूं? किंतु राधिकाकान्त का सहृदयतापूर्ण व्यवहार, और स्वयं उषा की मुद्रा, सेवा परायणता और उसके रोम रोम से हिल मिल के रहने की इच्छा प्रगट होती देख उनके हृदय का मानवता-

प्रभावित भाग कहता था कि क्या हर्ज है, जैसे हम लोग दुखी हैं, वैसे ही एक दुखिया वह भी तो है, उसे भी क्यों न पड़ो रहने दें।

मिस घोष के सहसा परिवर्त्तन से प्रतिभा पद्मा सभी पर प्रभाव पड़ा। उस दिन की याद करके जब उसने प्रतिभा के सामने अजीत के विरुद्ध भयङ्कर आरोप लगाये थे, मिस घोष बारम्बार आँखों से आँसू बहाती और आहें भरती। इस तरह दुःखिनी प्रतिभा की अब वह सच्ची कपट-शून्य और सरल संगिनी हो गयी। शान्ता की सेवा का सारा भार अपने हाथ में लेकर उसने पद्मा को भी क्रमशः आकर्षित कर लिया। लक्ष्मी देवी के लिए तो वह रीढ़ की हड्डी की तरह अवलम्ब दायिनी हो गयी। मानो यह विश्वास दिलाने के लिए कि संसार में आनन्द का लोप और विषाद ही का साम्राज्य नहीं हो गया है, पद्मा का आधार लेकर चंचला और उषा के मानस से अद्भूत परिहास-लहरी कभी सिर उठा कर उस बँगले के आँगन में झाँकती थी। लक्ष्मी और प्रतिभा के दुःख के बोझ से दबा हुआ हृदय भी इस तरङ्गमाला का स्वागत करके वेदना सहन कर लेने की नूतन शक्ति प्राप्त कर लेते थे। पद्मा तो उसमें स्नान करने के लिए अवसर ही ढूँढ़ा करती थी।

[५७]

धीरे धीरे छः वर्ष बीत गये।

रात के लगभग ९ बजे थे। लक्ष्मी देवी खुली छत पर प्रतिभा से कोई पौराणिक कथा पढ़वा कर सुन रही थीं, थोड़े दिनों से बनारस से आयी हुई चंचला भी वहीं बैठी थी।

नौकर-चाकर अपने काम पर मुस्तैद रहते हुए भी उतनी स्वतन्त्रता ले रहे थे जितनी इलाहाबाद की जेठ की रातों में लेना

अनिवार्यतः आवश्यक था। इसी समय एक सरकारी मोटर आयी और अजीत को फाटक पर उतार कर चली गई।

अजीत बाबू थोड़ी देर तक तो फाटक से आगे हिलडुल न सके। इसी दिन के लिए, इसी स्वतन्त्रता के लिए छः वर्ष के दिन और छः वर्ष की रातें उन्होंने गिनगिन कर बितायी थीं। परन्तु आज जब उन्हें स्वतन्त्र वातावरण अचानक प्राप्त हो गया तब वह किंकर्तव्य-विमूढ़ से हो गये। बँगले के भीतर जो निस्तब्ध शान्ति विराजमान थी उनसे एक बार उनका कलेजा धक् से हो गया। बाबू जी के जीवित-काल में तो इतनी नीरवता इस बँगले के भीतर कभी नहीं आयी थी। तो ऐसी ही नीरवता के भीतर माँ, प्रतिभा, और पद्मा का जीवन किसी प्रकार अपना अस्तित्व बनाये रहा है। अजीत का हृदय एक अनिवर्चनीय वेदना का अनुभव करने लगा। शीघ्र ही उत्कण्ठा ने उनका मार्ग सरल कर दिया और वह बँगले के बरामदे में गये जहाँ भगवान चपरासी बैठा था। पास ही अँगोछा बिछा कर जंजाली लेट गया था। भगवान चपरासी अजीत को पहचानते ही पैरों पर गिर पड़ा। तुरन्त ही उसने जंजाली को उठा दिया और बच्चा जी के आने का समाचार प्रगट कर दिया।

जंजाली ने अत्यन्त गाढ़ प्रेम-भाव दिखाते हुए अजीत के पाँव छुए और उल्लासपूर्वक तेजी के साथ छत पर जाकर लक्ष्मी देवी को सूचना दी। बात की बात में सारा बँगला आनन्द के प्रवाह निमज्जित होने जगा। किन्तु बहुत अधिक चहल-पहल होने पर भी शान्ता सोती ही रही।

× × × ×

भोजन तो तैयार था, परन्तु लक्ष्मी देवी छः वर्ष के कष्टों

को झेल कर आने वाले प्यारे लड़के को वह साधारण भोजन देकर सन्तुष्ट नहीं हो सकती थीं जो अपने जीवन-धारण मात्र के लिए वे बनवाया करती थीं। इसलिए अजीत को थोड़ा सा जलपान करा देने के अनन्तर वे प्रतिभा को साथ लेकर रसोई घर में चली गयीं। महराजिन, जानकी आदि सब के उत्साह-पूर्ण सहयोग से प्रतिभा भोजन बनाने लगी, लक्ष्मी देवी भी कुछ सहायता करने लगीं।

इधर जंजाली अजीत के साथ था। वह उनके पैर दाबने लगा। अजीत ने यह एकान्त पाकर उससे पूछा—"शान्ता सो गयी क्या?"

जं०—"भइया जी, बच्ची को सोये तो घण्टा भर हो गया। उषा दीदी के लिए रोती-रोती सो गयी।

अ०—"यह उषा दीदी कौन? क्या शान्ता की मां ने अपने साथ के लिए किसी लड़की को रख लिया था?"

जं०—"नहीं भइया जी, उषा दीदी वही हैं जो पहले घोष साहब की लड़की कही जाती थीं। आपके जेल जाने के कुछ दिनों बाद पता लगा कि वे राधिका बाबू की छोटी बहिन हैं। तब से वे यहीं तो रहती थीं। भइया जी, वे न होतीं तो कौन बच्ची को इतने प्यार से पालती-पोसती, बबुई दादी को और अम्मा को तो रोते ही बीतता। उषा दीदी ने सब को बड़ा सहारा दिया।

कुछ देर के बाद अजीत ने कहा—"और कोई नई बात तो नहीं है?"

डा०—"और कौन बात बताऊँ भइया जी, एक बात तो यह कि कमला बाबू आज कल यहीं सब जज हैं, श्यामलाल बाबू को दारोगागीरी तो आप के जाने के बाद ही मिल गई थी।

इसी बीच में जानकी महरिन ने आकर कहा—"बाबू जी, खाने चलिए।" अजीत में इस समय भोजन के लिए उत्साह नहीं था। परन्तु वह प्रतिभा आदि का हतोत्साह नहीं करना चाहता था। इसलिए रसोई घर में जाकर वह भोजन करने बैठ गया। लक्ष्मी देवी पंखा झलने लगीं। प्रतिभा एक किनारे सिमिट कर बैठ गई। उषा और चंचला छत पर चली गयीं, जहां शान्ता सो रही थी। अजीत ने थोड़ा ही खाया, पर धीरे धीरे खाया, जिससे मां को कुछ शिकायत करने का मौका न मिले।

जंजाली ने मसहरी लगा कर अजीत के सोने का सब सामान ठीक कर दिया था। आज बहुत दिनों के बाद अजीत को वह सुख मिला जिसके लिए तरस तरस कर उसने न जाने कितनी रातें काट दी थीं। परन्तु पद्मा के वियोग ने उसके हृदय में एक ऐसा घाव कर दिया था कि इस सुख की सरसता का भी लोप हो गया। पान और इलायची हाथ में लिए हुए लक्ष्मी देवी बहुत दिनों से बिछड़े हुए बेटे के पास आकर बैठ गईं। अनमने भाव से अजीत ने पान इलायची ले लिये और पूछा—"अम्मा घर का क्या हाल है?" लक्ष्मी देवी की आंखों में आंसू भर आये, जैसे वे बाहर निकलने के लिए बिलकुल तैयार बैठे रहे हों। बोलीं, बेटा घर का क्या हाल बताऊँ? उधर तुम गये, इधर तुम्हारी बहू भी चल बसी। तुम्हें घबराहट होगी, इस डर से तुम्हारे पास जाने वाली चिट्ठियों में इसकी चर्चा नहीं होने दी। बहू का चित्त कुछ विक्षिप्त सा हो गया था, मायके यह सोच के जाने दिया कि उसका जी बहल जायगा, सो वह सदा के लिए चल बसी। भइया, कुशल हुई जो शान्ता तो बच गई।"

अजीत ने कहा—"अम्मा जो हुआ सो हुआ, उसे जाने दो। यह सब मुझे जंजाली के द्वारा मालूम हो चुका है। और बताओ पं० सदाशिव मिश्र, सुकुल जी, राधिका बाबू आदि का क्या हाल है?"

लक्ष्मी देवी—"बच्चा इन्हीं सबके सहारे तो इतने दिन कट गये, नहीं तो मेरा जीवित रहना कठिन ही था। मिश्र जी की लड़की चंचला अधिकतर यहीं रहती रही है। आज कल भी यहीं है। राधिका बाबू की बहन उषा का हाल भी तुम्हें जंजाली ने बताया ही होगा। सुकुल जी ने परिश्रम करके 'आनन्द आश्रम' 'उद्योग भवन', 'आरोग्य-मन्दिर' आदि संस्थाएँ स्थापित करायी हैं। इनमें अच्छा काम हो रहा है। 'उद्योग-भवन' का यह नियम है कि मैंने उसके लिए जितना रुपया दिया है उसका सूद मात्र निकाल कर शेष सारा लाभ भी मजदूरों में बाँट दिया जाता है। सूद की आधी रकम 'आनन्द आश्रम' और आधी 'आरोग्य-मन्दिर' के मासिक व्यय के रूप में काम आती है। कुल तीन लाख रुपये इन संस्थाओं के लिये मैंने दे दिये थे। मार्क का कारखाना टूट गया और वह अपनी सारी जायदाद बेच कर कलकत्ते चला गया। चंचला, प्रतिभा, उषा—सब इन संस्थाओं के कार्यों में भी रुचि लेती रही हैं। इन्हीं सब में चित्त लगा कर किसी तरह हम लोगों ने ये दिन काट दिये हैं। तुम तो बड़े दुबले हो गये बच्चा।"

यह कह कर लक्ष्मी देवी अजीत का सिर सहलाने लगीं।

"यह तो सब लगा ही रहता है, अम्मा, आदमी कभी मोटा होता है, कभी दुबला। यह तो संसार का नियम है।"—अजीत ने उत्तर दिया।

एकाएक लक्ष्मी देवी उठीं और एक तेल की शीशी में से अजीत के सिर पर थोड़ा सा तेल गिरा कर बड़े प्यार से दबाने

लगीं। बहुत दिनों के बाद माँ के हाथ से यह आराम पा कर अजीत बाबू को नींद आ गयी।

नींद में मग्न बेटे के चेहरे को एक बार स्थिर दृष्टि से देख लेने के बाद लक्ष्मी देवी भी सोने के लिए चली गयीं।

अगले दिन प्रातः काल अजीत बाबू सब से पहले कमलाशंकर से मिलने गये।

[५८]

तीनों संस्थाओं का वार्षिक अधिवेशन था। उसमें अजीत ने भी व्याख्यान दिया।

सभा समाप्त होने पर अजीत की मोटर में सदाशिव मिश्र, राधिकाकान्त और सुकुल जी घर आये। थोड़ी देर के बाद जब राधिकाकान्त और सुकुल जी वहाँ से विदा होकर बाहर निकले तब राधिकाकान्त ने कहा—"पंडित जी अजीत बाबू में एक विचित्र परिवर्तन आ गया है। शायद वे बाबू साहब के प्रति किये गये अपने दुर्व्यवहार का बदला चुका रहे हैं। किन्तु यह बदला तो इस अवस्था में, जब कि ये उनका अन्धाधुन्ध अनुकरण करना चाहते हैं, अत्यन्त भयंकर रूप धारण करेगा! निःसंदेह बाबू साहब कोई आदर्श पुरुष नहीं थे और न वे समाज में अनुकरणीय ही माने जायँगे। फिर भी उनमें गुण और दोष दोनों थे, गुणों के कारण ही दोषों पर कोई दृष्टिपात नहीं करता था। अजीत बाबू भी यदि उनके गुणों का अनुकरण और दोषों का त्याग करें तो कुछ आपत्ति न रह जाय। लेकिन अब तो लक्षणों से ऐसा मालूम हो रहा है कि इनका ध्यान देश-भक्ति से हट कर विलासिता की ओर चला गया है।"

हरिहर सुकुल—"बाबू राधिकाकान्त, मानव-प्रकृति का तो

आप को अच्छा ज्ञान रहा है। आश्चर्य है कि इस अवसर पर वह आपकी सहायता नहीं कर रहा है। अजीत बाबू की दुर्बलताओं से आप अपरिचित नहीं हैं और थोड़ा बहुत मैं भी उन्हें जानता हूँ। परन्तु मेरी यह सदा से नीति रही है कि मैं दोषों पर दृष्टि न डाल कर मनुष्य के गुणों को अधिक से अधिक उदार बन कर देखना चाहता हूँ? अजीत बाबू में सच्ची देश-भक्ति कभी नहीं रही। मिथ्या देश-भक्ति के चक्कर में पड़ कर उन्होंने अपने उन कर्तव्यों का भी पालन नहीं किया जो उनके बहुत ही निकट थे; उसका विकृत स्वरूप लेकर ही वे शोर गुल मचा रहे थे। मैं मानता हूँ कि मैंने अनेक अवसरों पर उनकी देश-भक्ति की प्रशंसा की है और खरेपन के साथ दोषों को उन्हें नहीं बताया है। संभव है, इससे गलतफहमी हो लेकिन व्यक्ति के चरित्र की आलोचना, दोषों की मीमांसा का कार्य्य बड़ा ही उत्तरदायित्वपूर्ण है, और उसका भार-वहन करना मेरी शक्ति के परे है। रही प्रशंसा सो मैं इस आशा में करता हूँ कि प्रोत्साहित से जो थोड़ी सी त्रुटि कहीं होगी वह अपने आप जाती रहेगी। हाँ, अयोग्य व्यक्तियों की व्यर्थ प्रशंसा भी मैं नहीं करता। अजीत बाबू ने विकार-ग्रस्त देश-भक्ति के चक्कर में पड़ कर इतने कष्ट भोगे हैं कि अब उनमें प्रतिक्रिया का न होना आश्चर्य्य-जनक होता। मैं समझता हूँ कि एक बार वे बाबूसाहब का खूब अनुकरण करेंगे। इसमें कुछ बहुत हर्ज नहीं मालूम होता। कम से कम बाबूसाहब का परिवार-प्रेम तो आदर्श था। उसकी खूँटी से बँधे रह कर अजीत बाबू व्यर्थ बहक नहीं सकेंगे। मैं सच्ची परिवार-हितैषणा को विकृत देशानुराग से अच्छी समझता हूँ। उसके भी अतिसीमित हो जाने का भय अवश्य ही है। किन्तु हमारे जीवन में होश हवास ठीक रखने के लिए प्रत्येक

अतिक्रमण के साथ कष्ट भोग तो लगा ही है। मेरा अनुभव है कि 'व्यक्ति-वाद','परिवार-वाद,' 'देश-भक्ति','विश्व-भ्रातृत्व' आदि सिद्धान्तों में से किसी न किसी एक के सीमातिक्रत प्रयोग से मनुष्यता सदैव पीड़ित रहेगी। इससे घबराने की कोई आवश्यकता नहीं। अजीत बाबू में पहले विलास-भावना नहीं थी, अब अगर आ गयी है तो भी हर्ज नहीं। शरीर और मन का उन्माद समय पाकर शान्त हो जायगा।"

राधिका०—'पंडित जी, यह तो आपने सब बहुत ठीक कहा। कुछ दिनों से मैं भी अनुभव कर रहा हूँ कि 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' की धारणा को थोड़े दिन के लिए विश्राम देकर अपने लिए नश्वर वस्तुओं का एक छोटा सा घोंसला, एक छोटा सा संसार बना लूं। मैं प्रायः सोचने लगता हूँ कि जब यह संपूर्ण विश्व ही आनन्दमय है, और किसी महाशक्ति की प्रेरणा से ही इसमें अज्ञान-जनित विषाद की सृष्टि हो सकी है तब मैं संसार के हाहाकार से निर्दयतापूर्वक आँखें मूँद लेता हूँ और अनाचारी हिंसक पशुओं की तरह अपना ही स्वार्थ देखने लगता हूँ। मेरी यह प्रवृत्ति इतनी प्रबल हो गयी है कि आप की तरह विश्व और मानव-सेवा के भाव की कौन कहे, मैं किसी गरीब थकी माँदी बुढ़िया का बोझ भी सिर से नहीं उतार सकता हूँ।"

ह० सु०—"मैं आप की बात समझ रहा हूँ। कुछ लोग उचक कर ऊँची जगह पर बहुत तेजी से चढ़ जाते हैं, उन्हें धीरे धीरे एक सीढ़ी के बाद दूसरी पर पाँव रखते हुए चढ़ना पसन्द ही नहीं है। वे चढ़ जाने पर अपना पाँव अच्छी तरह जमा नहीं सकते और कभी कभी तो जिस तेजी से चढ़ते हैं उसी तेजी से नीचे गिर पड़ते हैं। शायद आपने ऐसा ही किया है। भाई, मैं तो यह अधिक पसन्द करता हूँ कि व्यक्ति पहले अपनी चिन्ता करे,

उसके बाद परिवार की करे, उसके बाद देश और जाति की और सबसे अन्त में प्राणी मात्र की करे, त्याग-भाव का स्वाभाविक विकास होना चाहिए; बलपूर्वक तथा अनिच्छा से किया गया त्याग समस्त अनर्थों की जड़ है।"

दोनों का रास्ता भिन्न भिन्न दिशाओं में था। इसलिए में बातें यहीं समाप्त हो गयीं।

[५९]

लक्ष्मी देवी को अपने बँगले आनन्द-निवास ने फिर कभी आनन्दनिवास होने की आशा नहीं थी। उन्होंने समझा था कि आनन्द-निवास का सारा आनन्द बाबू साहब अपने साथ लेते गये। परन्तु ईश्वर की लीला कुछ-विचित्र है। एक दिन वह भी आ गया जब आनन्द-निवास फिर सचमुच आनन्द निवास हो गया। वर्षा का बड़ा ही सुन्दर दिन था। आकाश में काली काली घटाएँ घिरी थीं। बँगले के बाग में कोयल कूक रही थी। पपीहा 'पी कहा' की पुकार मचा रहा था। मोर बादलों को देखकर नाच रहे थे। रह रह कर बिजली कौंध जाती थी। अजीत अपने कमरे में बैठे हुए पद्मा के साथ व्यतीत किये गये अपने पूर्व जीवन के दिनों की याद कर रहे थे। उनकी यह दिवानिद्रा एका-एक लक्ष्मी देवी के आ जाने से टूटी। वे पास ही रखी हुई एक तिपाई पर बैठ गयीं।

मां को देखते ही अजीत बाबू का ध्यान पलट कर घर की जोवित समस्याओं को ओर गया। कहा—"अम्मा, मैं जब से आया हूँ तभी से एक बात सोच रहा हूँ। आज उसके विषय में तुम्हारी आज्ञा चाहता हूँ। वह यह है कि जब तक प्रतिभा का विवाह न हो जायगा तब तक दादा को शान्ति नहीं मिल सकती।

चंचला ने अविवाहित रह कर प्रतिभा के विवाह को और भी आवश्यक बना दिया है। किन्तु चंचला के विवाह में विशेष अड़चन नहीं है। यह तो तुम्हें मालूम हो होगा कि उसके लिए कमलाशङ्कर भी अविवाहित बने बैठे हैं। मैं एक दिन उनसे मिलने गया था, यह सोचकर कि वे हमारे यहाँ आने का साहस तो करेंगे नहीं! मैंने उन्हें क्षमा कर दिया और उनसे बहुत प्रेम-पूर्वक बातचीत की। मैंने देखा कि तब के कमलाशङ्कर और अब के कमलाशङ्कर में बड़ा अन्तर है। घोर पश्चाताप ने उनकी जीवन-धारा में गहरा परिवर्तन कर दिया है। चंचला का ब्याह उनके साथ हो जायगा। पं० सदाशिव मिश्र ने उनसे चंचला का विवाह करने से इनकार तो किया नहीं था, केवल स्थगित किया था। अतएव उस विवाह के हो जाने में कोई बाधा नहीं है। रही प्रतिभा, सो उसका विवाह मैं राधिका बाबू से करना चाहती हूँ।"

अ०—"लेकिन अम्मा, तुमने इस पर अच्छी तरह विचार कर लिया है या नहीं। यदि दादा जीवित होते तो क्या इस विवाह को पसन्द करते! क्या ईसाई परिवार में पालित कन्या के साथ वे मेरा विवाह होने देते?"

ल०—"बेटा उषा में कोई दोष नहीं है। जो कुछ था वह अनुताप और प्रायश्चित्त की प्रखर अग्नि में जल कर भस्म हो गया। उसने छः वर्ष तक निस्वार्थ भाव से मेरी जैसी सेवा की है, मुझे जिस तरह सँभाला है, उसे तो मैं ही जानती हूँ। यदि उषा न होती तो प्रतिभा का और मेरा छः वर्ष कटना कठिन हो जाता।"

इसी समय जंजाली ने आकर कहा—"भइया जी, मुकुन्द जी और राधिका बाबू आये हैं।"

अजीत ने कहा—"कह दो चले आवें।"

सुकुल जी और राधिकाकान्त छाता बाहर रख कर आ गये। अजीत ने सुकुल जी से प्रणाम और राधिकाकान्त ने लक्ष्मी देवी से प्रणाम किया। जब ये लोग कुर्सियों पर बैठ गये तब लक्ष्मी देवी ने कहा—"सुकुल जी, उषा को मैं अपनी पुत्र बधू बनाना चाहती हूँ, क्या इसमें आप को कोई आपत्ति हो सकती है?

सुकुल जी ने कहा—"आपत्ति करने के लिए नहीं, आप से उसके सम्बन्ध में प्रार्थना करने के लिए मैं आया हूँ।"

अ०—"सुकुल जी, अभी उषा के विवाह की चर्चा न चलाइए। मुझे प्रतिभा और चंचला के विवाह से अवकाश पाने दीजिए। अपने पिता के ऋण से उऋण हुए बिना मैं अपना विवाह नहीं कर सकता।"

यह कहने के बाद थोड़ी देर के लिए क्षमा माँग कर अजीत-बाबू प्रतिभा के कमरे की ओर चले गये। वहाँ उन्होंने प्रतिभा को आवाज दी और जब वह आयी तब उन्होंने कहा—"प्रतिभा, मैं जानता हूँ कि तुमने अपने आपको अविवाहित रख कर बहुत बड़ा त्याग किया है, विवाह इनकार करने में तुम्हारा हठ नहीं था, तुम्हारी कर्तव्य-भावना की दृढ़ता थी। तुमने ऐसा न किया होता तो अम्मा का छः वर्ष तक जीवित रह जाना शायद असम्भव हो जाता। किन्तु, अब ईश्वर की दया से सब बातें अनुकूल हो गयी हैं और अब तुम्हें त्याग की साधना करने की आवश्यकता नहीं रही। अतएव मैंने निश्चय किया है कि तुम्हारा विवाह बाबू राधिकाकान्त से कर दूं। इसमें तुम्हें कोई आपत्ति तो नहीं है?"

प्रतिभा ने संकोच से क्षीण पड़े हुए स्वरों में उत्तर

दिया—भाई साहब, मुझे तो विवाह करने की इच्छा नहीं थी, किन्तु मैं आपकी आज्ञा का विरोध नहीं कर सकती।"

यह कह कर प्रतिभा चुप हो गयी। अजीत ने उससे कहा—"जरा चंचला को तो इधर भेज दो।"

प्रतिभा ने अपने कमरे में जाकर चंचला को भेज दिया। उसे अपने सामने देख कर अजीत ने कहा—"चंचला, तुम्हारा विवाह तो कमलाशंकर के साथ ही होगा। तुम्हें इसमें कोई आपत्ति तो नहीं है ?"

चंचला ने उत्तर दिया—"मुझे आपत्ति थी तभी तो मैंने विवाह रोक दिया था। क्या अब वे दूसरे हो गये हैं ?"

अजीत--"सच तो यह है कि वे दूसरे हो ही गये हैं। मनुष्य, मात्र से गलतियां होती हैं, कठिनाइयों में पड़ कर कभी कभी मनुष्य अनिच्छापूर्वक भी दूसरे को हानि पहुँचाता है। हमें उदार होना चाहिए और किसी के व्यक्तित्व से चरम विकास को प्राप्त मनुष्यत्व की आशा न करनी चाहिए। मैं हृदय से कहता हूँ कि कमलाशंकर में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया है। वे सरकारी नौकर होते हुए भी सभी अच्छे देश-भक्ति के कामों के लिए, रुपये से सहायता करते रहते हैं। और इतना त्याग क्या कम है कि उन्होंने छः वर्ष तक अविवाहित रह कर मुझे धोखा देने का प्रायश्चित्त किया। इस प्रायश्चित्त से उनके चरित्र की सम्पूर्ण कालिमा धुल गयी है। मैं तुम्हारे उच्च भावों को जानता हूँ, लेकिन इसका विश्वास मानो कि कमला-शंकर तुम्हारे उन भावों की रक्षा और विकास में किसी तरह का हस्तक्षेप नहीं करेंगे। कहो तो आज पंडित जी को पत्र लिख कर बुला लूँ।"

चंचला ने कहा--"मैं इस विषय में आप से बहस करना नहीं चाहती। यदि आपने अपना पूरा संतोष कर लिया है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

"बस ठीक है। मेरी दो समस्याएं तो हल हो गयीं," यह कहते हुए अजीत बाबू अपने कमरे में चले गये।

अपने कमरे में आने पर अजीत ने राधिकाकान्त को थोड़ी देर के लिए बरामदे में चलने के लिए संकेत किया और वहाँ जाकर कहा—"राधिका बाबू, मैं आप से एक ऐसा निवेदन करना चाहता हूँ जिसका विरोध न करने का वादा पहले से ही करा लूँगा।"

राधिकाकान्त ने उत्तर दिया—"आप निस्संकोच होकर कहिए। यदि आप के अनुरोध का पालन मेरी शक्ति के भीतर होगा तो वह अवश्य ही होगा, उसका मैं आप को विश्वास दिलाता हूँ।"

अजीत—"मैं प्रतिभा के विवाह की चिन्ता से ग्रस्त हूँ, आप मुझे उससे मुक्त कीजिए।"

रा०—"परन्तु इस वर्ष तो अब बहुत विलम्ब हो गया। वर ढूँढ़ने के लिए तो कुछ समय चाहिए।"

अ०—"समय की आवश्यकता नहीं है, स्वीकृति की आवश्यकता है। मैं बहुत ही उपयुक्त मनुष्य से बातें कर रहा हूँ।"

रा०—"परन्तु आपका लक्ष्य जिसकी ओर है उससे अधिक अयोग्य वर दूसरा कोई हो नहीं सकता। विवाह में धन का भी तो खयाल किया जाना चाहिए। अजीत बाबू! आप देखते हैं कि मेरे पास कुछ नहीं है। जब तक विक्टोरिया हाई स्कूल था तब तक दस पाँच रुपये रहते भी थे, किन्तु जब

से आश्रम का अनुचर हुआ तब से तो बस भोजन से काम रहता है।"

अ०—"बस यही न ? यह तो आपने कोई ऐसी बात नहीं बतायी जिसे मैं नहीं जानता। यदि आप की अयोग्यता इतनी ही है तो इसके लिए आप चिंता न करें क्योंकि जब मैं आप का प्रवेश गृहस्थ-जीवन कराऊँगा तब उसके लिए कोई न कोई प्रबन्ध तो करूँगा ही। राधिका बाबू मैं और प्रतिभा—दोनों ही तो दादा की संतान हैं, फिर सारी जायदाद का सुख मैं ही क्यों भोगूँ ? ईश्वर की दया से जायदाद इतनी है कि उसके आधे में प्रतिभा आराम से रह सकती है। मैं अपने बाहु-बल द्वारा उसे बढ़ा कर फिर ज्यों की त्यों कर लूँगा।"

रा०—"नहीं, नहीं, अजीत बाबू ! आप इतना त्याग न कीजिए कि आप की दी हुई सम्पति की विश्राममयी छाया के नीचे आराम से ऊब कर मैं एक दूसरी ही विपत्ति में फँस जाऊँ। मुझे आप एक छोटा-मोटा ताल्लुकेदार न बनाइए। मुझे अपनी गरीबी बहुत पसन्द है।"

अ०—"तो मैं आपको कहाँ कुछ दिये देता हूँ ? मैं तो जो कुछ दूँगा अपनी बहिन को दूँगा। राधिका बाबू, थोड़ा सोचिए तो सही कि दादा प्रतिभा का ब्याह रामलखनसिंह के साथ क्यों कर रहे थे ? क्या उसमें कोई सुरखाब का पर लगा था ? यही न कि वह एक सरकारी पदाधिकारी है और उसकी निश्चित आय है। फिर आप बताइए कि मैं प्रतिभा को धनहीन अवस्था में कैसे देख सकूँगा ? क्या दादा की आत्मा को इससे पीड़ा न होगी। फिर क्या सब सुविधाओं से घिरा हुआ मनुष्य आत्मोन्नति नहीं कर सकता ?"

राधिकाकान्त अजीत के पितृ-प्रेम और भगिनी-प्रेम से प्रभावित होते जा रहे थे। उन्होंने उनमें ऐसा त्याग-भाव कभी नहीं देखा था। प्रसन्न होकर कहा—"अजीत बाबू मैं आप के अनुरोध को टाल नहीं सकता। किन्तु शायद आप को मालूम हुआ होगा, मेरे भी एक बहिन है, उसके प्रति अपने कर्तव्य-भार से मैं भी मुक्त होना चाहता हूँ। इस संबन्ध में आप को मेरी सहायता करनी चाहिए।"

अजीत ने हँस कर कहा—"इस विषय में मैं जो कुछ कहूँगा, उससे शायद आप पूर्ण रूप से संतुष्ट न हों। इसलिए इस मामले का निर्णय-भार सुकुल जी पर छोड़ दीजिए। वे जो कुछ कहेंगे मैं मान लूँगा।"

राधिकाकान्त ने तुरन्त ही सुकुल जी को बुलाया और इस सम्बन्ध में उनका आदेश माँगा। सुकुल जी ने कहा—"पहले प्रतिभा और राधिका बाबू का विवाह हो जाय, उसके बाद चंचला और कमलाशंकर का और उसके बाद उषा देवी और अजीत बाबू का विवाह इसी बँगले में इसी वर्ष हो जाय, जिससे छः वर्षों से भूखे इस 'आनन्द-निवास' की भूख अच्छी तरह मिट जाय।

अजीत ने कहा—"एवमस्तु। किन्तु इन तीनों विवाहों का प्रबंध-सूत्र आप ही के हाथों में रहेगा।"

सुकुल जी हँस कर बोले—"वह तो मेरा जन्म-सिद्ध अधिकार है। किंतु, एक बात की सूचना मैं आपको पहले ही देता हूँ। वह यह कि मैं इन विवाहों में बाबू रामलखन सिंह और श्रीमती घोष को भी निमंत्रण भेजूँगा। कारण यह कि इस शुभ आनन्दमय अवसर में किसी को अपमान अथवा ग्लानि का अनुभव होने देना उचित नहीं है। एक बात और, अभी

उस दिन उन्होंने मुझे बुलवाया था। उन्हें श्रीमती घोष के साथ विवाह करने का बहुत बड़ा दुःख है। किन्तु वे उसके चंगुल में भी बुरी तरह फँस गये हैं। बात यह है कि इस जिले के सभी बड़े बड़े पदाधिकारियों पर उसका प्रभाव है और यदि बाबू रामलखन सिंह उसके साथ कड़ाई का बर्ताव करें तो वह अपने मित्रों की सहायता से उन्हें संकट में डाल दे। इन सब कष्टों के कारण बाबू रामलखन सिंह की दशा अत्यन्त दयनीय है। वे बाबू साहब और आपके लिए भी बहुत दुःख प्रगट कर रहे थे। ऐसी स्थिति में यदि उन्हें निमंत्रण न दिया जायगा तो उन्हें बहुत अधिक वेदना होगी।"

अ०—"तो इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। उन्हीं को नहीं आप अन्य समस्त सरकारी पदाधिकारियों को निमंत्रण दीजिए। यह तो आनन्द-उत्सव का समय है। इसमें तो सभी का सम्मिलित होना वांछनीय है।"

राधिकाकान्त ने अजीत बाबू की इस सम्मत्ति का समर्थन किया।

इसी समय अचानक अजीत की दृष्टि बशीर अहमद पर पड़ी। पानी बरस रहा था और फिर भी वह कह रहा था—"अहाहा! कैसी चाँदनी रात खिली है। वह मेरी चन्द्रमुखी रानी झाँक रही है। अहाहा! जरा एक बार तो चमक कर आ जाओ।"

सुकुल जी, अजीत और राधिका बाबू तीनों उसकी ओर दयामयी दृष्टि से बड़ी देर तक देखते रहे।

॥ इति ॥